आप्तवाणी

श्रेणी - ८

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी-८

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
महाविदेह फाउन्डेशन
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसायटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात
फोन - (०७९) २७५४०४०८

प्रथम संस्करण : ३००० प्रतियाँ, मई २०१२

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : ७० रुपये

लेज़र कम्पोज़ : दादा भगवान फाउन्डेशन, अहमदाबाद

मुद्रक : महाविदेह फाउन्डेशन
पार्श्वनाथ चैम्बर्स, नई रिज़र्व बैंक के पास,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१४.
फोन : (०७९) २७५४२९६४, २७५४०२१६

समर्पण

अनंत काल बीता, हुआ नहीं आत्म दर्शन,
प्रकट 'ज्ञानी' के बिना, कौन खोले सुदर्शन?
'ज्ञानी' के दर्शन से, मिल जाए यदि निजदर्शन,
अहो! अहो! अनुपम अभेद विश्वदर्शन!

दृष्टि पड़ते ही दिखाए, उल्टे को सीधा,
बुझाए अंतरदाह की अविरत ज्वाला,
ठोकरें रुकी हैं अब, होते ही ज्ञान उजाला,
संसारी दुःख अभाव, सनातन सुख पुष्पमाला।

'ज्ञानी' में प्रकटा जो, 'यह' दर्शन निरावरण,
अनंत भेद से, प्रदेशों से, दिखा आत्म तत्व,
निज दोष दिखाए, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम,
'दर्शन' है केवळ का,अटका चार अंश से 'ज्ञान'

'इस' दर्शन से, खुले मोक्ष मार्ग इस दुषमकाल,
हर कदम पर दिखाया प्रकाश परम हित काज,
बंधन तुड़वाए, दृष्टि बदलाए, 'दादा' दर्शन आज!
आप्तवाणी के रूप में समर्पण जगत् कल्याणार्थ आज!

त्रिमंत्र

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरूष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भूगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्त्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. प्रेम
२१. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२९. क्लेष रहित जीवन
३०. अहिंसा
३१. सत्य-असत्य के रहस्य
३२. चमत्कार
३३. पाप-पुण्य
३४. वाणी, व्यवहार में...
३५. कर्म का विज्ञान
३६. आप्तवाणी - १
३७. आप्तवाणी - ४
३८. आप्तवाणी - ५
३९. आप्तवाणी - ८

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होती है।**

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया, बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके , संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्यकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, परन्तु यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में कईं जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गये शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गये वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गये हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गये हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों रखे गये हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिये गये हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

आप्तवाणियों के हिन्दी अनुवाद के लिए परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँगी।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से आज से पच्चीस साल पहले निकली यह भावना अब फलित हो रही है। आप्तवाणी-८ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणियों तथा ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा, उसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-८ का हिन्दी रुपांतर है।
- इस 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द को संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है।
- जहाँ-जहाँ 'चंदूलाल' नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें।

संपादकीय

प्रस्तुत ग्रंथ में प्रकट प्रत्यक्ष 'ज्ञानी' के स्वमुख से प्रवाहित आत्मतत्व, और अन्य तत्वों संबंधी वास्तविक दर्शन खुला होता है। पूरे ग्रंथ का संकलन दो विभागों में विभाजित होता है। पूर्वार्ध में, आत्मा क्या होगा, कैसा होगा, इससे संबंधित अनेक प्रश्न पूछकर प्रश्नकर्ता समाधान प्राप्त करता है। जब कि उत्तरार्ध में 'मैं कौन हूँ', यह किस तरह जाने, खुद के स्वरूप की पहचान, साक्षात्कार किस प्रकार से प्राप्त करे, प्रश्नकर्ता को अब इसकी उत्सुकता जागी है, उसके लिए प्रश्न पूछ-पूछकर मार्गदर्शन प्राप्त कर रहा है!

आत्मा के अस्तित्व की आशंका से लेकर, आत्मा क्या होगा, कैसा होगा, क्या करता होगा, जन्म-मरण क्या है, किसके जन्म-मरण, कर्म क्या है, चार गतियाँ क्या हैं, उसकी प्राप्ति के रहस्य, मोक्ष क्या है, सिद्धगति क्या है, प्रतिष्ठित आत्मा, मिश्रचेतन, निश्चेतन-चेतन, अहंकार, विशेष परिणाम, जैसे सैंकड़ों प्रश्नों के समाधान यहाँ पर अगोपित हुए हैं। जीव क्या है? शिव क्या है? द्वैत, अद्वैत, ब्रह्म, परब्रह्म, एकोहम् बहुस्याम्, आत्मा की सर्वव्यापकता, कण-कण में भगवान, वेद और विज्ञान वगैरह अनेक वेदांत के रहस्य यहाँ पर अनावरित हुए हैं। अध्यात्म की प्राथमिक परन्तु मूल यथार्थ समझ, कि जिसके आधार से पूरा मोक्षमार्ग पार करना होता है, उसे समझने में थोड़ा-सा भी फ़र्क़ रहे, तो 'ज्ञानी' के 'पेरेलल' रहकर पथ पूरा करने के बजाय एक बाल बराबर भी विपथन हुआ तो लाखों मील चलने के बाद भी एक ही द्वार पर पहुँचने के बजाय किसी और ही स्थान पर जा पहुँचेंगे!

'हम सब परमात्मा के अंश हैं' जहाँ पर ऐसी भ्राँत मान्यता बरतती हो, वहाँ पर ''वह 'खुद' परमात्मा ही है, संपूर्ण स्वतंत्र है, अंश नहीं परन्तु खुद सर्वांश है।'' ऐसा कब समझ में आ सकेगा? और यदि वह बिलीफ़ में ही नहीं होगा तो उस पद को प्राप्त कैसे कर सकेंगे? लोकसंज्ञा के कारण ऐसी तो कितनी ही भ्रामक मान्यताएँ ग्रहण हो चुकी हैं, जो यथार्थ दर्शन से अलग ही प्रकार का वर्तन करवाती हैं!

तमाम शास्त्रों का, साधकों का, साधनाओं का सार एक ही है कि खुद के आत्मा का भान, ज्ञान प्राप्त कर लेना है। 'मूल आत्मा', तो शुद्ध ही है मात्र 'खुद' को रोंग बिलीफ़ बैठ गई है, प्रकट 'ज्ञानीपुरुष' के पास यह मान्यता छूट जाती है। जो कोटि जन्मों तक नहीं हो पाता, वह 'ज्ञानी' के पास से अंत:मुहूर्त में प्राप्त हो सकता है!

लाखों प्रश्न विकल्पियों के या जिज्ञासुओं के लाखों प्रश्न आते हैं, फिर भी ज्ञानी के उत्तर, सचोट मर्मस्थान पर और 'एक्ज़ेक्टनेस को ओपन' करनेवाले निकलते हैं, जो ज्ञानी के संपूर्ण निरावरण हो चुके दर्शन की प्रतीति करवाते हैं। उनके ही शब्दों में कहें तो 'मैं केवळज्ञान में ऐसे देखकर जवाब देता हूँ' और फिर वाणी का भी मालिकीभाव नहीं है। 'टेपरिकार्ड' बोल रहा है। 'खुद' बोलेंगे तो भूलवाला निकलेगा, 'टेपरिकार्ड' में भूल कहाँ से होगी? 'खुद' तो 'टेपरिकार्ड' के ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं।

जिज्ञासु-मुमुक्षु को आत्मप्राप्ति के लिए, आत्मासंबंधी, विश्वसंबंधी उठनेवाली सैंकड़ों प्रश्नोत्तरी को प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित किया गया है, जो सुज्ञ-आत्मार्थी को खुद की ही भाषा में बात की, 'वस्तु' की स्पष्टता करवाते हैं। परन्तु 'वस्तु' (आत्मा) को तथारूप दृष्टि में लाने के लिए, अनुभव करने के लिए तो प्रत्यक्ष-प्रकट स्वरूप से बिराजे हुए ज्ञानी श्री दादाश्री के पास से ही प्राप्ति हो सकती है ऐसा है।

बाकी, आत्माज्ञान या केवळज्ञान की अत्यंत गहन बातें निज आत्मप्रकाश की एक भी किरण को प्रकट करने में निष्फलता में परिणामित होती है। जब तक प्रत्यक्ष 'ज्ञानी' का सुयोग नहीं मिलता, 'ज्ञानी' का ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक शब्दात्मा में रमणता रहती है और जहाँ पर प्रत्यक्ष 'ज्ञानी' का एक ही शब्द हृदय बींधकर सरलता से उतर जाता है, वहाँ पर अनंत दोषों के आवरण हटने पर समस्त ब्रह्मांड को प्रकाशमान करनेवाले परमात्मा खुद के अंदर ही प्रकट होते हैं! इन अनुपम 'ज्ञानी' की बेजोड़ सिद्धि को जिसने जाना है, उसीने आनंद पाया है! वर्ना अवर्णनीय आत्मप्रकाश को शब्द किस तरह प्रकाशित कर पाएँगे?

कारुण्यमूर्ति दादाश्री को बार-बार कहते हुए सुना है, ''ये जो दिखते हैं, वे 'दादा भगवान' नहीं है, ये तो 'ए.एम.पटेल' है। 'दादा भगवान' तो अंदर प्रकट हुए हैं, वे हैं। वे चौदह लोकों के नाथ हैं! आपको जो चाहिए वह माँग लो। लेकिन आपको टेन्डर भरना भी नहीं आता!'' और यह हक़ीक़त है! उन्हें सकल ब्रह्मांड के 'जिस' स्वामित्व की प्राप्ति हुई, 'उसे' माँगने के बजाय अभागे जीव एकाध 'प्लोट' का टेन्डर भर देते हैं! उस समय दादाश्री का हृदय यदि कोई पढ़ सकता तो ज़रूर उसे अपार करुणा से छलकता हुआ दिखता!

आत्मसंबंधी प्रवर्तमान भ्रामक मान्यताएँ परम सत् से सैंकड़ों योजन दूर धकेल देती हैं। भले ही आत्मज्ञान नहीं मिला हो, परन्तु ज्ञानीपुरुषों ने जो आत्मा देखा है, जाना है, अनुभव किया है और जिसकी प्रकट ज्ञानीपुरुष यथार्थ समझ देते हैं, वह यदि फिट हो जाए तब भी खुद उल्टी दिशा में जाने से रुक जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ में संपूज्य श्री दादाश्री ने खुद के ज्ञान में 'जैसा है वैसा' आत्मा का स्वरूप और जगत् का स्वरूप देखा है, जाना है, अनुभव किया है, उस संबंध में उनके ही श्रीमुख से निकली हुई वाणी का यहाँ पर संकलन किया गया है, जो अध्यात्म मार्ग में पदापर्ण करनेवालों को आत्मसम्मुख होने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

'ज्ञानीपुरुष' की वाणी निमित्त और संयोगाधीन सहजरूप से निकलती है, उसमें यदि कहीं भी क्षति-त्रुटि लगे, तो वह मात्र संकलन की ही खामी है, 'ज्ञानीपुरुष' की वाणी की कभी भी नहीं। उसके लिए क्षमा प्रार्थना!

- डॉ. नीरूबहन अमीन

उपोद्घात

खंड : १

आत्मा क्या होगा? कैसा होगा?

ब्रह्मांड की सूक्ष्मतम् और गुह्यतम् वस्तु कि जो खुद का स्वरूप ही है, 'खुद' ही 'जो' है, 'उसे' नहीं समझने से, 'आत्मा ऐसा होगा, वैसा होगा, प्रकाश स्वरूप होगा, वह प्रकाश कैसा होगा?' ऐसे असंख्य प्रेरक विचार विचारकों को आते ही हैं। इसका यथार्थ कल्पनातीत दर्शन तो प्रकट 'ज्ञानीपुरुष' ही करके, करवा सकते हैं। जिन्हें उनके प्रत्यक्ष योग की प्राप्ति नहीं हुई है, ऐसे लोगों को प्रस्तुत ज्ञानवाणी का ग्रंथ सच्चा मार्ग बताकर उस तरफ़ ले जाता है।

जो खुद का सेल्फ ही है, खुद ही है, उसे जानना, वही आत्मा कहलाता है। उसे पहचानना है।

आत्मा के स्वरूप की, आकृति की आशंकाओं और कल्पनाओं से परे जो स्वरूप है, उसे जिसने जाना, देखा, अनुभव किया और निरंतर उसमें वास किया है, उन्होंने आत्मा को आकृति-निराकृति से परे कहा! स्थल, काल या किसी आलंबन की जहाँ पर हस्ती नहीं है, ऐसा निरालंब, प्रकाश स्वरूप है आत्मा का। 'ज्ञानी' ऐसे आत्मा में रहते हैं। खुद जुदा, देह जुदा, पड़ोसी की तरह देह व्यवहार करते हैं!

विश्व में नास्तिक नहीं है कोई। जिन्हें अस्तित्व का भान, 'मैं हूँ' ऐसा भान है, वे सभी आस्तिक हैं! आत्मा अस्तित्व, वस्तुत्व और पूर्णत्व सहित होता है। अस्तित्व का भान जीवमात्र को है, वस्तुत्व का भान बिरले को ही होता है और पूर्णत्व तो प्रसाद है, वस्तुत्व को जानने का! इस वस्तुत्व का भान तो भेदज्ञानी ही करवाते हैं।

आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति में विश्वास करवाते हुए 'ज्ञानी' कहते हैं कि जैसे सुगंध इत्र के अस्तित्व को उघाड़ देती है, वैसे ही आत्मा अरूपी होने के बावजूद, उसके सुख स्वभाव पर से पहचाना जा सकता है। अनंत

ज्ञान, दर्शन, शक्ति, सुख ऐसा अनंत गुणधामी परमात्मा का स्वरूप है और वह, वह 'खुद' ही है परन्तु खुद के स्वरूप का भान होने के बाद ही ये सभी गुण निरावृत होते हैं!

चेतन और जड़ का भेद उनके गुणधर्मों पर से जाना जा सकता है। ज्ञान-दर्शन, देखना-जानना, वह चैतन्य स्वभाव है, जो अन्य किसीमें नहीं है।

जीव के अस्तित्व पर आशंका करनेवाले 'मेरे मुँह में जीभ नहीं है', ऐसे बोलनेवाले की तरह खुद के, वस्तु-अस्तित्व को स्वयं ही अनावृत कर देते हैं! जिसे जीव पर शंका उपजती है, वही खुद जीव है! जड़ को वह शंका होगी?

अँधेरे में भी मुँह में रखे हुए श्रीखंड में रही हर एक चीज़ को जो जानता है, वह जीव है! ज्ञानतंतु तो खबर पहुँचाते हैं, परन्तु जिसे पता चलता है, वह जीव है! जो सदा ही सुख का चाहक और शोधक रहा है, वही जीव है।

जहाँ *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) है वहाँ पर आत्मा है, जहाँ पर *लागणी* नहीं है वहाँ पर आत्मा नहीं है। फिर भी आत्मा में *लागणी* नहीं है, जिसे *लागणी* होती है, वह *पुद्‌गल* है। हिलता-डुलता है, बोलता है, खाता है, पीता है वह चेतन नहीं है, परन्तु जहाँ कुछ भी ज्ञान है या अज्ञान है, दया या *लागणी* है, वहाँ पर चेतन है।

आत्मा का स्थान पूरे देह में व्याप्त है। जहाँ दु:ख का संवेदन है वहाँ आत्मा है। मात्र नाखून और बालों में ही आत्मा नहीं है। हृदय में तो स्थूल मन का स्थान है। जब कि सूक्ष्म मन दोनों भृकुटियों के बीच में ढाई इंच अंदर है।

आत्मा के संकोच-विकासशील स्वभाव के कारण जब देह का कोई भी अंग कटता है या एनेस्थीसिया दिया जाता है, तब उतने भाग में से आत्मा खिसक जाता है!

जीवन की तीनों अवस्थाओं में, अरे! अनंत जन्म-मरण की

अवस्थाओं में भी जो अजन्म-अमर है, ऐसा आत्मा वैसे का वैसा ही, निज स्वभाव में ही, हमेशा रहता है! जन्म भी, *पुद्गल* के साथ उसे खुद को जन्मोंजन्म तक संगत करनी पड़ी! ये 'रोंग बिलीफ़' गई कि हो गया खुद स्वतंत्र! संपूर्ण स्वतंत्र!!! बाकी न तो *पुद्गल* आत्मा से चिपका है और न ही आत्मा *पुद्गल* से चिपका है। *पुद्गल* अर्थात् परमाणु तत्व और आत्मतत्व के संयोग से, 'विशेष परिणाम' द्वारा उत्पन्न होने से प्रथम अहम्, क्रोध-मान-माया-लोभ, ऐसे व्यतिरेक गुणोंवाली प्रकृति उत्पन्न हुई और संसार का सर्जन हुआ! इसमें 'मूल आत्मा' संपूर्ण रूप से अक्रिय है। *पुद्गल* सक्रिय होने के कारण और अज्ञानता के कारण आत्मा के कर्तापन की भ्राँति उत्पन्न करवाता है! इस प्रकृति की ज़ंजीरों से परमात्मा बने बंदीवन! परन्तु जहाँ बंधन है, वहाँ मोक्ष भी है। अज्ञानभाव से, भ्राँतभाव से बंधन और ज्ञानभाव से मुक्ति! जब कर्तापन की, खुद के स्वरूप की भ्राँति टूटती है, तब खुद किसी कर्म का कर्ता नहीं रहता, 'खुद परमात्मा ही है' इसका भान निरंतर बरतता है और सर्व प्रकार से संपूर्ण स्वतंत्र, मुक्त बनता है!

जन्म-मरण का मूल कारण अज्ञान है, जब कि ज्ञान से मुक्ति मिलती है, आवागमन, जन्म-मरण अहंकार को है। योनि प्राप्ति 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' के अधीन है, उसमें किसीकी स्वतंत्रता नहीं है, भगवान की भी नहीं!

आरोपितभाव और संसारीभाव की वजह से कारण-शरीर उत्पन्न होने के बाद दूसरे पार्लियामेन्टरी मेम्बर मिलकर 'रिज़ल्ट' लाते हैं। जिससे 'इफेक्ट बॉडी' बनती है। पार्लियामेन्ट में प्रस्ताव रखने के बाद मेम्बर चले जाते हैं! और प्रस्ताव रह जाते हैं, वे प्रस्ताव एक के बाद एक रूपक में आते जाते हैं!

स्थूलदेह से आत्मा छूटता है तब आत्मा के साथ सूक्ष्म-देह, कारण-देह और क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाते हैं। कारणदेह अगले जन्म में कार्यदेह बनता है। जब तक कर्म की *सिलक* (जमापूँजी) रहती है, तभी तक ही तैजस शरीर साथ में रहता है, यानी कि जन्मभर साथ में रहता है और वह मोक्ष होने तक आत्मा के साथ में ही रहता है!

डिस्चार्ज में तो स्वतंत्रता होती ही नहीं, लेकिन चार्ज में भी आत्मा की स्वतंत्र शक्ति नहीं है, डिस्चार्ज के धक्के से नया चार्ज हो जाता है, अज्ञानता के कारण। गतजन्म में कर्मों का 'चार्जिंग' योजना के रूप में होता है, जो इस जन्म में रूपक के रूप में, डिस्चार्ज के रूप में होता है। योजनरूप होता है, तभी तक उसमें परिवर्तन संभव हो सकता है। रूपक में आने के बाद ऐसा असंभव ही है। इस जन्म का बदलाव अगले जन्म में फल देगा और यदि आयोजन ही रुक जाए तो आत्यंतिक मुक्ति मिल जाए!

एकेन्द्रिय से मनुष्यगति तक का परिवर्तन 'इवोल्युशन की थ्योरी' के अनुसार वाजिब है, लेकिन मनुष्य में आने के बाद, अहंकार की गरदन ऊँची होती है, कर्ता बनकर 'क्रेडीट-डेबीट' करने लगता है, मनुष्य जीवन में बरती हुई वृत्तियाँ-पाशवी, मानवी, राक्षसी या दैवीय वृत्तियों के परिणाम स्वरूप चतुर्गति के द्वार खुल जाते हैं। एक बार मनुष्य बनने के बाद, बहुत हुआ तो आठ जन्म तक अन्य योनि में भटकर 'बेलेन्स' पूरा करके वापस मनुष्य में ही आ जाता है। भटकन का रुकना तो आत्मज्ञान के बाद ही हो सकता है! आत्मज्ञान होने के बाद की योनियाँ क्रमबद्ध चलती हैं, यदि ऐसा नहीं हो तो सबकुछ नियति के अधीन ही माना जाएगा न? जीवों का प्रथम बार मनुष्य योनि में आने का काल निश्चित है, लेकिन मनुष्यगति में आने के बाद अहंकार खड़ा होने से उलझनें खड़ी हो जाती हैं, परिणामस्वरूप चतुर्गति में भटकता है। कैसे भी संजोगों की भीड़ में खुद, अहंकार को मुक्ति की दिशा में ही मोड़े तो मोक्ष मिल जाएगा, लेकिन अहंकार को मोड़ना आसान नहीं है, इसलिए मनुष्य में आने के बाद मोक्ष में जाने का काल निश्चित नहीं है। वह तो जब सम्यक्‌दृष्टि हो जाए, उसके बाद ही मोक्ष में जाने का काल निश्चित हो सकता है। यह तो लोकसंज्ञा के अनुसार चलकर संसार की तरफ़ बढ़ता जाता है। 'ज्ञानीपुरुष' को पाने के बाद, ज्ञानी की संज्ञा के अनुसार प्रवर्तन करे तो मोक्ष प्राप्त करेगा!

सूर्य के संयोग से परछाई उत्पन्न होती है, दर्पण के संयोग से प्रतिबिंब उत्पन्न होता है, उसमें सूर्य का या दर्पण का कर्तापन कितना? परछाई को

या प्रतिबिंब को देखकर मात्र बिलीफ़ बदली है कि 'मुझे' यह क्या हो गया? 'रोंग बिलीफ़' हो जाने के कारण अहम् और बुद्धि की उत्पत्ति हुई, जिनके आधार पर प्रकृति की प्रवर्तना बनी (शुरूआत हुई)। वास्तव में 'मूल लाइट' कि जिसके प्रकाश से अहम् और बुद्धि प्रकाशित होकर प्रकृति को प्रकाशमान करने लगे, उस 'मूल लाइट' की तरफ़ की दृष्टि, उसका भान खत्म हो जाने से 'मूल लाइट' पर पर्दा पड़ गया, भ्राँति का! और प्रकृति के हाव-भाव को 'खुद के' ही हाव-भाव मानकर, 'खुद' परमात्मपद में से निकलकर 'खुद' प्रकृति के स्वरूप में बरतने लगा!!! जैसे कि दर्पण की चिड़िया को दूसरी सच्ची चिड़िया मानकर मूल चिड़िया चोंच मारती रहती है, ऐसा ही है न! कैसे फँसे! संयोगों में खुद परमात्मा कैसे फँसे हैं!! इसके बावजूद भी परमात्मा तो निज स्वभाव में त्रिकाल-बाधितरूप से ही रहे हुए हैं।

संयोगों के दबाव से आत्मा का ज्ञान पर्याय विभाविक हो गया है, मूल आत्मा नहीं। विभावदशा में जैसी कल्पना की, *पुद्गल* भी वैसा ही विभाविक हो गया, परिणाम स्वरूप मन-वचन-काया, गढ़े गए और 'व्यवस्थित' के नियम में फँस गए! इसलिए ही तो इस गुह्यतम विज्ञान के ज्ञाता, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' के संयोग से खुद की 'मूल लाइट' एक बार दृष्टि में आ जाने से 'खुद' मुक्तिपद प्राप्त करता है!!! जिस प्रकार जब गजसुकुमार के सिर पर ससुरजी ने जलती हुई सिगड़ी की पगड़ी बाँधी, उस घड़ी वे खुद नेमिनाथ भगवान के दिखाए हुए मूल लाइट में रहे और इस संयोग को ज्ञेय के रूप में ज्ञान में देखा और मोक्ष प्राप्त किया!

निजस्वरूप की और कर्तास्वरूप की रोंग बिलीफ़ से राग-द्वेष उत्पन्न होने के कारण अगले जन्म के लिए मन-वचन-काया की तीन बेटरियाँ चार्ज की भजना करती हैं और पुरानी तीन बेटरियाँ स्वाभाविक रूप से डिस्चार्ज की भजना करती हैं। 'ज्ञानी कृपा' से 'राइट बिलीफ़' बैठ जाए, तब वह खुद मुक्ति प्राप्त करेगा!

आत्मा के आदि या अंत के विकल्पों का शमन करने के लिए ज्ञानी आत्मा को अनादि-अनंत कहकर छूट गए! क्योंकि सनातन वस्तु की आदि

या अंत अथवा बढ़ना-घटना कैसा? उसका आवागमन कैसा? गोलाकार की शुरूआत कौन-सी?

जिसकी आदि ही नहीं उसे बनाएँगे कैसे? बाकी बननेवाले और बनानेवाले दोनों विनाशी ही होते हैं।

हर एक वस्तु, जगत् स्वयं, स्वभाव से ही आगे बढ़ते रहने के कारण समसरण मार्ग में से जितने जीव सिद्धक्षेत्र में जाते हैं, उतने ही जीव अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में प्रवेश करते हैं, जिसके कारण व्यवहार राशि की रचना (व्यवहार राशि में आनेवाले आत्माओं की कुल संख्या) वैसी की वैसी रहती है। यदि इनमें से एक भी कम हो जाए तो कुदरत का प्लानिंग बिगड़ जाएगा और आज चंद्र तो कल सूर्य ग़ैरहाज़िर हो जाएँगे!

जनसंख्या के बढ़ने या घटने की हद कुदरत के हानि-वृद्धि के निश्चित नियम से बाहर जा ही नहीं सकता!

आत्मा स्वभाव से ही मोक्षगामी है, यदि बीच में दख़ल नहीं हो तो! शुभ विचारों से हल्के परमाणुओं का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का ऊर्ध्वगमन होता है और भारी-भरकम परमाणुओं के ग्रहण होने से वनस्पतिकाय तक पहुँचकर-जहाँ नारियल, आम या रायण के पेड़ में प्रवेश करके खुद के किए हुए प्रपंचों के दण्डस्वरूप लोगों को आजीवन मीठे-मधुर फल देकर, ऋणमुक्त, कर्ममुक्त बनता है! और अंत में ज्ञानीपुरुष के पास शुद्धात्मा जानने के बाद स्वभाव में रहकर और *पुद्गल* के प्रसंगों का पूर्णरूप से *निकाल* (निपटारा) होने पर, मोक्ष में जा सकता है। इन वैज्ञानिक नियमों में किसीकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

जगत् में भासित भिन्नत्व, भ्राँति के कारण, अवस्थाओं के कारण है, बुद्धि की डिग्री की दृष्टि से देखने के कारण है! मूल तत्व होकर सेन्टर में देखने पर अभिन्नता है, वही परमात्म दर्शन है!!!

ज्ञानी 'जैसा है वैसा' देखकर बोलते हैं। जो 'है' उसे 'नहीं' नहीं कहते और जो 'नहीं' है उसे 'है' नहीं कहते। वीतरागों ने सनातन तत्वों

के गुण–उत्पाद्, व्यय और ध्रौव–उसमें उत्पन्न होना और विनाश होना, वह वस्तु के पयायों को और स्थिर रहना, वह वस्तु के गुण को कहा है। जिनके स्थूल रूपकों में लोगों ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को मान लिया और उनकी मूर्तियाँ रखीं!!! अरे, गीता की, गायत्री की भी मूर्तियाँ रखीं!!! गीता में श्रीकृष्ण के कहे हुए अंतरआशय को सूक्ष्मतम स्वरूप में भजने के बजाय स्थूल मूर्ति की भजना की! गायत्री के मंत्र को जपने के बदले मूर्ति में संतोष पाया!! बात की वैज्ञानिक गूढ़ता को भूल गए और स्थूल पकड़ लिया!

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की मूर्तियों को सत्व, रजो और तमो गुण के प्रतीक के रूप में रखा गया है। रूपकों में सत्यता की टेढ़ी गली में उलझने के बजाय मुड़कर वापस खुद के घर की ओर जाना उत्तम! उल्टी दिशा में तीव्र वेग से प्रवहमय हो रहे लोगों को ज्ञानी सच्ची दिशा की ओर मोड़ते हैं, वह भी निमित्तभाव से, कर्ताभाव से नहीं!

सत्य का शोधन तो निराग्रहता से ही होता है। आग्रह, वह अहंकार है। मैं चंदूलाल, इसका चाचा, इसका मामा...यह 'रिलेटिव' सत्य 'रियल' में असत्य ही सिद्ध होता है!

ज्ञानी हमेशा वास्तविकता ही 'ओपन' करते हैं, कोई उसे नहीं स्वीकारे तो खुद का सही ठहराने के लिए ज्ञानी सामनेवाले के साथ, उसके सोपान पर बैठे नहीं रहते। 'तेरी दृष्टि से सच है' ऐसा कहकर छूट जाते हैं! खुद के परम सत्य का भी जहाँ पर आग्रह नहीं है, वहाँ पर संपूर्ण वीतरागत्व प्रकट होता है!

अज्ञान को जान ले तो सामनेवाले के किनारे पर रहा हुआ ज्ञान मिल ही जाता है। आत्मा को जानेगा तो *पुद्गल* को जान जाएगा। और *पुद्गल* को जानेगा तो आत्मा को समझ जाएगा। वेदांती *पुद्गल* का अंत ढूँढने में लग गए और नेति-नेति कहकर रुक गए! केवळज्ञानी, सर्व प्रथम निज आत्मस्वरूप को प्राप्त करके, जो शेष बचा, उसे *पुद्गल* कहकर मुक्त हो गए!!! वास्तव में आत्मज्ञान जानना नहीं है। खुद को, खुद के ही स्वरूप

का भान पाना है। सिर्फ शब्द-आत्मा को जानने से कुछ नहीं होता।

अभेद का निरुपण करवानेवाले वेदों के द्वारा भी भेदबुद्धि का ही उपार्जन होता है, अबुधता प्राप्त करने पर ही अभेदबुद्धि फलित होगी। ज्ञानीपुरुष ने, 'वेद' 'थ्योरिटिकल' हैं, विज्ञान 'प्रेक्टिकल' है, ऐसा कह दिया। वेद बुद्धिगम्य ज्ञान, 'इन्डायरेक्ट' प्रकाश है और ज्ञान 'डायरेक्ट' प्रकाश है! जहाँ नहीं पहुँचे वेद, वहाँ पहुँचे 'ज्ञानी'! चार वेद, चार अनुयोग आत्मतत्व को दिखाते हैं, परन्तु उन्हें प्राप्त नहीं करवा सकते। श्रुतवाणी चित्त को निर्मल बनाती है, ज्ञान का उत्तम अधिकारी बनाती है, परन्तु मूल वस्तु का साक्षात्कार तो असाधारण कारणरूप ज्ञानीपुरुष उनकी संज्ञा से करवाते हैं! वहाँ पर शब्दरूप वेद निःशब्द आत्मा का किस प्रकार से वर्णन कर सकते हैं? वेद ज्ञानस्वरूप और वेत्ता विज्ञानस्वरूप हैं! विज्ञान तो स्वयं क्रियाकारी होता है, ज्ञान नहीं! वेत्ता वेद को जानते हैं, वेद वेत्ता को नहीं। तमाम दर्शन, तमाम नय, तमाम दृष्टियाँ एक हैं और भिन्न भी हैं। सीढ़ी एक ही है, लेकिन सोपान भिन्न-भिन्न हैं!!! कृष्ण भगवान ने वेद को भी त्रिगुणात्मक कह दिया और आत्मा पाने के लिए अर्जुन को वेद से परे जाने को कहा!

वेदांत बुद्धि को बढ़ावा देनेवाले हैं। परन्तु वेदांत और जैन, दोनों मार्गों से स्वतंत्ररूप से समकित हो सकता है।

आत्मा न तो द्वैत है, न ही अद्वैत! आत्मा द्वैताद्वैत है!!! द्वैत-अद्वैत दोनों विकल्प हैं, जब कि आत्मा निर्विकल्प है। द्वैत-अद्वैत दोनों द्वंद्व है, आत्मा द्वंद्वातीत हैं। जब तक सांसारिक असर होते हैं, तब तक 'अद्वैत हूँ', ऐसा मान ही नहीं सकते। अद्वैत, वह निराधार या निरपेक्ष वस्तु नहीं है, द्वैत की अपेक्षा से है। 'रिलेटिव व्यू पोइन्ट' से आत्मा द्वैत और 'रियल व्यू पोइन्ट' से अद्वैत है! इसलिए 'ज्ञानी' ने आत्मा को द्वैताद्वैत कहा है। 'स्व'-वह अद्वैत है और 'पर'-वह द्वैत है। स्व में ही उपयोग रखने के लिए इसे अद्वैत कहा गया है। जब तक देह और केवळज्ञान दोनों हैं, तभी तक द्वैताद्वैत है, फिर मोक्ष में कोई विशेषण नहीं रहता है। अद्वैत स्वयं विशेषण है।

क्या जगत् मिथ्या है? दाढ़ दुखे, तो पूरी रात 'मिथ्या है' की माला फेरने से क्या दुःख मिथ्या हो जाता है? जगत् को मिथ्या माननेवाले रास्ते में क्यों पैसे या खुद की प्रिय पोटली को फेंक नहीं देते? जगत् मिथ्या नहीं है और ब्रह्म भी मिथ्या नहीं है। जगत् 'रिलेटिव' सत्य है और ब्रह्म 'रियल' सत्य है। जो मूल वस्तु को यथार्थ रूप से समझने नहीं देती, वह माया है।

ब्रह्मज्ञान, वह आत्मज्ञान का प्रवेशद्वार है। साधन, स्वरूप की एकाग्रता करवाते हैं, परन्तु स्वरूप की प्राप्ति नहीं। आत्माज्ञान से ही स्वरूप की प्राप्ति होती है। जगत् की विनाशी वस्तुओं पर से निष्ठा उठकर अविनाशी ब्रह्म की निष्ठा बैठ जाए, ब्रह्मनिष्ठ बन जाए, उसे ब्रह्मज्ञान कहा है। और आत्मनिष्ठ पुरुष तो स्वयं परमात्मा ही कहलाते हैं! आत्मनिष्ठ अबुध होते हैं और ब्रह्मनिष्ठ में बुद्धि रहती है!

शब्दब्रह्म, नादब्रह्म वगैरह 'टर्मिनस' तक जाते हुए बीच के 'फ्लेग' स्टेशन हैं, जो कि बहुत हुआ तो एकाग्रता में रख सकते हैं। एकाग्रता से अध्यात्म की आदि है, फिर भी आत्मा उससे असंख्य मील दूर है! शब्द सनातन नहीं, परन्तु दो-तीन वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न होनेवाली वस्तु है, अस्वाभाविक है। फिर भी जो शब्द अनुभव करवा दे, वह सच्चा, परन्तु अंत में तो शब्द का भी अवलंबन छूट जाता है और निरालंब दशा प्राप्त होती है।

ब्रह्ममय स्थिति होने के बाद जागृति पूर्णता तक पहुँचती है और जीवमात्र में शुद्ध ही दिखता है। 'अहम् ब्रह्मास्मि', उसमें खुद अपनी जात का अहंकार है। यह अहंकार यानी खुद जहाँ पर नहीं है, वहाँ पर 'मैं हूँ' का आरोप करता है। ब्रह्मप्राप्ति का परिणाम निरंतर परमानंद का स्वसंवेदन! जनकविदेही जैसी दशा!! संसार के सर्व संयोगों में भी परम असंगतता का अनुभव!!!

ब्रह्मप्राप्ति के लिए मल-विक्षेप को अथवा तो राग-द्वेष को निकालने के लिए जन्मोंजन्म तक वृथा प्रयत्न करता है! किन्तु ब्रह्मप्राप्ति में बाधक-

कर्ता 'रूट कॉज़' अज्ञान है, जिसे और कोई भी नहीं निकाल सकता सिवाय 'ज्ञानीपुरुष' के! आत्मा को आवृत करनेवाला अज्ञान है, न कि अहंकार!

ज्ञान की आंतरिक जागृत दृष्टि कैसी होती है? प्रथम विज़न में स्त्री, पुरुष 'कम्पलीट' 'नेकेड' दिखते हैं। द्वितीय 'विज़न' में त्वचारहित काया दिखती है और तृतीय 'विज़न' में चीरा हुआ देह, आंतें, माँस-हड्डियोंवाला दिखता है!!! और अंत में सभी में ब्रह्मस्वरूप दिखता है!!!! फिर क्या राग-द्वेष होंगे?

जीवमात्र में चेतन तत्व विद्यमान है, जो स्वभाव से एक है, द्रव्य से नहीं, द्रव्य से तो प्रत्येक चेतन भिन्न-भिन्न और संपूर्ण स्वतंत्र है। सर्व आत्मा यदि एक ही होते, तब तो फिर रामचंद्रजी मोक्ष में चले गए, तो सभी चले जाते न? 'एकोहम् बहुस्याम' क्या ब्रह्म को ऐसी इच्छा हो सकती है?

आत्मा परमात्मा में विलीन होता ही नहीं है। विलीनीकरण में तो प्रत्येक आत्मा को संपूर्ण *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन), खुद की स्वतंत्रता खोकर, अन्य में होम देनी पड़ेगी? ज्ञानी जीवमात्र में संपूर्ण सर्वांग और स्वतंत्र रूप से रहनेवाले परमात्मा के दर्शन करते हैं! यदि आत्मा एक ही होता तो फिर जब रामचंद्रजी मोक्षसुख का आनंद उठा रहे हैं, तब हमें क्यों दुःख है? आत्मा परमात्मा का आविर्भाव होता तब फिर दुःख का वेदन ही नहीं होता न!

आत्मा रियल व्यू पोइन्ट से निराकारी और रिलेटिव व्यू पोइन्ट से साकारी है। सिद्धगति में आत्मा चरमशरीर के देह प्रमाण से एक तिहाई कम होकर दो तिहाई जितने आकार का रह जाता है, स्वभाव से निराकारी होने के बावजूद! शुरूआत में निरंजन-निराकार भगवान की भजना तो जो मनुष्य देह में प्रकट हुए हैं, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष', कि जो साकारी भगवान ही कहलाते हैं, उनकी भजना द्वारा होती है और परिणाम स्वरूप निराकार भगवान की पहचान होती है!

जहाँ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत शक्ति है, अनंत

गुणों के धारक, अरे जो स्वयं परमात्मा ही हैं, ऐसे आत्मा को निर्गुण कैसे कह सकते हैं? निर्गुण कहने से उनके अनंत गुणों की भजना और उसके द्वारा उनकी प्राप्ति से सदा के लिए वंचित नहीं रह जाएँगे? परमात्मा की प्राप्ति तो उनके गुणों की भजना से ही होती है न! आत्मा प्रकृति के गुणों से निर्गुण और स्वगुणों से भरपूर है। प्रकृति का एक भी गुण आत्मा में प्रविष्ट नहीं हुआ है, आत्मा का एक भी गुण प्रकृति में मिश्रित नहीं हुआ है। प्राकृत गुणों के साथ कभी भी मिश्रित हुआ ही नहीं है, ऐसा आत्मा निरंतर शुद्ध ही है!

आत्मा ज्ञानवाला नहीं बल्कि ज्ञानस्वरूप ही है, प्रकाशस्वरूप है, उस प्रकाश के आधार पर ही खुद को सभी ज्ञेय समझ में आते हैं और दृश्य दिखते हैं।

आत्मा सर्वव्यापी है, वह किस अपेक्षा से?

आत्मा का प्रकाश सर्वव्यापी है, न कि आत्मा स्वयं! इस बल्ब की लाइट पूरे रूम को प्रकाशमान करती है, व्याप्त करती है, परन्तु बल्ब पूरे रूम में नहीं है, वह तो अपनी जगह पर ही है। सिर्फ अंतिम जन्म में, चरम-शरीर में कि जब आत्मा परमात्मा बनकर संपूर्ण निरावरण होकर सिद्धपद में प्रवेश करता है, तब पूरा ब्रह्मांड प्रमेय बन जाता है, पूरे ब्रह्मांड में परमात्मा का प्रकाश व्याप्त हो जाता है। खूबी बस इतनी ही है कि इस प्रकाश में कहीं भी तरतमता (ऐसा प्रकाश जिसकी गहनता दूर जाने पर कम नहीं होती, जिस प्रकाश से छाया नहीं पड़ती) नहीं होती! यदि परमात्मा सभी जगह पर होते, कण-कण में होते तो उन्हें ढूँढने को रहा ही कहाँ? अपने अंदर विद्यमान आत्मा कहाँ कहीं पर व्याप्त होने जाता है? इस प्रकार आत्मा चेतनरूप से नहीं परन्तु स्वभावरूप से सर्वव्यापी है!

भगवान प्रत्येक जीव में प्रकाशरूप से रहते हैं। परन्तु जब जीव दृष्टिगोचर होता है तब दिव्यचक्षु से उनके अंदर भगवान के दर्शन हो सकते हैं। प्रभु क्रीचर में है, क्रियेशन में नहीं। लेकिन वे आवृत हैं। जो भाग निरावृत होता है उस दिशा का ज्ञान खुला होता है, जो कि व्यवहार में

वकील, डॉक्टर के रूप में प्रकट होता है। एक आत्मा में पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की शक्ति है, यदि कर्मरज से संपूर्णरूप से निवर्तमान हो जाए तो!

परमात्मा सर्वांश और खुद उसका अंश है, इस भ्रामक मान्यता को खत्म करते हुए ज्ञानी सचोट समझ प्रकट करते हैं कि, आत्माएँ अनंत हैं, स्वतंत्र हैं। रूपी के टुकड़े किए जा सकते हैं, अरूपी के कैसे हो सकेंगे? अंश होने के बाद जुड़कर सर्वांश किस तरह से हो पाएगा? भगवान के कभी टुकड़े हो सकते हैं? सूर्य कभी भी किरण नहीं बन सकता और किरण कभी भी सूर्य नहीं बन सकती!!! सनातन तत्व सदा अविभाज्य ही होता है। जितने अंशों में आवरण हटता है, उतना आंशिक ज्ञान प्रकट होता है। जहाँ पर सर्व प्रदेशों के आवरण खुल जाते हैं, वहाँ पर परमात्मा सर्वांश स्वरूप से प्रकाशमान हो जाते हैं!

खंड : २

'मैं कौन हूँ?' जानें किस तरह?

आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म, जीव-शिव, ईश्वर-परमेश्वर, ये सभी पर्यायवाचक शब्द हैं। पर्यायों में परिवर्तन होने से दशा में परिवर्तन दिखता है, परन्तु मूल 'वस्तु' में परिवर्तन नहीं होता। दशा परिवर्तन से घर में पति, दुकान में सेठ और कोर्ट में वकील! परन्तु होता है वही का वही 'खुद', सभी जगहों पर!!!

जीव और शिव में क्या भेद है? खुद ही शिव है लेकिन उसे हो गई भ्रांँति और बन बैठा जीव! यह जुदापना की भ्रांँति टूटी और यह भेद खत्म हुआ कि हो गया जीव-शिव अभेद!

जीव को जीना-मरना तो तभी तक है कि जब तक संसारी दशा को खुद की माने! जिसका जीना-मरना मिट गया, वह शिव-आत्मा, जीव कर्म सहित होता है और आत्मा, कर्म रहित। लेकिन दोनों में आत्मा वही का वही! कर्ता-भोक्ता, वह जीव और अकर्ता-अभोक्ता, वह आत्मा! जब

तक 'आप भगवान' और 'मैं आपका भक्त' तभी तक जुदाई! 'मैं खुद ही परमात्मा हूँ', ऐसा भान होने के बाद फिर भेद नहीं रहता, और बन गया वीतराग! निर्भय!! और महामुक्त!!!

ईश्वर और परमेश्वर - इसमें ईश्वर राग-द्वेषवाला, कर्तापन के अहंकार सहित, विनाशी वस्तुओं में मूर्छावाला और परमेश्वर अर्थात् वीतराग-अकर्ता, खुद के अविनाशी पद को ही भजे, वह! फिर भी ईश्वरपद तो विभूतिस्वरूप है! आर्तध्यान और रौद्रध्यान से निवृत्ति, वह वीतरागत्व की प्रथम कड़ी है।

'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसा बोलने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन ऐसी बिलीफ़ बरतनी नहीं चाहिए!

परमात्मा दशा प्राप्त करने के पथ में आनेवाले 'माइलस्टोन' की पहचान पथिक को पथ की पूरी-पूरी 'सिक्योरिटी' करवाती जाती है।

जब तक भौतिक सुखों की वांछना है, वृत्तियाँ भौतिक सुख ढूँढने के लिए ही भटकती हैं, तब तक बहिर्मुखी आत्मा है, मूढ़ात्मा है। मूढ़ात्मदशा में जीवात्मा को मात्र अस्तित्व का ही भान रहता है, *पुद्गल वळगणा* (बला, पाश, भूतावेश) को मात्र खुद का ही स्वरूप मानता है, वह प्रथम निशानी ! द्वितीय निशानी यह कि जब मूढ़ात्मा में से अंतरात्मदशा में आता है, तब जो वृत्तियाँ बाहर भटक रही थीं, वे वापस निजघर की ओर मुड़ने लगती हैं। मूढ़ात्मा को 'ज्ञानीपुरुष' निमित्तभाव से प्रतीति करवाते हैं कि यह *पुद्गल*रूपी *वळगणा* खुद की नहीं है, खुद तो परमात्मा ही है, तब 'मैं'पन परमात्मा में प्रथम प्रतीतिभाव से अभेद होता है। अब अस्तित्व का ही नहीं, परन्तु उसे वस्तुत्व का, यानी कि 'मैं कौन हूँ' का भान रहता है। यह अंतरात्मदशा यानी कि 'इन्टरिम गवर्नमेन्ट' की स्थापना। 'इन्टरिम गवर्नमेन्ट' को दो कार्य करने होते हैं। व्यवहार के उदय में, उसमें उपयोग रखकर व्यवहार का समभाव से *निकाल* करना और खाली समय में आत्म-उपयोग में रहना। इस अंतरात्मदशा में आने से खुद अमुक अंशों तक स्वतंत्र बनता है और अमुक अंशों तक परतंत्र रहता है। फिर भी परमात्मदशा की

तरफ़ प्रगति होती जाती है, होती जाती है। 'ज्ञानीपुरुष' कि जो परमात्मदशा में हैं उनका ज्ञान-दर्शन प्राप्त करने से अंतरात्मदशा प्राप्त होती है। फिर अंतरात्मा परमात्मा को देखता है और उस रूप होता जाता है! 'खुद परमात्मा है' इस प्रतीति में से अब ज्ञानभाव से अभेद होता है। वस्तुत्व की भजना से पूर्णत्व आसानी से सध जाता है। और जब संसार का संपूर्ण *निकाल* हो जाता है तब हो जाती है, फुल गवर्नमेन्ट, तब हो गए संपूर्ण परमात्मा!!!

केवळी दशा में आत्मा परमात्मा ही है। शब्दरूपी अवलंबन में रहे, तब तक अंतरात्मा और भ्रांतदशा में मूढ़ात्मा! मैं, बावो, मंगलदास!! वही का वही 'मैं', तीनों में! जो संपूर्ण वीतराग हो चुके हैं, वे परमात्मा! वीतराग होने की दृष्टि जिन्होंने वेदी है वे अंतरात्मा, और भौतिक सुखों में रत रहकर राग-द्वेष करता रहे, वह मूढ़ात्मा!!

इस जगत् से आत्यंतिक मुक्ति प्राप्त किए हुए, सिद्धलोक में विराजमान प्रत्येक सिद्धात्मा, निज-निज के स्वतंत्र स्वाभाविक सुख में, निजस्थिति में ही होते हैं! वहाँ न तो कोई ऊपरी है या न ही कोई 'अन्डरहेन्ड'! सिद्धात्मा स्वभाव से एक ही हैं, ज्ञान-दर्शन रूपी हैं। वहाँ चारित्र नहीं है। वहाँ न तो कोई मिकेनिकल क्रिया है या न ही कोई *पुद्गल* परमाणु। ब्रह्मांड की धार पर उनका स्थान है। वहाँ कोई किसीको, किसी पर किसीका असर नहीं है, उसी प्रकार दूसरे क्षेत्रों पर भी उनका असर नहीं पहुँचता। सिद्ध भगवंत हमें कोई हेल्प नहीं करते, मात्र वहाँ पहुँचने का अपना ध्येय है, इसलिए हम 'नमो सिद्धाणं' की भजना करते हैं!

यह लाइट यदि चेतन होती न तो रूम की हर एक वस्तु को देखती ही रहती! उसी प्रकार सिद्ध भगवान ब्रह्मांड के प्रत्येक ज्ञेय को जानते हैं!

मोक्ष अर्थात् स्व-गुणधर्म में परिणामित होना, स्व-स्वभाव में परिणामित होना, निरंतर खुद के स्वाभाविक सुख में ही रहना, वह!

मोक्ष किसका? जो बँधा हुआ है, उसका! कौन बँधा हुआ है? जो भोगता है, वह। कौन भोगता है? अहंकार!!! मोक्ष प्राप्ति का भाव भी, जो बँधा हुआ है, उसीका है, आत्मा का नहीं है, आत्मा तो वास्तव में मुक्त

ही है, वह कर्ता नहीं है, भोक्ता भी नहीं है। यह तो अहंकार ही मोक्ष ढूँढ रहा है। संसार में कोई स्वाद नहीं रहा, तब मोक्ष ढूँढने निकला है!

जीवन का ध्येय तो मोक्ष का ही होना चाहिए - यदि वह हेतु अत्यंत मज़बूत होगा तो अवश्य उसे प्राप्त करेगा। मोह इस ध्येय में बाधक है। मोह उतरे तब संसार से उकता जाता है, तब फिर मोक्षमार्ग का शोधन करता है!

आत्मदशा प्राप्त होने तक ही विचारदशा की, और वह भी ज्ञानांक्षेपकवंत विचारों की ज़रूरत है, जो आत्मदर्शन की थोड़ी बहुत प्राप्ति करवाएँगे, फिर तो जो दशा है, वह विचारों से परे है! अज्ञानदशा में आत्मनिरीक्षण होता है, वह अहंकार से होता है और आत्मा तो अहंकार के उस पार है!

क्रोध-मान-माया-लोभ के परमाणु मात्र से विशुद्धि प्राप्त करके, जब अहंकार संपूर्ण शुद्धता को प्राप्त करे, तब वह 'शुद्धात्मा' में एकाकार हो जाता है, क्रमिकमार्ग ऐसा है! जब कि 'अक्रम ज्ञान' में 'ज्ञानीपुरुष' 'डायरेक्ट' ही शुद्धात्मापद जो कि अचलपद है, दरअसल, निर्लेप है, वही पद प्राप्त करवा देते हैं!

खुद का स्वरूप शुद्धात्मा है, देह नहीं, ऐसा 'रियलाइज़' हो जाए तो देहाध्यास मिट जाएगा, अहंकार और ममता चले जाएँगे। देहाध्यासी, देहाध्यास से नहीं छुड़वा सकता, जो देहाध्यास से रहित हैं, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' ही छुड़वा सकते हैं।

यह देह, मन, वाणी आदि 'मैं हूँ' ऐसा अनुभव बरते, वह देहाध्यास, और आत्मानुभव होने के बाद यह अनुभव चला जाता है और आत्मा का अनुभव बरतता है। देह के साथ जो तन्मयाकार होता है, वह मूल आत्मा नहीं है, माना हुआ आत्मा यानी कि व्यवहार आत्मा है।

अंदर से, 'यह तेरा गलत है' ऐसा जो बोलता है, वह आत्मा नहीं है परन्तु व्यावहारिक ज्ञान से जो-जो जाना, उसके आधार पर जो रिकार्ड हो चुका है, वह बोलता है! यह सभीकुछ आँख (केमेरा), कान(रिसीवर),

वाणी(टेपरिकार्डर), दिमाग़(मशीन का हेड), और खाना, पीना, बोलना, चलना वह सब 'मिकेनिकल' है।

'मैं पापी हूँ, मैं तपस्वी हूँ, मैं शास्त्रज्ञानी हूँ', जो ऐसा मानते हैं, या फिर देवदर्शन, धर्मध्यान, जप तप आदि ही करते हैं, 'ज्ञानी' ने उसे भी, 'मिकेनिकल आत्मा कर रहा है', ऐसा कह दिया!!! जगत् की मान्यता में जो आत्मा है, जिसे वह स्थिर करने जाता है, वह सचर, 'मिकेनिकल आत्मा' है और दरअसल आत्मा तो अचल है, ज्ञायक स्वभाव का है। मूल में मान्यता ही भूल से भरी हुई है। सचर विभाग में रहकर अचल आत्मा को ढूँढने से प्राप्ति सचरात्मा की ही होगी न! 'मिकेनिकल आत्मा' जो कि स्वयं चंचल है, क्रियाशील है, जगत् उसे स्थिर करने जाए, तो वह किस तरह से हो पाएगा? अचल के प्रति की दृष्टि ही स्वाभाविक अचलता को प्राप्त करवाती है। 'मिकेनिकल आत्मा' और दरअसल आत्मा स्वभाव से भिन्न हैं उस भिन्नता का भान, उसके प्रति दृष्टि, 'ज्ञानी' के अलावा और कौन समझा सकता है, कौन करवा सकता है? दरअसल आत्मा तो केवळज्ञान स्वरूप है, केवळ प्रकाशक रूपी है, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतशक्ति, अनंत सुखधाम, अनंत गुणों से भरपूर, ऐसा चेतन है वह तो!!!

संसार में जिसकी रमणता है, वह वास्तव में मूल आत्मा नहीं है। जब तक राग-द्वेष परिणाम प्रवर्तमान हैं, तब तक शुद्धात्मा पद की प्राप्ति भी नहीं है!

चेतन के स्पर्श से मायावी शक्ति की उत्पत्ति हुई, जो भ्रांत चेतन है। निश्चेतन चेतन यानी सभी बाह्य लक्षण चेतन जैसे भासित होते हैं, परन्तु वास्तव में वह चेतन नहीं है। मूल चेतन तो अंदर है और ऊपर निश्चेतन चेतन का पर्दा है, निश्चेतन चेतन को ही 'मिकेनिकल चेतन' कहा है!

मिश्रचेतन-ज्ञानी का यह मौलिक शब्द क्या सूचित करता है कि अवस्था में तन्मयाकार होता है तभी से मिश्रचेतन होने लगता है। वह फिर दूसरे जन्म में परिपक्व होकर रूपक में आता है, जब डिस्चार्ज की प्रक्रिया शुरू होती है, तब वह 'मिकेनिकल चेतन' कहलाता है!

'रियल आत्मा' और 'रिलेटिव आत्मा', वे क्रमशः शाश्वत् और अशाश्वत् गुणों से परखे जा सकते हैं। जब तक 'रियल' का 'रियलाइज़ेशन' नहीं होता, तब तक 'रिलेटिव आत्मा' को ही 'रियल आत्मा' मानते हैं, भ्राँति के कारण! यह भ्राँति वैज्ञानिक कारणों से ही उत्पन्न होती है। भ्राँति से जाननेवाला और करनेवाला, अविनाशी और विनाशी एक ही रूप में बरतते हैं। जब 'ज्ञानीपुरुष' भ्राँति तोड़ दें और 'रियल' और 'रिलेटिव' के बीच में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल दें, तब आत्मदर्शन जो की गुप्तस्वरूप है, जिसके अलावा जगत् में अन्य कोई अद्‌भुत दर्शन नहीं है, वह प्राप्त होता है! फिर तो खुद क्षेत्रज्ञ बनकर परक्षेत्र की प्रत्येक क्रिया को जानता है। स्वक्षेत्र चूके कि क्षेत्राकार हो गए! जो 'परमानेन्ट' होता है, वही टेम्परेरी को टेम्परेरी कह सकता है, खुद 'परमानेन्ट' ही है, परन्तु उसका भान हो जाए तब!

हर एक का व्यक्तित्व अलग दिखने का कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव के अधीन है! परन्तु जब इसमें क्षेत्र बदलता है, एक ही क्षेत्र में दूसरा आ जाए तब काल बदल चुका होता है, उसके आधार पर भाव बदल चुका होता है, इसलिए द्रव्य भी बदल चुका होता है! बाहर के सभी संयोग बदलते रहने के बावजूद आत्मा के स्वरूप में कुछ भी बदलाव नहीं होता। आत्मा तीनों काल में शुद्ध स्वरूप में ही रहता है, मात्र आवरण के कारण वास्तविकता दृष्टि में आने से रुक जाती है। एक बार दृष्टि शुद्ध हो जाने के बाद अशुद्धि के लिए स्थान नहीं रहता, जब तक अहंकार है, तभी तक उल्टी दृष्टि रहने का कारण है। फिर भी इन सभी परिवर्तनों के समय निश्चय आत्मा उदासीनभाव से, शुद्धत्व में ही रहता है और उसके पर्याय भी शुद्ध हैं। व्यवहार आत्मा को शुद्ध या अशुद्ध पर्याय हैं। व्यवहार सत्य का आग्रह रखने से, फिर से व्यवहार आत्मा उत्पन्न होता है। 'ज्ञानी' नहीं मिलें तो बिगड़े हुए व्यवहार को शुभ करना चाहिए और ज्ञानी मिल जाएँ तो व्यवहार को शुद्ध ही कर लेना चाहिए! 'खुद' व्यवहार में रहे तो 'व्यवहार आत्मा' और 'खुद' 'निश्चय' में रहे तो 'निश्चय आत्मा'! परन्तु मूल सभी में 'खुद' और सिर्फ 'खुद' ही है।

जगत् का अधिष्ठान क्या है? उसे 'एक्ज़ेक्ट' रूप से बताया हो, तो संपूज्य श्री दादाश्री ने! जगत् का अधिष्ठान 'प्रतिष्ठित आत्मा' है! मूल आत्मा तो इसमें संपूर्ण अकर्ताभाव से, उदासीनभाव से ही रहा हुआ है। मात्र दर्शन शक्ति आवृत होने से, विभाविक दृष्टि होने से जगत् खड़ा हो गया है!

जो मूल निश्चय आत्मा है, वह शुद्धात्मा है और व्यवहार में माना हुआ आत्मा, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। 'मैं चंदूलाल हूँ', 'इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ' इस प्रकार 'रोंग बिलीफ़' से प्रतिष्ठा करने से प्रतिष्ठित पुतला खड़ा हो गया है, जो फल देता ही रहता है। फल चखते समय अज्ञानता से फिर वापस नई प्रतिष्ठा करता है और इस प्रकार साइकल चलती ही रहती है।

जैसे शराब के अमल मनुष्य वास्तविकता को भूलकर 'मैं राजा हूँ' ऐसा बोलने लगता है, वैसे ही अहंकार के अमल में 'मैं चंदूलाल हूँ, इसका पति हूँ, बाप हूँ...' ऐसा तरह-तरह का बोलता है! वास्तव में तो खुद परमात्मा ही है, चौदह लोकों का धनी ही है, परन्तु 'रोंग बिलीफ़' से वह खुद स्त्री का पति बन बैठता है और खुद का पद खो बैठता है, 'ज्ञानीपुरुष' उसे निजपद का भान करवाते हैं, अहंकार निर्मूल कर देते हैं, पिछले सभी भ्रांत असर खत्म हो जाएँ, तब उसे पूर्णपद प्राप्त होता है! वर्ना जब तक अहंकार है, तब तक बुद्धि के 'विज़न' से दिखता है, और आत्मा का कर्ता-भोक्तापन माना जाता है। ज्ञान से देखने पर 'आत्मा कुछ भी नहीं करता', ऐसा 'फ़िट' हो जाता है। 'रोंग बिलीफ़' खत्म हो जाए, तो वास्तविकता दृश्यमान होती है। बदली हुई बिलीफ़ ही संसार उपार्जन का, प्रकृति की उत्पत्ति का कारण है। मूल आत्मा इसमें सदा असंग-निर्लेप ही रहा है!

'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' से प्रकृति खड़ी होती है, उसमें किसीका कर्तापन नहीं है। प्रकृति इफेक्टिव है और उसका असर 'खुद' पर होता है, परन्तु जब तक 'रोंग बिलीफ़' बैठी हुई है, तभी तक!

'राइट बिलीफ़' से 'रोंग बिलीफ़' का छेदन होता है और 'राइट

बिलीफ़' का तो खुद अपने आप से ही छेदन हो जाता है। और वही, ऐसे कलिकाल में भी मुक्ति के लिए अक्रम विज्ञान की, वर्तमान 'ज्ञानीपुरुष' की यही ग़ज़ब की खोज है! 'राइट बिलीफ़' में बरते तो स्वसत्ताधारी है और 'रोंग बिलीफ' में बरते तो परसत्ताधीन है। मिथ्यादृष्टि सबकुछ उल्टा दिखाती है। जब 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ और उनका सत्संग सुनें, तभी से दृष्टि सम्यक होने लगती है या फिर 'ज्ञानीपुरुष' से प्रार्थना करके अपनी दृष्टि बदलवा लेनी चाहिए। एक बार दृष्टि बदल जाने के बाद फिर वह भगवान होता जाता है!

शुभाशुभ धर्म में सत्य-असत्य का स्थान है। सत्य पर राग और असत्य पर तिरस्कार, यही प्राप्ति का तरीक़ा है। शुद्धधर्म में, आत्मधर्म में उसका स्थान नहीं है। आत्मधर्म तो राग-द्वेष से परे, वीतरागता का है। दृष्टिविष से राग-द्वेष होते हैं। जो दृष्टि विनाशी वस्तुओं की तरफ़ थी, उसे 'ज्ञानीपुरुष' अविनाशी की तरफ़ मोड़ देते हैं, बदल देते हैं। फिर 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' दिखता है।

आत्मसाक्षात्कार और आत्मानुभव में बहुत फ़र्क़ है। अनुभव तो अंतिम स्थिति है और वह हमेशा के लिए होती है और साक्षात्कार में मात्र आत्मा की प्रतीति बैठती है। आत्मानुभव होने के बाद चारित्र में आए, तो उसे 'बरत रहा है', ऐसा कहा जाएगा!

अरूपी आत्मा का साक्षात्कार करनेवाला भी अरूपी है, अत: स्वभाव से स्वभाव मिल जाता है, और वृत्तियाँ वापस निजघर की तरफ़ मुड़ती हैं।

आत्मा 'क्या है' और 'क्या नहीं', दोनों को जाने, तब आत्मा को जान लिया, कहा जाएगा। अज्ञानदशा में 'आत्मा शुद्ध-बुद्ध है' ऐसा नहीं कहते हैं, बहुत हुआ तो देह की (अपेक्षा) दृष्टि से अशुद्ध है और आत्मा की दृष्टि से शुद्ध है, ऐसा कह सकते हैं।

जो एक बार चखने के बाद वापस कभी भी नहीं जाए, वह आत्मा का आनंद है। आकर चला जाए, वह मन का आनंद है। जब तक चित्त कषायों में पड़ा हुआ हो, तब तक आत्मानुभव असंभव है! निरंतर परमानंद

स्थिति, वही आत्मानुभव है।

जो चिंता-दुःख होते हैं, वे परवस्तु में हैं, खुद में नहीं हैं, ज्ञानी यह भान करवा देते हैं, उसके बाद ऐसी दृढ़ प्रतीति बैठ जाती है कि आत्मा को कुछ भी नहीं होगा।

'एक्ज़ेक्ट' रूप में आत्मा प्राप्त होने के बाद मात्र डिस्चार्ज कर्म ही बाकी रहते हैं, *संवरपूर्वक की निर्जरा* (दोबारा कर्म बीज नहीं डलें और कर्म फल पूरा हो जाए) ही होती है, फिर बंध नहीं पड़ता। कर्म की सत्ता कब तक है कि जब तक उसे 'खुद' आधार देता है, वह आधार हट जाए तो कर्म 'न्यूट्रल' बन जाते हैं। आधार किस तरह से देते हैं कि करता है उदयकर्म और कहता है कि 'मैंने यह किया', यह अज्ञानता से है! 'ज्ञानीपुरुष' संसार की सभी क्रियाएँ करने के बावजूद भी 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ' सतत ऐसे ख़याल सहित आत्मा में ही रहते हैं। जब कि अज्ञानी, 'मैं करता हूँ' के ख़याल से एक क्षण भी बाहर नहीं होता!

'जिसने आत्मा को जाना, उसने सर्व जाना।' जिन्हें आत्माज्ञान है, वे कारण सर्वज्ञ, कारण केवळज्ञानी कहलाते हैं! आत्मज्ञानी निराग्रही, निर्अहंकारी होते हैं।

'मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ' ऐसे गाते रहने से कुछ भी नहीं होता। इसके लिए तो आत्मा का अनुभव होना चाहिए। आत्मज्ञान प्राप्त करने के आज तक जो-जो साधन किए, वे सभी बंधनरूप हो गए। सत्साधन यानी कि प्रत्यक्ष प्रकट 'ज्ञानीपुरुष' का सेवन हो (के सानिध्य में रहकर ज्ञान को समझे) तभी छुटकारा होता है! साधन तो मात्र ज्ञान तक ले जा सकते हैं, जब कि आत्मा तो 'विज्ञान स्वरूप' है। आत्मा इस देह के, घरों के, लाख दीवारों के भी आरपार जा सकता है, ऐसा सूक्ष्मतम है। वह किस तरह से मिल पाएगा? चाहे कितनी भी कठोर तपश्चर्या या साधना करें फिर भी आत्मसाक्षात्कार होना कठिन है। आधे मील की दूरी पर स्टेशन हो और खुद उल्टे रास्ते बाईस मील चले तो उसमें भूल किसकी? रास्ता भूले, उसमें देह की क्या भूल? भूल तो

सब अज्ञानता की है।

ज्ञानी आत्मा का ज्ञान देते हैं, इतना ही नहीं परन्तु सृष्टि की सर्व उलझनों का सर्वांगी समाधान भी देते हैं। ज्ञानी से स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में अंतराय आए तो 'ज्ञानी से ज्ञान प्राप्त करना ही है' ऐसे निश्चय से टूट जाते हैं या फिर ज्ञानी से विनती करे कि 'मेरे अंतराय तोड़ दीजिए' तो वे तोड़ देते हैं। वर्ना आत्मा प्राप्त करने की इच्छावाले को कोई प्रतिकूलता आती ही नहीं। प्रतिकूलता खुद की ही कमज़ोरी के कारण हैं। निजघर में जाने में प्रतिकूलता कैसी?

खुद आत्मा का अनुभव करना हो तो जब कोई जेब काटे, गालियाँ दे, मारे, तो उस घड़ी 'यह मेरे ही कर्म का उदय है, सामनेवाला तो निमित्त है, वह तो मुझे कर्म में से मुक्त करवा रहा है' ऐसा करके वह निर्दोष दिखे और ऊपर से उसे आशीर्वाद दें, और ऐसा हमेशा रहे तो आत्मा प्राप्त होगा ही। इस काल में इतना सब अपने आप हो सके, खुद की ऐसी शक्ति नहीं होती, इसलिए 'ज्ञानी' से एक बार आत्मा जागृत करवा लेने पर, फिर आत्मा स्वप्न में भी नहीं भूला जाता।

आत्मा का उद्धार किस तरह से होगा? मूल आत्मा का उद्धार तो हो ही चुका है। मात्र इस माने हुए आत्मा का उद्धार करना है। वह किस तरह से होगा? 'खुद' को जब ऐसा समझ में आ जाएगा कि, 'मेरा स्वरूप तो केवळज्ञान स्वरूप है, केवळदर्शन स्वरूप है, मैं केवळ चारित्रमय हूँ' तब उसका भी उद्धार हो जाएगा। और यह वस्तु 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा और कौन फ़िट करवा सकता है?

आत्मा सूक्ष्मतम है, आत्मा के बाहर के जो प्रदेश हैं वे सूक्ष्मतर है, परन्तु वाणी सूक्ष्मतर नहीं होती, इसलिए वहाँ का वर्णन करते हुए 'वाणी' रुक जाती है। वहाँ तो अनुभव ही निबेड़ा ला सकता है।

जो माना हुआ आत्मा है, उससे खुद यथार्थ आत्मा को देखने जाएगा तो कहाँ से मिलेगा? इन्द्रियदृष्टि अतीन्द्रिय को किस तरह से देख सकेगी? इसके लिए बीच में 'ज्ञानीपुरुष' की आवश्यकता है कि जो दृष्टि बदल

देते हैं, तब दिखता है। इन्द्रियाँ ऐसे ही अंतरमुख नहीं होतीं, इन्द्रियों को बाड़े में नहीं डाल सकते! 'ज्ञानी' ने तो खुद जिस पद को प्राप्त किया है, वही पद हमें प्राप्त करवाते हैं। 'ज्ञानी' मिल जाएँ तो मोक्ष मोक्ष माँग लेना चाहिए। संपूज्य दादाश्री के पास जो 'अक्रम विज्ञान' प्रकट हुआ है, वह भ्राँतिमार्ग से हटाकर मोक्षमार्ग पूर्ण करवा देता है, यानी कि यह पूर्णविराम मार्ग है, अल्पविराम मार्ग नहीं है। अक्रम विज्ञान तो कहता है कि मोक्ष प्राप्ति में यदि संसार बाधक होता, तब तो वह किसीको भी मोक्ष में जाने ही नहीं देता न? अक्रम विज्ञान द्वारा आज मोक्ष अत्यंत आसानी से प्राप्त हो सके ऐसा है इसके लिए अक्रम ज्ञानी के पास पहुँचकर जागृति में, 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी नहीं जानता' वह भाव और किस प्रकार से 'इसे' प्राप्त कर लें, यह भाव ही उसकी प्राप्ति करवाती है। बाकी और कोई भी पात्रता इस काल में नहीं देखी जाती और वैसी कोई पात्रता होती भी नहीं। अक्रम ज्ञानी के पास पहुँच गए, वही पात्रता।

'ज्ञानीपुरुष', परम पूज्य दादाश्री खुद की भावना को छुपी हुई नहीं रख सके, जो उनके कारुण्यताभरे शब्दों से पता चलती है कि ''मेरा 'आइडिया' ऐसा है कि पूरे जगत् में 'इस' विज्ञान की बात कोने-कोने तक पहुँचानी है और हर एक जगह पर शांति होनी ही चाहिए। मेरी भावना, मेरी इच्छा, जो कहो वह, मेरा यही है!''

- डॉ. नीरूबहन अमीन

अनुक्रमणिका

[खंड : २]

❖❖❖❖❖

आप्तवाणी
श्रेणी-८

खंड : १
आत्मा क्या होगा? कैसा होगा?
आत्मा यानी क्या?

प्रश्नकर्ता : आत्मा यानी क्या?

दादाश्री : आत्मा यानी चेतन।

प्रश्नकर्ता : तो चेतन यानी आत्मा और आत्मा यानी चेतन?

दादाश्री : नहीं। आत्मा तो सिर्फ शब्द ही है और चेतन भी सिर्फ शब्द है, परन्तु इन लोगों को समझाने के लिए कहना पड़ता है। वर्ना, वह शब्द से परे हैं। लेकिन उँगलीनिर्देश तो करना पड़ेगा न! नहीं तो पहचानोगे नहीं। किस तरह से पहचानोगे? इसलिए अपने लोग कहते हैं न कि, तेरे आत्मा को खोज? आत्मा अर्थात् 'सेल्फ'! 'खुद कौन है' यह जानना, इसीको आत्मा कहते हैं!! और उसी आत्मा को पहचानना है। 'रोंग बिलीफ़' खत्म हो जाए और 'राइट बिलीफ़' बैठ जाए तब ऐसा हो पाएगा, नहीं तो किस तरह से हो पाएगा?

आत्मा क्या होगा?

दादाश्री : आत्मा वस्तु होगा या अवस्तु?

प्रश्नकर्ता : अवस्तु।

दादाश्री : यह जो दिखता है, वह वस्तु है या अवस्तु?

प्रश्नकर्ता : आत्मा को तो देखा नहीं जा सकता न, इसलिए अवस्तु है, वस्तु को तो देखा जा सकता है न?

दादाश्री : नहीं। वस्तु और अवस्तु, वह आपको समझाता हूँ। हर एक वस्तु जो अविनाशी होती है, उसे वस्तु कहते हैं और विनाशी होती है, उसे अवस्तु कहते हैं। आत्मा आत्मारूप ही है। आत्मा वस्तु के रूप में अनंत गुणों का धाम है! और हर एक वस्तु खुद द्रव्य के रूप में गुण सहित और अवस्था सहित होती है। द्रव्य–गुण–पर्याय जिसमें होते हैं, उसे 'वस्तु' कहते हैं। वस्तु, वह अविनाशी कहलाती है। आत्मा भी खुद वस्तु है, उसका खुद का द्रव्य है, खुद के गुण हैं और खुद के पर्याय हैं। और वे पर्याय उत्पात, व्यय और ध्रुव सहित हैं। और इन आँखों से जो दिखता है, वह सब अवस्तु है, विनाशी है, और आत्मा अविनाशी है, वस्तु है। ऐसी छह अविनाशी वस्तुएँ हैं, जगत् इन छह तत्वों से बना हुआ है। ये छह तत्व एक दूसरे के साथ ऐसे परिवर्तनशील होते रहते हैं और उसके कारण अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। उन अवस्थाओं से यह जगत् दिखता है। जगत् में सिर्फ अवस्थाएँ ही दिखती हैं।

आत्मा जानो, ज्ञानी के पास से

यानी जानने जैसी चीज़ इस दुनिया में यदि कोई है तो वह आत्मा है। और आत्मा को जाननेवाले लोग इस दुनिया में मुश्किल से एक या दो ही होते हैं। यानी कि हर कोई आत्मा को नहीं जान सकता। मनुष्य बाकी सभीकुछ जान सकता है, परन्तु आत्मा को नहीं जान सकता। और जो आत्मा को जान ले न, उसे केवळज्ञान होने में देर ही नहीं लगेगी।

अब यदि वे आत्मा को 'ज्ञानीपुरुष' से जानेंगे तब आत्मा प्राप्त होगा, वर्ना आत्मा कभी भी प्राप्त नहीं होगा। 'ज्ञानीपुरुष' ने आत्मा देखा है, जाना है, अनुभव किया हुआ है और 'खुद' 'आत्मा' स्वरूप ही रहते

हैं। इसलिए ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' के पास से 'खुद' 'आत्मा' को जानेगा, तब काम होगा।

'ज्ञानीपुरुष' के पास ऐसा आत्मा जानने बैठे, तब 'ज्ञानीपुरुष' की सामायिक से पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। और पाप भस्मीभूत हो जाएँ, तभी आत्मा लक्ष्य में आता है, नहीं तो लक्ष्य में नहीं आ पाता। और फिर वह लक्ष्य निरंतर रहता है, नहीं तो दुनिया की कोई चीज़ निरंतर याद ही नहीं रहती, थोड़ी देर याद आती है और फिर वापस भूल जाते हैं। और यह तो 'ज्ञानीपुरुष' के पास पाप धुल जाते हैं, इसलिए आत्मा का लक्ष्य बैठता है।

आत्मा के अस्तित्व की आशंका किसे?

प्रश्नकर्ता : आत्मा होगा या नहीं, यह शंका उत्पन्न हो, ऐसा है।

दादाश्री : आत्मा है ही।

प्रश्नकर्ता : इन सभी फॉरिन के साइन्टिस्टों ने ऐसी सब खोज की है कि काँच के बॉक्स में मरते हुए आदमी को रखकर जीव किस तरह से जाता है, कहाँ से जाता है, इन सबकी जाँच करने के लिए बहुत प्रयत्न किए हैं, परन्तु 'आत्मा है या नहीं', ऐसा कुछ लगा नहीं। 'जीव है ही नहीं' ऐसा सिद्ध कर दिया।

दादाश्री : नहीं। परन्तु 'यह अजीव है' ऐसा कहते हैं? यह पेटी अजीव है या नहीं? अजीव ही है न? तब फिर यह मनुष्य और यह पेटी सब एक सरीखा है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा नहीं है। परन्तु जीव जैसी कोई वस्तु बाहर नहीं निकलती, ऐसा कहना चाहते हैं।

दादाश्री : ये साइन्टिस्ट 'मनुष्य' बनाते हैं, नये हृदय बनाते हैं, सबकुछ बनाते हैं न? अगर वे नया मनुष्य बना दें, तो क्या अपने जैसा व्यवहार कर सकेगा वह?

प्रश्नकर्ता : नहीं कर सकेगा।

दादाश्री : तो फिर किस आधार पर वे समझते हैं कि जीव जैसा कुछ है ही नहीं?

प्रश्नकर्ता : उन लोगों ने तो काँच की पेटी में मरते हुए मनुष्य को रखा था, परन्तु जीव निकलते समय कुछ भी दिखा नहीं इसलिए मान लिया कि जीव नहीं है।

दादाश्री : ऐसा है न, या तो कोई नासमझ मना करेगा, या फिर समझदार मना करेगा। परन्तु इस कारण से सभी लोगों को शंका उत्पन्न नहीं होती है न! और जो शंका करता है न, कि जीव जैसी वस्तु नहीं है, जो ऐसा कहता है न, वही खुद जीव है। जिसे शंका होती है न वही जीव है, नहीं तो शंका होगी ही नहीं। और ये दूसरी जड़ वस्तुएँ हैं न, इनको किसीको भी शंका नहीं होती। यदि किसीको शंका होती है, तो वह जीव को ही होती है, अन्य कोई चीज़ ऐसी नहीं है कि जिसे शंका होती हो। आपको समझ में आता है ऐसा?

मरने के बाद उसे खुद को शंका होगी? नहीं? तो क्या चला जाता होगा? हृदय बंद हो जाता होगा? क्या होता होगा?

प्रश्नकर्ता : हृदय बंद हो जाता है, इसलिए मनुष्य मर जाता है।

दादाश्री : हाँ, उससे तो मनुष्य मर ही जाता है। श्वास के आधार पर ही यह जीवित रहता है। यह जीव जो अंदर है न, वह श्वास के आधार पर ही टिका हुआ है। जब तक श्वास चलता रहेगा, तब तक वह रहेगा।

प्रश्नकर्ता : परन्तु जब शरीर के महत्वपूर्ण अवयव काम करना बंद कर दें, तब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यदि ऐसा ही है, तो जीव जैसी वस्तु ही नहीं रही।

दादाश्री : जीव जैसी वस्तु है ही। वह खुद ही जीव है, फिर भी खुद अपने आप पर शंका करता है। जिसे यह शंका होती है न, वही जीव है। इस देह में जीव नहीं है, ऐसी जो शंका करता है न, वही जीव है। खुद के मुँह में जीभ नहीं हो और खुद बोले कि, 'मेरे मुँह में जीभ नहीं

है', यही सिद्ध करता है कि जीभ है ही अंदर। समझ में आया न? इसलिए यह शंका है। यह वाक्य ही विरोधाभासी है। लोग कहते हैं, 'जब मनुष्य का निधन होता है, तब उसमें जीव जैसी कोई वस्तु नहीं रहती', ये शब्द खुद ही शंका उत्पन्न करते हैं, उसे शंका हुई है। यह शंका ही सिद्ध कर देती है कि जीव है वहाँ पर।

मैं साइन्टिस्टों के पास बैठूँ न, तो उन सभी को तुरन्त समझा दूँ कि यह जीव बोल रहा है। तू भला, तेरी नई शंकाएँ खड़ी कर रहा है? यानी जीव तो देहधारी में है ही। और यह 'जीव निकल जाता है' ऐसा उदाहरण नहीं देते हम लोग?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और यहाँ पर इन्जेक्शन देना पड़ता है न, तब क्यों सुन्न करना पड़ता है? किसलिए सुन्न करना पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : दर्द और असर नहीं हो, इसलिए।

दादाश्री : उस जीव को उतने भाग में से हटाने के लिए 'इन्जेक्शन' देना पड़ता है, जीव को हटाने के लिए सुन्न करते हैं। जब तक जीव रहे, तब तक 'ऑपरेशन' की वेदना सहन नहीं हो पाती, समझ में आया आपको?

आत्मा की अस्ति! कौन-से लक्षण से?

दादाश्री : चेतन और जड़ में कोई फ़र्क़ होगा क्या? चेतन के गुणधर्म होंगे?

प्रश्नकर्ता : अवश्य।

दादाश्री : क्या-क्या गुणधर्म हैं?

प्रश्नकर्ता : चेतन हिल-डुल सकता है, उसे *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) होती है।

दादाश्री : हिलना-डुलना, वह तो मशीनरी भी कर सकती है। स्कूटर, एन्जिन, गाड़ियाँ वगैरह चलते-फिरते हैं ही न! और ये बनाए हुए

पुतले, वे हिलते-डुलते नहीं हैं क्या? जो हिलते-डुलते हैं, वे जीव नहीं कहलाते। हिलने-डुलने से यदि आत्मा का पता चलता, तो फिर मशीनरी भी चलती ही है न। और कौन-से लक्षण से आपको पता चलता है? और किस चीज़ से आपको पता चलता है कि इसमें आत्मा है?

प्रश्नकर्ता : हर एक प्रकार की क्रियाएँ करते हैं हम सब।

दादाश्री : 'सभी प्रकार की क्रियाएँ' वह भी काम नहीं आएगा। 'मशीनरियाँ' सभी प्रकार की क्रियाएँ कर सकती हैं।

प्रश्नकर्ता : 'मशीनरियाँ' सभी क्रियाएँ करती हैं, परन्तु दया और प्रेम नहीं बता सकतीं न?

दादाश्री : हाँ, यह फ़र्क़ है। यानी जहाँ पर ज्ञान है या अज्ञान है, अज्ञान हो तो अज्ञान और ज्ञान हो तो ज्ञान, परन्तु जहाँ किसी भी प्रकार का ज्ञान है या अज्ञान है, दया है, वहाँ पर आत्मा है, ऐसा पक्का हो गया। बाकी जो हिलता है, चलता है, वह तो 'मशीनरी' भी चलती ही है न!

अब यदि किसी में दया नहीं हो और वह गालियाँ देता है तो वहाँ पर आत्मा है या नहीं है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो है ही न।

दादाश्री : तो दया नहीं है वहाँ पर भी आत्मा है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, मशीनरी तो दया और क्रोध तो नहीं बताती है न?

दादाश्री : हाँ, यानी जहाँ पर यह सब है वहाँ पर आत्मा है, ऐसा पक्का हो जाता है। यह 'टेपरिकार्ड' बोलता ज़रूर है, परन्तु क्रोध और लोभ उसमें नहीं होते न? ये जो *लागणियाँ* हैं, वे भी 'टेपरिकार्ड' में नहीं होती हैं न। और जहाँ पर *लागणियाँ* हैं, वहाँ पर आत्मा है।

...लेकिन वे लक्षण किसके?

ये लागणियाँ आत्मा की होती होंगी या देह की होंगी? वह देह का गुण होगा या आत्मा का गुण होगा?

प्रश्नकर्ता : आत्मा का।

दादाश्री : ऐसा! ये क्रोध-मान-माया-लोभ सभी क्या आत्मा के गुण होंगे?

प्रश्नकर्ता : हाँ। सबका कर्ता आत्मा ही होना चाहिए।

दादाश्री : लेकिन लोग तो क्रोध-मान-माया-लोभ निकालना चाहते हैं। यदि ये गुण आत्मा के होते तो फिर वे गुण तो कभी जाएँगे ही नहीं। और लोग क्या क्रोध-मान-माया-लोभ को निकालने का प्रयत्न नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : सभी निकालने के लिए 'ट्राइ' तो कर रहे हैं।

दादाश्री : लेकिन यदि ये आत्मा के गुणधर्म होते तो कोई निकाल ही नहीं सकेगा न! यदि इन्हें निकालेंगे तो आत्मा भी चला जाएगा इसलिए ये आत्मा के गुण नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : ये देह के गुण हैं?

दादाश्री : देह के भी गुण नहीं हैं और आत्मा के भी गुण नहीं हैं। यदि इन्हें आत्मा के गुण कहेंगे, तो क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सब निर्बलताएँ हैं, जब कि आत्मा तो परमात्मा है! उनमें निर्बलता का एक भी गुण नहीं है!!!

और आत्मस्वरूप के कौन-से गुणधर्म?

कुछ लोग कहते हैं न, 'जो बोलता है, वह अंदर आत्मा बोलता है।' लेकिन जो बोलता है, वह जीव भी नहीं है और भगवान भी नहीं है, वह तो 'रिकार्ड' बोलता है। यह मेरी वाणी है न, यह भी 'रिकार्ड' ही बोल रहा है, मैं नहीं बोलता। यह सब 'रिकार्ड' बोल रहा है, 'टेपरिकार्ड'! यह 'ओरीजीनल टेपरिकार्ड' बजता है, उस पर से यह 'टेप' तैयार होती है, फिर उस पर से दूसरी तैयार होती है। यानी पहले यह 'रिकार्ड' और उस पर से जितनी चाहिए, उतनी 'रिकार्ड' तैयार हो सकती हैं। अतः ये जो वाणी बोलते हैं, यह सारी 'मशीन' चल रही है, खाते हैं,

पीते हैं, खून प्रवाहित होता है, लेकिन यह जीव नहीं कहलाता। यह तो मिकेनिकल है। जीव तो ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान अर्थात् प्रकाशस्वरूप है। इसमें जो प्रकाशस्वरूप है ऐसा दूसरे स्वरूप में नहीं होता।

रात को अँधेरे में श्रीखंड हाथ में दें, तो फिर श्रीखंड कहाँ रखते हो? मुँह में रखते समय आँख में नहीं घुस जाता? या मुँह में ही जाता है? क्या कहते हो? क्यों बोले नहीं? घोर अँधेरे में श्रीखंड आपको दे तो आप मुँह में ही डालते हो न? फिर आपसे यदि कोई पूछे कि आपने क्या खाया, तो आप क्या कहते हो?

प्रश्नकर्ता : श्रीखंड।

दादाश्री : फिर आपसे पूछे कि इस श्रीखंड के अंदर क्या-क्या है? तब आप क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : दही, चीनी।

दादाश्री : हाँ। और दही ज़रा बिगड़ गया है, ऐसा-वैसा हो तो पता चलता है या नहीं चलता?

प्रश्नकर्ता : अवश्य।

दादाश्री : और अच्छा हो तब भी पता चलता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और चीनी कम हो तो पता चलता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : चीनी अधिक हो तो पता चलता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और चीनी बहुत अधिक हो तो?

प्रश्नकर्ता : वह भी पता चलता है।

दादाश्री : रात को अँधेरे में किस तरह पता चलता है? अँधेरे में पता चल जाता है? और फिर अंदर किशमिश, चिरौंजी आए तो पता चलता है? इलायची का छोटा दाना हो तो भी पता चलता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो इन सबको जो जानता है न, वही जीव है।

प्रश्नकर्ता : ये लोग कहते हैं कि ज्ञानतंतुओं के कारण पता चलता है, ज्ञानतंतु नहीं होंगे तो पता ही नहीं चलेगा।

दादाश्री : हाँ, ज्ञानतंतु नहीं होंगे तो फिर पता नहीं चलेगा। परन्तु जिसे पता चलता है, वह जीव है। और ज्ञानतंतुओं के बीच में तार की डोरियाँ हैं, यदि वे तार की डोरियाँ तैयार नहीं होंगी तो जीव को पता ही नहीं चलेगा। परन्तु जिसे पता चलता है वह जीव है। आपको समझ में आया न?

हिलना-डुलना, वह तो 'मशीनरी' हिलती-डुलती है। ये गुणधर्म चेतन में नहीं है। चेतन के गुणधर्म कौन-कौन से हैं? उसका अनंत ज्ञानप्रकाश है, अनंत दर्शनप्रकाश है, अनंत शक्तियाँ हैं, अनंत सुख का धाम है!

सुख की पसंदगी, लेकिन जीव को ही

अब, सुख कौन ढूँढता है? जिसे दु:ख पसंद नहीं है, वह कौन है? दु:ख किसलिए पसंद नहीं है? यदि यह शरीर जीव रहित होता न, तो दु:ख और सुख एक समान लगता। इसका क्या कारण है? ऐसा कुछ सोचा है? क्या सोचा है?

किसी भी जीव को दु:ख पसंद नहीं है, यह बात पक्की है न? किसी भी जीव को दु:ख अच्छा लगता है क्या? इन चींटियों के लिए आप यहाँ पर चीनी डालो तो खुश होकर भागदौड़ करके ले जाती हैं और वहाँ पर ऐसे कंकड़ डालो तो? भाग जाती हैं। इसका क्या कारण है? पसंद क्या है? सुख। अत: जिसे दु:ख पसंद नहीं है और जो सुख ढूँढता है, वह जीव है। जो चलता-फिरता है, वह जीव नहीं है।

जहाँ पर *लागणी* होती है, वहाँ पर चेतन

फिर, जिसे *लागणी* होती है, *लागणी* होती है या नहीं? वह जीव है। और जीव ही आत्मा है और वही चेतन है और वह परमात्मा बन सकता है! 'फुल', 'परफेक्ट' हो जाए तब 'वह' 'परमात्मा' बनता है!!

आपको समझ में आया न? कि जहाँ थोड़ी-सी भी *लागणी* होती है, वहाँ पर आत्मा है, चेतन है ऐसा तय हो गया। यानी जहाँ पर *लागणी* है, वहाँ हमें जानना है कि यहाँ पर चेतन है और जिसमें *लागणी* नहीं है वहाँ पर चेतन नहीं है, वहाँ अनात्मा है। ये पेड़-पौधे भी *लागणी*वाले हैं।

प्रश्नकर्ता : पेड़ तो एकेन्द्रिय हैं?

दादाश्री : एकेन्द्रिय यानी उन्हें स्पर्श की इन्द्रियों की *लागणी* है, वे स्पर्शेन्द्रिय की *लागणी* व्यक्त करते हैं। ये जीवमात्र *लागणी*वाले हैं। जिसे *लागणी* उत्पन्न होती है, वहाँ पर आत्मा है ऐसा निश्चित हो गया। जिसे *लागणी* उत्पन्न होती है वही आत्मा है, ऐसा नहीं है, परन्तु जहाँ पर *लागणी* उत्पन्न होती है, वहाँ पर आत्मा है। और जहाँ *लागणी* उत्पन्न नहीं होती वहाँ पर आत्मा नहीं है।

...लेकिन जिसे *लागणी* होती है, वह *पुद्गल*!

अब आत्मा क्या है? वहाँ पर उसे *लागणी* या कुछ नहीं है। आत्मा तो सिर्फ प्रकाश स्वरूप है! परन्तु जहाँ पर लागणियाँ हैं, उस पर से हम पता लगा सकते हैं कि यहाँ पर आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : यानी जिसके आधार पर *लागणी* उत्पन्न होती है वह चेतन है या जहाँ *लागणी* उत्पन्न होती है, उस जगह पर चेतन है?

दादाश्री : 'जिसके आधार पर *लागणी* उत्पन्न होती है वह चेतन है', ऐसे उसका आधार कहेंगे तो वापस नई गड़बड़ पैदा होगी यानी चेतन की उपस्थिति से यह *लागणी* उत्पन्न होती है। अर्थात् जहाँ पर *लागणी* उत्पन्न होती है, वहाँ पर चेतन है।

प्रश्नकर्ता : वह *लागणी* उत्पन्न हुई और जो अभिव्यक्त हुआ, वह चेतन अभिव्यक्त नहीं हुआ है न?

दादाश्री : वह अभिव्यक्त भी सारा *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) ही होता है, लेकिन जहाँ पर *लागणी* उत्पन्न होती है, वहाँ पर चेतन है इसलिए यह *लागणी* उत्पन्न होती है, पीड़ा उत्पन्न होती है। यानी चेतन और जड़ का विभाजन करना हो तो, इस 'टेपरिकार्ड' में *लागणी* उत्पन्न नहीं होती, इसलिए इसमें चेतन नहीं है।

निरंतर 'जानना', वह चैतन्य स्वभाव

प्रश्नकर्ता : यानी चेतन और मेटर में फ़र्क़ है क्या?

दादाश्री : बहुत ही। चेतन तो अरूपी है, जब कि मेटर तो रूपी है, और सड़ जाता है, गिर जाता है ऐसा है, बिखर जाता है, बहुत समय हो जाए तो सड़ता रहता है, और फिर आँख से दिखे ऐसा रूपी है, जीभ से चखा जा सके ऐसा है, कान से सुना जा सके ऐसा है और चेतन तो परमात्मा है!

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा और अनात्मा में फ़र्क़ क्या है?

दादाश्री : इनमें गुणधर्म के आधार पर फ़र्क़ है। हर एक वस्तु के गुणधर्म होते हैं न? यह सोना, सोने के गुणधर्म में होता है, तांबा, तांबे के गुणधर्म में होता है। गुणधर्म से वस्तु पहचानी जा सकती है या नहीं पहचानी जा सकती?

प्रश्नकर्ता : पहचानी जा सकती है।

दादाश्री : उसी प्रकार आत्मा के और अनात्मा के खुद के गुणधर्म होते हैं। उसमें आत्मा के और अनात्मा के काफी कुछ गुणधर्म मिलते-जुलते हैं, परन्तु कुछ बाबत में कुछ गुण नहीं मिलते। जो चैतन्य स्वभाव है वह अन्य किसी वस्तु में नहीं है। चैतन्य अर्थात् ज्ञान और दर्शन!

यानी यह ज्ञान और दर्शन, ये आत्मा के गुण हैं। निरंतर जानते ही

रहने का स्वभाव आत्मा का है। यह जानने का स्वभाव अन्य किसी जड़ में नहीं है। इस देह में जानने का स्वभाव नहीं है। जानने का स्वभाव आत्मा का स्वभाव है और वही परमात्मा है!

आत्मा, कैसा अनंत गुणधाम

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो ज्ञानवाला ही है न?

दादाश्री : वह खुद ही ज्ञान है। खुद ज्ञानवाला नहीं है, खुद ही ज्ञान है! उसे ज्ञानवाला कहेंगे तो 'ज्ञान' और 'वाला' ये दोनों अलग हो गए। अत: आत्मा खुद ही ज्ञान है, वह प्रकाश ही है खुद! उस प्रकाश के आधार पर ही यह सबकुछ दिखता है। उस प्रकाश के आधार पर यह सब समझ में भी आता है, और जाना भी जा सकता है, जान भी पाते हैं और समझ में भी आता है!

यानी आत्मा तो परमात्मा है, अनंतगुण का धाम है! उसके तो बहुत सारे गुण हैं, इतने सारे गुण हैं कि बात मत पूछो!! आत्मा उसके खुद के ही 'स्वाभाविक' गुणों का धाम है, यानी कि वे गुण कभी भी जाएँ नहीं, ऐसे गुणों का धाम हैं! अनंत ज्ञान है, अनंत दर्शन है, अनंत शक्तियाँ हैं, अनंत सुख का धाम है, अव्याबाध स्वरूपी है, ऐसे तरह-तरह के आत्मा के गुण हैं।

वे आत्मगुण कब प्रकट होंगे?

एक सेकन्ड के लिए भी आपमें एक भी आया नहीं है, आप अभी प्राकृत गुण वेदते हो। 'आपकी' बिलीफ़ के अनुसार आपको गुण प्राप्त होंगे। 'आप' 'चंदूलाल' रहोगे तो आपको प्राकृतगुण प्राप्त होंगे और 'आप' 'शुद्ध चैतन्य' बन जाओगे तो फिर खुद के 'स्वाभाविक' गुण उत्पन्न होंगे! आपको जहाँ पर बैठना है, वहाँ बैठो।

जहाँ आत्मा के गुण नहीं हैं, वहाँ पर आत्मा है ही नहीं। यह सोना अपने गुणधर्म में रहता है, तब तक सोना है, दूसरों के गुण में खुद नहीं होता। इस संसार में जो दिखते हैं, वे दूसरों के गुण हैं सारे, वहाँ पर 'खुद'

है ही नहीं। 'खुद' उसमें ज्ञाता-दृष्टा रहता है, परन्तु तन्मयाकार नहीं रहता। 'आत्मा' उनमें मिक्स नहीं हो गया है। आत्मा मिलावटवाला नहीं है, आत्मा *निर्भेल* (मिलावट रहित) है!

आत्मा पहचाना कैसे जाए?

प्रश्नकर्ता : आत्मा देखा जा सकता है? या कल्पना ही है?

दादाश्री : हम सबको हवा दिखती नहीं है, फिर भी आपको पता चलता है न कि हवा है? या नहीं पता चलता? इत्र की सुगंध आती है, लेकिन वह सुगंध दिखती है क्या? फिर भी हमें इस बात का पक्का पता चलता है न कि यह 'इत्र है'? इसी प्रकार 'आत्मा है' उसका हमें यक़ीन होता है! जैसे सुगंध पर से इत्र को पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार आत्मा को भी उसके सुख पर से पहचाना जा सकता है, फिर यह पूरा जगत् जैसा है वैसा दिखता है। उस पर से पक्का पता चल जाता है कि आत्मा के अनंत गुण हैं। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति, अनंत सुखधाम, ये तो कितने सारे गुण हैं! आत्मा खुद ही परमात्मा है, परन्तु 'खुद' को 'इसका' भान होना चाहिए। एक बार भान हो गया कि फिर, सभी गुण प्रकट हो जाएँगे। अनंत भेद से (अनंत रीति से) आत्मा है, अनंत गुणधाम है! उसका एक भी गुण जाना नहीं है आपने अभी तक।

आत्मा त्रिकाली वस्तु है और अनंत सुख का धाम है, जब कि ये लोग यहाँ पर आम में सुख ढूँढने निकले हैं, बाज़ारू आम में, 'मार्केट मटीरियल्स' में! यह आँख से जो दिखता है, कान से जो सुनाई देता है, नाक से सुगंध आती है, जीभ से चखते हैं, यहाँ पर स्पर्श होता है, वे सभी 'मार्केट मटीरीयल्स' हैं।

'ज्ञानी' के परिचय से, अनंत शक्तियाँ व्यक्त होती है

प्रश्नकर्ता : आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं क्या?

दादाश्री : हाँ। लेकिन वे शक्तियाँ 'ज्ञानीपुरुष' के माध्यम से प्रकट होनी चाहिए। जैसे कि जब आप स्कूल में गए थे, तब वहाँ पर सिखाया

था न? आपका ज्ञान तो था ही आपके अंदर, लेकिन वे प्रकट कर देते हैं। उसी प्रकार 'ज्ञानीपुरुष' के पास आपकी खुद की शक्तियाँ प्रकट हो सकती हैं। अनंत शक्तियाँ हैं, लेकिन वे शक्तियाँ ऐसे के ऐसे दबी हुई पड़ी हैं। वे शक्तियाँ हम खुली कर देते हैं। जबरदस्त शक्तियाँ दबी हुई हैं! वे सिर्फ आपमें अकेले में नहीं हैं, जीव मात्र में ऐसी शक्तियाँ हैं, लेकिन क्या करें? यह तो लेयर्स पर लेयर्स (आवरण) डाले हुए हैं सारे!

प्रश्नकर्ता : आत्मा की शक्ति और शारीरिक शक्ति, इन दोनों में कोई संबंध है क्या?

दादाश्री : इन दोनों की शक्तियाँ अलग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : वे दोनों एक-दूसरे पर असर डालते हैं?

दादाश्री : डालते ही हैं न! इस शारीरिक शक्ति के कारण तो वह आत्मा की शक्ति बंद हो जाती है। शारीरिक शक्ति अधिक होती है तो पाशवता बढ़ती है।

प्रश्नकर्ता : और आत्मा की शक्ति अधिक हो तो?

दादाश्री : पाशवता कम होती है और मनुष्यपन उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा की शक्ति को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को क्या प्रयत्न करना चाहिए?

दादाश्री : आत्मा की शक्ति अंदर है ही। आत्मा की शक्ति, वह तो परमात्मापन की शक्ति है। बाकी उस परमात्मा में एक सेका हुआ पापड़ तोड़ने की भी शक्ति नहीं है और यों अनंत शक्तियों के वे मालिक हैं!

प्रश्नकर्ता : हमें तो इन सबका मेल नहीं बैठता।

दादाश्री : वह मेल बैठना ही चाहिए। जब तक मेल नहीं बैठता न, तब तक समझने में फ़र्क़ है ज़रा! यदि मेल नहीं बैठे न, तो वह ज्ञान ही नहीं है, जब अज्ञान हो, तभी मेल नहीं बैठता। वर्ना मेल बैठना ही चाहिए, परन्तु उसके लिए थोड़ा 'टाइम' निकालकर हमें परिचय करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : किस तरह से?

दादाश्री : यहाँ साथ में बैठकर, ज़रा 'टाइम' निकालकर, विशेष रूप से बैठकर 'ज्ञानीपुरुष' से परिचय करना पड़ेगा!

आत्मा की अनंत ज्ञानशक्तियाँ हैं, एकाध-दो ज्ञानशक्तियाँ हैं, ऐसा नहीं है। ये अनंत ज्ञानशक्तियाँ हैं, उसके आधार पर तो ज्योतिष ज्ञान, वकालत का ज्ञान, डॉक्टरी ज्ञान, ये सारा ज्ञान अनावृत हुआ है। हर एक के अलग-अलग 'सब्जेक्ट्स' होते हैं, वे सभी ज्ञान अनावृत हो जाएँ, इतनी सारी ज्ञानशक्तियाँ हैं! यानी आत्मा अनंत शक्ति का धनी है! अनंत ज्ञान शक्ति हैं और अनंत वीर्य शक्तियाँ हैं!! बहुत ग़ज़ब की शक्ति के मालिक हैं, ऐसे ये परमात्मा हैं!!!

'पटेल' पड़ोसी और 'खुद' 'परमात्मा' में

प्रश्नकर्ता : आत्मा का वह स्वरूप कैसा दिखता है? तेजस्वी दिखता है या कुछ आकृति दिखती है?

दादाश्री : वह आकृति नहीं है, वैसे ही निराकृति भी नहीं है। यह आकृति वगैरह तो सब मनुष्य की कल्पनाएँ हैं, बुद्धिजन्य विषय हैं। आत्मा तो आत्मा ही है, प्रकाशस्वरूप है। हाँ, जिस प्रकाश को स्थल की भी ज़रूरत नहीं है, आधार की भी ज़रूरत नहीं है, ऐसा प्रकाशस्वरूप है आत्मा का। और पहाड़ों के भी आरपार जा सके ऐसा है, ऐसा वह आत्मा है और ऐसे 'आत्मा' में 'मैं' रहता हूँ!!! यानी इन 'ए.एम.पटेल' को कोई गालियाँ दे, मारे, तो भी 'मुझे' कुछ नहीं होता। 'मैं' अलग, 'पटेल' अलग। 'पटेल' पड़ोस में हैं और व्यवहार जो कर रहे हैं, वह 'पटेल' कर रहे हैं।

आत्मा : साकारी या निराकारी?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि भगवान तो तेज के अंबार हैं, निरंजन-निराकार हैं।

दादाश्री : और भगवान साकारी भी हैं।

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा भी कहते हैं और वैसा भी कहते हैं।

दादाश्री : 'बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट' भगवान साकार हैं और 'बाइ रियल व्यू पोइन्ट' निराकार हैं।

प्रश्नकर्ता : उस अलौकिक भाषा को कहाँ सीखने जाएँ?

दादाश्री : यहीं पर सीखनी है।

आपका नाम चंदूलाल, और छोटे थे तब भी चंदूलाल था, और शादी के बाद भी चंदूलाल है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और फिर 'पति' किसके बने? किस आधार पर? पहले 'पति' थे?

प्रश्नकर्ता : नहीं, पहले नहीं था।

दादाश्री : लेकिन 'आप' वही के वही हो न? यही मेरा कहना है कि इस तरह से, जब निमित्त मिलता है न, तो उस संबंध से 'आप' 'पति' कहलाते हो। यह सापेक्ष बात है। उसी प्रकार रिलेटिव संबंध से भगवान साकार हैं और संबंध के बगैर भगवान निराकार हैं।

यानी तुझे यदि निराकार भगवान को भजना है, निराकार की पहचान करनी है तो साकारी भगवान के पास जा। निराकार भगवान आँखों से दिखेंगे नहीं और तुझे बुद्धि से समझ में नहीं आएगा। तुझे किसी भी प्रकार से निराकार समझ में आएगा ही नहीं, लेकिन जिनमें निराकार प्रकट हो चुके हों, ऐसे साकारी भगवान के पास जा।

यहाँ मनुष्यरूप में मुख्य साकार भगवान किसे कहते हैं? 'ज्ञानीपुरुष' को कि जिनमें, मनुष्यरूप में जिनके अंदर निरंजन-निराकार प्रकट हो चुके हैं! वे साकार भगवान कहलाते हैं!!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा की किसी आकार के रूप में कल्पना करनी हो तो कैसी कल्पना करें?

दादाश्री : उसके आकार की कल्पना करना योग्य नहीं है, उसके बजाय साकारी भगवान के पास बैठना चाहिए। साकारी भगवान, वही आत्मा का स्वरूप! जो देहसहित आत्माज्ञानी हैं, वे साकारी भगवान कहलाते हैं, उस तरह से कल्पना करना, संपूर्ण देहमंदिर सहित उनके दर्शन करने चाहिए। बाकी, आत्मा का आकार नहीं है। उसका निराकार स्वरूप 'ज्ञानीपुरुष' के पास से जानना पड़ेगा! और फिर उसका स्वरूप आपकी समझ में फ़िट हो जाएगा, फ़िट हो जाए, वह फिर भूल नहीं पाओगे!

अतः आत्मा का आकार नहीं होता, वह निराकारी वस्तु है। फिर भी स्वभाव से आत्मा कैसा है? जिस देह में है, उस देह का जो आकार है, उस जैसे आकार का है। परन्तु वहाँ पर सिद्धगति में अंतिम देह के आकार के एक तिहाई भाग जितना आकार कम हो जाता है। यानी दो तिहाई भाग के आकार का रहता है। यानी कि जो पाँचवे *आरे* का देह होता है और तीसरे *आरे* (कालचक्र का एक भाग) का जो देह होता है, उनमें बहुत ग़ज़ब का फ़र्क़ है। वह ऊँचाई अलग और यह ऊँचाई अलग। परन्तु जिस चरमदेह से काम हुआ, उसी देह के अनुसार वहाँ पर, सिद्धगति में आकार होता है, परन्तु आत्मा निराकार है।

प्रश्नकर्ता : वहाँ परछाई जैसा होता है? क्या होता है?

दादाश्री : नहीं, परछाई जैसा नहीं है, ऐसी कोई वस्तु वहाँ पर नहीं होती। परछाई, वह *पुद्‌गल* है।

प्रश्नकर्ता : जैसे हम हवा में हाथ घुमाएँ तो कुछ हाथ में नहीं आता, वैसे ही मोक्ष में जाएँ और हाथ ऐसे घुमाएँ तो हमसे कुछ टकराएगा क्या?

दादाश्री : नहीं। ऐसे हाथ घुमाएँगे तो कुछ भी हाथ में नहीं आएगा। अरे, यह अग्नि लेकर आत्मा के अंदर ऐसे घुमाएँ तब भी आत्मा जलेगा नहीं। ऐसे अंदर हाथ घुमाएँ तो भी आत्मा हाथ को स्पर्श नहीं होगा। आत्मा ऐसा है। उस आत्मा में बर्फ़ घुमाएँ तब भी ठंडा नहीं होगा, उसमें तलवार घुमाओ तो वह कटेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : फिर भी आकार तो होगा न?

दादाश्री : वह निराकारी आकार है, निरंजन-निराकारी आकार है। वह जैसा आपकी कल्पना में है, वैसा आकार नहीं है। उसका 'स्वाभाविक' आकार है।

आत्मा, देह में कहाँ पर नहीं है?

प्रश्नकर्ता : यह जो आत्मा है, उसका एक्स-रे में या किसी भी मशीन से फोटो भी नहीं आता।

दादाश्री : हाँ, आत्मा तो बहुत सूक्ष्म है, इसलिए वह हाथ में नहीं आ सकता न! केमरे में नहीं आता और आँखों से भी नहीं दिखता, दूरबीन से भी नहीं दिखता, किसी भी चीज़ से दिखे नहीं, आत्मा ऐसी सूक्ष्म वस्तु है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए आश्चर्य होता है कि आत्मा कहाँ पर होगा?

दादाश्री : इस आत्मा के आरपार अंगारा चला जाए, फिर भी उसे अंगारा छुए नहीं, आत्मा इतना अधिक सूक्ष्म है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस शरीर में आत्मा का स्थान कौन-सा है?

दादाश्री : ऐसा है, आत्मा इस शरीर में कौन-सी जगह पर नहीं है? इस बाल में आत्मा नहीं है और ये नाखून हैं न, जितने नाखून काट देते हैं न, उतने भाग में आत्मा नहीं है। इस शरीर में बाकी सभी जगह पर आत्मा है। अतः कौन-से स्थान में आत्मा है ऐसा पूछने की ज़रूरत नहीं है, कौन-से स्थान में आत्मा नहीं है, ऐसा पूछना चाहिए।

इन बालों में, जो बाल हम काट लेते हैं न, उनमें आत्मा नहीं है। नींद में किसीने बाल काट लिए तो हमें कुछ पता नहीं चलता, इसलिए उसमें आत्मा नहीं है और जहाँ पर आत्मा है न, वहाँ तो यह पिन चुभोएँ तो तुरन्त ही पता चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : सामान्य रूप से, आत्मा तो दिमाग़ में होता है न? और इन ज्ञानतंतुओं के कारण ही पिन चुभोने पर वह पता चलता है न?

दादाश्री : नहीं, पूरे शरीर में आत्मा है। दिमाग़ में तो दिमाग़ होता है, वह तो मशीनरी है और वह सब तो अंदर की ख़बर देनेवाले साधन हैं। आत्मा तो पूरे शरीर में उपस्थित है। यहाँ पैर में ज़रा-सा काँटा लगा कि तुरन्त पता चल जाता है न?

यानी यह जो दिखता है न वह फोटो आत्मा का है। सिर्फ इतना ही कि उसके ऊपर परत चढ़ गई हैं। वर्ना, फोटो वही का वही है। आत्मा का फोटो फिर वही का वही रहता है।

अतः इस शरीर में जहाँ-जहाँ पिन चुभोएँ और पता चलता है, वहाँ पर आत्मा है। रात को भी ज़रा-सी पिन चुभोएँ तो पता चल जाता है न?। बाकी इस शरीर में जहाँ-जहाँ पिन लगाने से जो दर्द होता है, दुःख होता है, उसे जो जानता है, वह आत्मा है। वर्ना आत्मा के चले जाने के बाद हम पिन चुभोते रहें, फिर भी चंदूलाल बोलेंगे नहीं, थोड़ा भी हिलेंगे-डुलेंगे नहीं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को दुःख होता है, ऐसा हम कह सकते हैं?

दादाश्री : आत्मा को दुःख नहीं होता। इस बर्फ़ पर अंगारे डालेंगे तो क्या बर्फ़ जल जाएगा?

प्रश्नकर्ता : बाल काटने से हमें दर्द नहीं होता, यानी वहाँ पर आत्मा नहीं है?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : और जहाँ पर दर्द होता है, वहाँ पर आत्मा है?

दादाश्री : हाँ, वहाँ पर आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : तो यदि सुख-दुःख का असर होता है, तो आत्मा संसारी बन गया?

दादाश्री : नहीं। आत्मा संसारी नहीं बनता। आत्मा मूल स्वरूप में ही है। आपका माना हुआ आत्मा संसारी बन गया है, जिसे आप आत्मा

मानते हो वह संसारी बन गया है और वह 'मिकेनिकल' है। इसीलिए जब पेट्रोल डालो तो चलता है, नहीं तो बंद हो जाता है। इस नाक को दबाकर रखे न तो आधे घंटे में या घंटे में 'मशीन' बंद हो जाती है। इसलिए लोग 'मिकेनिकल' आत्मा को आत्मा मानते हैं। मूल आत्मा को देखा नहीं, मूल आत्मा का एक शब्द भी सुना नहीं और 'मिकेनिकल' को ही स्थिर करते हैं, परन्तु 'मिकेनिकल' कभी भी स्थिर नहीं हो सकता।

यानी ये बाल काटते हैं और ये जो नाखून बढ़े हुए है, वहाँ पर आत्मा नहीं है। जहाँ पर नाखून कटने से जलन होती है, वहाँ पर आत्मा है। बाकी, आत्मा पूरी ही बॉडी में है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु योगशास्त्र में तो ऐसा कहते हैं कि यहाँ पर ब्रह्मरंध्र में आत्मा है।

दादाश्री : वह सारा योगशास्त्र उनके लिए काम का है। आपको सच जानना है? लौकिक जानना है या अलौकिक जानना है? दो तरह का ज्ञान है, एक लौकिक में चलता है और दूसरा वास्तविक ज्ञान। आपको वास्तविक ज्ञान जानना है या लौकिक?

प्रश्नकर्ता : दोनों जानने हैं।

दादाश्री : यदि लौकिक जानना हो तो आत्मा का स्थान हृदय में है और अलौकिक जानना हो तो आत्मा पूरे शरीर में है। लौकिक जानना हो तो यह दुनिया भगवान ने बनाई है और अलौकिक जानना हो तो दुनिया भगवान ने नहीं बनाई है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी कहते हैं कि हृदय में अँगूठे जितना आत्मा है।

दादाश्री : नहीं, उन सब बातों में कोई तथ्य नहीं है।

कहाँ मान्यता और कहाँ वास्तविकता

प्रश्नकर्ता : लेकिन उपनिषद में यह वाक्य आता है, 'अंगुष्ठ मात्र

प्रमाण'- तेरे हृदय में आत्मा का प्रतिबिंब देखना हो तो ऐसा ध्यान कर कि तुझे 'अंगुष्ठ मात्र प्रमाण में' दिखे।

दादाश्री : यह साइन्टिफिक बात नहीं है। अगर साइन्टिफिक होती तो मैं आगे बढ़ता। यह तो एक खास स्तरवाले को स्थिर करने का साधन है। बिल्कुल गलत भी नहीं है, गलत तो कैसे कह सकते हैं? जो वस्तु किसी व्यक्ति को स्थिर कर सकती है, उसे गलत तो कह ही नहीं सकते न! यानी यह जो हृदय है न, उसके अंदर स्थूल मन है, यानी वहाँ की धारणा है। इस हृदय में यदि धारण करो न, तो फिर आगे बढ़ा जा सकता है। और आगे कौन बढ़ने नहीं देता? बुद्धि आगे नहीं बढ़ने देती और हृदय की धारणा आगे बढ़ने दे, ऐसी है। मोक्ष में जाना हो तो हृदय की हेल्प चलेगी। यानी दिल के काम की ज़रूरत है। बुद्धि से नहीं चलेगा।

यानी यह तो सब, अंगूठे जैसा कहकर लोगों को घबरा कर रख दिया। आत्मा तो देहप्रमाण है। आत्मा पूरा ही देहप्रमाण है और उस पर कर्मों की *वळगणा* चिपकी हुई है। वह किस तरह से? कि पेड़ की डाली हो, और उस पर लाख चिपक जाती है न? उसी तरह ये कर्म सब चिपक गए हैं। अनंत प्रदेशों में अनंत कर्म चिपके हुए हैं। तो जिस प्रदेश में कर्म खुला, वहाँ का ज्ञान प्रकट हो जाता है। इन तमाम डॉक्टरी प्रदेशों का ज्ञान खुल जाए तो आपको डॉक्टरी ज्ञान हो जाता है, किसीको वकील का ज्ञान हो जाता है। जिसके जो प्रदेश खुल गए, उसे वहाँ का ज्ञान प्रकट हो जाता है।

अब आत्मा तो पूरा ही है। उसमें से अगर पैर या और कुछ कट जाए तो आत्मा उतना 'शॉर्ट' हो जाता है। बाकी इस हृदय में तो सिर्फ मन का स्थान है, मन का स्थूल स्थान है। मन हृदय में प्रकट होता है। इस सूक्ष्म मन का स्थान यहाँ कपाल से ढाई इंच अंदर है। और स्थूल मन का स्थान हृदय में है।

भाजन के अनुसार संकोच-विकास होता है

प्रश्नकर्ता : आत्मा कट सकता है क्या?

दादाश्री : आत्मा कटता नहीं है, छेदा नहीं जा सकता, उसे कुछ भी नहीं हो सकता!

प्रश्नकर्ता : यहाँ से हाथ कट जाए तो फिर?

दादाश्री : आत्मा उतना संकुचित हो जाता है। आत्मा का स्वभाव संकोच और विकासवाला है, वह भी इस संसार अवस्था में। सिद्ध अवस्था में ऐसा नहीं है। संसार अवस्था में संकोच और विकास दोनों हो सकते हैं। यह चींटी होती है न तो उसमें भी आत्मा पूरा ही है। और हाथी में भी एक ही पूरा आत्मा है, परन्तु उसका विकास हो गया है। हाथ-पैर काटने पर आत्मा संकुचित हो जाता है और वह भी कुछ भाग कट जाए न, तब तक संकुचित होता है, उसके बाद संकुचित नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : जैसे मनुष्य के पूरे शरीर में आत्मा है, उसी प्रकार चींटी और हाथी के भी पूरे शरीर में आत्मा है?

दादाश्री : हाँ, पूरे शरीर में आत्मा है। क्योंकि आत्मा संकोच-विकास का भाजन है। जितने अनुपात में भाजन हो, उतने अनुपात में उसका विकास हो जाता है। यदि भाजन छोटा हो तो उतने अनुपात में संकुचित हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : देह छूटते समय एक छोर यहाँ पर होता है और दूसरा छोर पंजाब में होता है, ऐसा कहते हैं, ऐसा किस तरह से है, ज़रा समझाइए।

दादाश्री : आत्मा संकोच-विकास का भाजन है, इसलिए कितना भी लंबा हो सकता है। तो, जहाँ पर उसका ऋणानुबंध होता है, वहाँ पर जाना पड़ता है न? तब थोड़े ही यहाँ से पैरों से चलकर जाएगा? उसके पैर और स्थूल शरीर है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : तो दोनों जगह पर रह सकता है?

दादाश्री : हाँ। यहाँ से जहाँ पर जाना हो, वहाँ तक उतना खिंच जाता है। फिर वहाँ पर घुसने की शुरूआत हुई हो तो यहाँ से बाहर निकलता जाता है। जैसे साँप यहाँ बिल में से निकल रहा हो तो एक

भाग बाहर भी होता है और दूसरा भाग अंदर भी होता है, उसके जैसी बात है यह।

प्रश्नकर्ता : लेकिन देह को काट डालें, छेदन करें, फिर भी आत्मा दिखता नहीं है।

दादाश्री : आत्मा दिखे ऐसा है ही नहीं। परन्तु देह को काट डालें तो आत्मा निकल जाता है न? मनुष्य मर जाता है, तब कौन निकल जाता है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा निकल जाता है।

दादाश्री : हाँ, निकल जाता है, फिर भी वह दिखे ऐसा नहीं है। लेकिन है ज़रूर। वह प्रकाश है, उजाले के रूप में है। यह सारा उसीका उजाला है। वह नहीं है तो सबकुछ खत्म हो गया। वह निकल जाए, तो फिर देखा है न आपने? अर्थी देखी है? उसमें उजाला रहता है फिर?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो उसमें से आत्मा निकल गया है। यानी आत्मा तो खुद ज्योतिस्वरूप है।

मृत्यु के बाद पुनःप्रवेश संभव है?

प्रश्नकर्ता : हृदय धड़कना बंद हो जाए तब हम कहते हैं कि मौत आ गई।

दादाश्री : और डॉक्टर भी कहते है कि, 'ये भाई गए!' जब तक हृदय धड़के तब तक नाड़ी चलती है और नाड़ी नहीं चले तो डॉक्टर समझते है कि नाड़ी नहीं चल रही है तो यह व्यक्ति नहीं जीएगा, तब फिर ऐसा हमें बता देते हैं कि 'गए'।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसे किस्से पढ़ने में आए हैं कि कोई मरा हुआ व्यक्ति फिर से जीवंत हो गया। इस प्रक्रिया को क्या समझना चाहिए? देह में फिर से जीव आ गया? या आत्मा ने फिर से शरीर में प्रवेश किया?

दादाश्री : आपका कहना सच है, ऐसा कभी अपवाद रूप से होता है कि नाड़ी फिर से चलने लगती है। तब डॉक्टरों को मन में क्या होता है कि यह तो फिर से जीव आ गया। लेकिन कुछ परिस्थितियों में ही ऐसा होता है। तब वह जीव यहाँ तालू में चढ़ जाता है। हृदय भले ही बंद हो गया हो, लेकिन जीव यहाँ तालू में चढ़ जाता है। अतः जब वह तालू में से वापस उतरता है तो हृदय वापस धड़कने लग जाता है, ऐसा होता है। तब फिर डॉक्टर भी सोच में पड़ जाते हैं। लेकिन वह नया जीव नहीं आता। इस देह में फिर से जीव नहीं आता अथवा तो शरीर में दूसरा आत्मा प्रवेश नहीं करता। वही का वही आत्मा अभी तक पूरा-पूरा बाहर नहीं निकला है। यह हार्ट से ऊपर तक, इतने भाग में से निकल गया है और ऊपर चढ़ गया है। यहाँ पर तालू में ब्रह्मरंध्र है, जिसे दशम स्थान कहते हैं, वहाँ पर चढ़ जाता है। यानी देह में अगर जीव रह गया हो, तो फिर से ऐसा हो सकता है। कभी-कभी ही ऐसा होता है, कहीं बार-बार नहीं होता, अपवाद रूप में हो जाता है। किसीको साँप ने काटा हो, या फिर पानी में एकदम गिर गया हो, उस घड़ी उसका जीव यहाँ ऊपर, ब्रह्मरंध में चढ़ जाता है। तो फिर उतारना मुश्किल हो जाता है। इस काल में उतारना नहीं आता। सहज रूप से अपने आप यदि उतर जाए तो ठीक है, तब ऐसा लगता है कि मुर्दे में फिर से जीव आ गया। बाकी ऐसा होता नहीं है।

मृत्यु यानी क्या? मृत्यु के बाद क्या?

प्रश्नकर्ता : मृत्यु क्या है?

दादाश्री : मृत्यु तो ऐसा है न, यह कमीज़ सिलवाई, तब कमीज़ का जन्म हुआ न, और यदि जन्म हुआ तो मृत्यु हुए बगैर रहेगी ही नहीं। कोई भी वस्तु जन्म लेती है तो उसकी मृत्यु अवश्य होती है। और आत्मा अजन्मा-अमर है, उसकी मृत्यु होती ही नहीं। यानी जितनी वस्तुएँ जन्म लेती हैं, उनकी मृत्यु अवश्य होती है और मृत्यु है तो जन्म होगा। अतः जन्म के साथ मृत्यु जोइन्ट ही है। जहाँ जन्म है, वहाँ पर मृत्यु अवश्य है ही।

प्रश्नकर्ता : परन्तु मृत्यु, वह वस्तुस्थिति में क्या है?

दादाश्री : रात को सो जाते हो न, फिर कहाँ जाते हो? सुबह कहाँ से आते हो आप?

प्रश्नकर्ता : ऐसा मालूम नहीं है।

दादाश्री : इसी तरह जन्म-मरण हैं, बीच के काल में सो जाता है। फिर जन्म के बाद वापस जगता है। मरने के बाद जन्म लेने तक, बीच के काल में सोता है। 'खुद' शाश्वत है, इसलिए जन्म-मरण खुद का होता ही नहीं है न! यह जन्म-मरण तो अवस्था से हैं। मनुष्य वही का वही रहता है, परन्तु उसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं या नहीं होतीं? बचपन की बाल अवस्था, फिर युवा अवस्था और वृद्धावस्था नहीं होती? ये अवस्थाएँ हैं, लेकिन 'खुद' तो एक ही है न? ये अवस्थाएँ शरीर की हैं। इसी प्रकार जन्म-मरण भी शरीर का है, आत्मा का जन्म-मरण नहीं है। आपके 'खुद के', 'सेल्फ' का जन्म-मरण नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो मृत्यु किसलिए आती है?

दादाश्री : वह तो ऐसा है, जब जन्म होता है, तब ये मन-वचन-काया की जो तीन 'बेटरियाँ' हैं, वे गर्भ में से इफेक्ट देती हैं। जब इफेक्ट पूरा हो जाता है, उस 'बेटरी' से हिसाब पूरा हो जाता है, तब तक वे बेटरियाँ रहती हैं। और फिर जब वे खत्म हो जाती हैं, तब उसे मृत्यु कहते हैं। परन्तु तब वापस अगले जन्म के लिए नई 'बेटरियाँ' अंदर चार्ज होती ही रहती हैं और पुरानी 'बेटरियाँ' डिस्चार्ज होती रहती हैं। इस तरह 'चार्ज-डिस्चार्ज' होता ही रहता है। क्योंकि 'उसे' 'रोंग बिलीफ़' है, इसलिए कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं। जब तक 'रोंग बिलीफ़' हैं, तब तक राग-द्वेष हैं और कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं। और यह 'रोंग बिलीफ़' बदल जाए और 'राइट बिलीफ़' बैठे तो राग-द्वेष और कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : जब शरीर का नाश होता है, तब आत्मा कहाँ जाता है?

दादाश्री : ऐसा है न, आत्मा इटर्नल (शाश्वत) है, परमानेन्ट है, नित्य

है। उसे कहीं भी जाना-आना होता ही नहीं है। और जब इस शरीर का नाश होता है, तब आत्मा को कहाँ जाना है, वह उसके खुद के अधिकार में नहीं है। वह भी 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के ताबे में है। यानी जहाँ पर एविडेन्स ले जाएँ, वहाँ पर उसे जाना पड़ता है। इसमें, 'परमानेन्ट' वस्तु सिर्फ आत्मा ही है, बाकी सबकुछ टेम्परेरी है। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सबकुछ ही टेम्परेरी है। और आत्मा तो ऐसा है कि, वह इस शरीर से बिल्कुल अलग है। जैसे यह कपड़ा और मेरी देह अलग ही है न? उतने ही ये देह और आत्मा जुदा हैं, बिल्कुल जुदा हैं।

कुदरत के कितने ही एडजस्टमेन्ट्स

प्रश्नकर्ता : मृत्यु के समय जब आत्मा एक देह छोड़ रहा हो, तब वह दूसरी देह में जाने से पहले कहाँ, कितने समय तक और किस तरह से रहता है? दूसरी देह में जाने में हर एक जीव को कितना समय लगता है?

दादाश्री : उसे बिल्कुल भी समय नहीं लगता। यहाँ इस देह में भी होता है और वहाँ योनि में प्रवेश करना शुरू हो जाता है। मरनेवाला यहाँ बड़ौदा में और योनि वहाँ दिल्ली में होती है, तो आत्मा योनि में भी होता है और यहाँ इस देह में भी होता है। यानी कि इसमें टाइम ही नहीं लगता। देह के बगैर थोड़ी देर के लिए भी नहीं रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : यानी इस देह को छोड़ने में और दूसरी देह ग्रहण करने में, इन दोनों के बीच में कितना समय लगता है?

दादाश्री : बिल्कुल भी समय नहीं लगता। यहाँ पर भी होता है, इस देह में से निकल रहा होता है यहाँ से और वहाँ योनि में भी हाज़िर होता है। क्योंकि यह टाइमिंग है, वीर्य और रज का संयोग होता है उस घड़ी। यहाँ पर देह छूटनेवाली होती है, तब वहाँ पर वह संयोग होता है। वह सब इकट्ठा हो जाए, तब यहाँ से जाता है। वर्ना वह यहाँ से जाएगा ही नहीं, क्योंकि यदि यहाँ से चला जाएगा तो वह खाएगा क्या? वहाँ योनि में गया लेकिन खुराक क्या खाएगा? पुरुष का वीर्य और माता का रज,

वे दोनों ही होते हैं, और वहाँ जाते ही भूख के मारे उनको वह सारा ही खा जाता है। और खाकर फिर पिंड बनता है। बोलो अब, ये सब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं न?

तब फिर यहाँ से निकलने में देर नहीं लगती। अब वहाँ पर यदि ऐसा टाइम सेट नहीं हुआ हो न, तब तक यहाँ पर इस देह में उं..उं..उं.. करता रहता है। 'क्यों निकलते नहीं हो? जल्दी जाओ न' यदि ऐसा कहें, तब कहेगा, 'नहीं अभी तैयारी नहीं हुई है वहाँ पर!' ऐसे अंतिम घड़ी में उं..उं..उं..करता है न? वहाँ पर 'एडजस्ट' हो जाने के बाद यहाँ से निकलता है। लेकिन जब निकलता है, तब वहाँ पर सब पद्धतिपूर्वक ही होता है।

ज़िन्दगी के सार के अनुसार गति

प्रश्नकर्ता : मरने से पहले जैसी वासना हो, उस रूप में जन्म होता है न?

दादाश्री : हाँ, वह वासना, लोग जो कहते हैं न कि मरने से पहले ऐसी वासना थी, लेकिन वह वासना लाने से लाई नहीं जा सकती। वह तो सार है पूरी ज़िन्दगी का। पूरी ज़िन्दगी आपने जो कुछ किया न, उसका मृत्यु के समय, अंतिम घंटे में सार आ जाता है। और उस सार के अनुसार उसकी गति हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : मृत्यु के बाद सभी लोग मनुष्य के रूप में जन्म नहीं लेते। कोई कुत्ते या गाय भी बनते हैं।

दादाश्री : हाँ, उसके पीछे 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' हैं, सभी वैज्ञानिक कारण इकट्‌ठे होते हैं। इसमें इसका कोई कर्ता नहीं है कि 'भगवान' ने यह नहीं किया है और 'आपने' भी यह नहीं किया है। 'आप' सिर्फ मानते हो कि 'मैंने यह किया' इसीलिए अगला जन्म उत्पन्न होता है। जब से 'आपकी' यह मान्यता टूट जाएगी, 'मैं कर रहा हूँ' की 'रोंग बिलीफ़', वह भान 'आपका' टूट जाएगा और 'सेल्फ' का 'रियलाइज़ेशन' हो जाएगा, उसके बाद 'आप' कर्ता रहोगे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे रियलाइज़ करने के लिए ये सब छोड़कर हिमालय पर चले जाएँ?

दादाश्री : नहीं, हिमालय पर नहीं जाना है। हम आपको एक घंटे में 'सेल्फ रियलाइज़ेशन' करवा देंगे। ऐसे साधु बनकर हिमालय में नहीं जाना है। यहाँ तो अरे, खा-पीकर मौज करना और 'सेल्फ' का 'रियलाइज़ेशन' रहेगा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहते हैं न, कि आत्मा हर बार मनुष्य देह ही धारण करता है।

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। ऐसा तो कुछ लोगों ने कहा ज़रूर है कि मनुष्य में से मनुष्य ही बनता है, लोगों ने ऐसा आश्वासन दिया कि जैसे गेहूँ में से गेहूँ बनता है, वैसे ही मनुष्य में से मनुष्य बनता है। इससे लोग समझते हैं कि ठीक है, मनुष्य बननेवाले हैं तो कोई हर्ज ही नहीं है न! जितनी रिश्वत लेनी हो उतनी ले लो, जितनी चोरी करनी हो उतनी चोरी कर लो? लेकिन यह ऐसा नहीं है।

यहाँ तो नियम ऐसा है कि जिसने *अणहक्क* (बगैर हक़)का लिया, उसके दो पैर में से चार पैर हो जाएँगे। लेकिन वह भी हमेशा के लिए नहीं। अधिक से अधिक दो सौ वर्ष और बहुत हुआ तो सात-आठ जन्म जानवर में जाएगा और कम से कम हुआ तो पाँच ही मिनट में जानवर में जाकर वापस मनुष्य में आ जाएगा। कितने जीव ऐसे हैं कि एक मिनट में १७ जन्म बदलते हैं, यानी ऐसे भी जीव हैं। अतः जो जानवर में गए, उन सभी को सौ-दो सौ वर्ष का आयुष्य नहीं मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : मनुष्यगति के जीव यह कारण शरीर और कषाय साथ में लेकर जाते हैं। परन्तु निचली गति के जीव क्या लेकर आते हैं?

दादाश्री : ऐसा है न, वे तो 'लोड' उतारने गए हैं। जो 'लोड' इकट्ठा किया था न, जो उधार लिया हो, वह उधार चुकाने जाना पड़ता है। और यदि किसीसे लेना हो तो लेने जाते हैं। क्रेडिट किया हो तो देवगति में जाना पड़ता है, या फिर यहाँ मनुष्य में राजा बनना पड़ता है। और अगर

उधार लिया हो तो बैल बनकर चुकाना पड़ता है, भैंस बनकर चुकाना पड़ता है, कुत्ता बनकर चुकाना पड़ता है। अब कुछ लोगों का वह उधार एक ही जन्म में शायद पूरा न भी हो, तो उनका कुत्ते का जन्म पूरा हो जाए, उसके बाद भी अगर फिर उधार बाकी रहे तो वापस गधे का जन्म मिलता है। फिर भी अगर उधार बाकी हो तो फिर सियार का जन्म मिलता है, लेकिन ऐसे आठ ही जन्म आते हैं। नौवाँ जन्म नहीं आता ऐसा। आठ जन्मों में उसका उधार पूरा हो जाता है, और फिर वापस मनुष्य में आता है।

मनुष्य यहाँ पर मर जाए, तब उसके पीछे, ले जानेवाले लोग, चार-पाँच ऐसे निष्पक्षपाती लोग होते हैं। उनकी बातें सुनो। पक्षपाती यानी, उसके घर के लोग पक्षपाती कहलाते हैं और विरोधी लोग भी पक्षपाती कहलाते हैं। वे विरोधी लोग विरोधपूर्वक बोलते रहते हैं और घर के लोग अच्छा बोलते रहते हैं। और जो निष्पक्षपाती लोग हैं वे बोलते हैं कि 'भाई, यह तो देवता जैसा आदमी था।' तो वही उसकी गति बता देते हैं। और कुछ के लिए तो लोग कहेंगे, 'अरे, यह राक्षस जैसा था।' जैसे अभिप्राय यहाँ पर लोग बाँधते हैं, वही उसकी गति की निशानी है।

मोक्ष की ज़रूरत तो किसे है? कि...

प्रश्नकर्ता : एक मनुष्य के मर जाने के बाद यदि उसे दूसरी देह तुरन्त ही मिल जाती है तो फिर लोग मोक्ष के लिए किसलिए प्रयत्न करते हैं?

दादाश्री : जिसे इस संसार में चिंता होती हो और वह चिंता उसे पसंद नहीं हो, सहन नहीं होती हो, उसे मोक्ष की ज़रूरत है। जिसे यह चिंता पसंद हो उसे तो मोक्ष की कोई ज़रूरत ही नहीं है न! यानी प्रत्येक मनुष्य को मोक्ष की ज़रूरत है ही नहीं। इन फॉरिनवालो को चिंता सहन होती है, उन्हें मोक्ष की ज़रूरत है ही नहीं। अपने यहाँ के कुछ लोगों से चिंता सहन होती है, तो उन्हें भी मोक्ष की ज़रूरत नहीं है। बाकी जिससे चिंता सहन नहीं हो पाती, जिसे इस संसार में से भाग छूटने जैसा लगता है, उसे मोक्ष की ज़रूरत है।

ऐसे हैं नियम कुदरत के

प्रश्नकर्ता : क्या मृत्यु के बाद हर एक जीव का जन्म होता है?

दादाश्री : किसी भी जीव का मृत्यु के बाद जन्म होता ही है। मृत्यु के बाद कोई ही, जो 'ज्ञानीपुरुष' होते हैं और जिन्हें प्रवृत्ति में भी निवृत्ति रहती है, उनके लिए मुक्ति है।

प्रश्नकर्ता : मुक्ति के बाद जन्म है न?

दादाश्री : नहीं। मुक्ति के बाद जन्म नहीं है।

प्रश्नकर्ता : और मृत्यु के बाद?

दादाश्री : मृत्यु के बाद हर एक जीव का जन्म अवश्य होता ही है।

प्रश्नकर्ता : मृत्यु के बाद वही का वही जीव जन्म लेता है या दूसरा जीव जन्म लेता है?

दादाश्री : वही का वही जीव जन्म लेता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जनसंख्या क्यों बढ़ रही है?

दादाश्री : वह तो बढ़ जाती है, फिर वापस घट भी जाती है। कम-ज़्यादा होना उसका नियम ही है। यह दुनिया तो कैसी है कि वर्धमान-ही्यमान, वर्धमान-ही्यमान होती ही रहती है! अब जनसंख्या वापस कम हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : वे जीव वापस जीएँगे न?

दादाश्री : वे जीव क्या जीने के बाद मर जाएँगे? वे सभी जानवर में जाएँगे, थे वहीं के वहीं गए वापस! जहाँ से आए थे, वहीं वापस गए।

मृत्यु के बाद आत्मा, कोई देवगति में जानेवाला हो तो देवगति में चला जाता है, कोई नर्कगति में जानेवाला हो तो नर्कगति में जाता है। कोई जानवरगति में जाता है और कोई मनुष्यगति में जानेवाला हो तो मनुष्यगति

में जाता है। और अन्य कितने ही जीव जिन्हें देह नहीं मिलनेवाली हो, इस कारण से किसीको दो वर्ष, किसीको तीन वर्ष, ऐसा दण्ड मिलनेवाला हो, ऐसे उसके कर्म के उदय हों, तब वह प्रेतयोनि में रहता है।

यानी मृत्यु तो, यह कपड़ा बदलते हैं ऐसा ही है। जो-जो 'फिज़िकल' है न, वह सब खत्म हो जाता है या फिर सबकुछ यहीं पर पड़ा रह जाता है, और आत्मा को दूसरी योनि मिलती है।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह से सिद्ध कर सकते हैं कि मरने के बाद यह आत्मा दूसरी जगह पर गया? प्रमाण है क्या?

दादाश्री : पुनर्जन्म का?

प्रश्नकर्ता : हाँ। और वह भी मनुष्य मान सके वैसा?

दादाश्री : हाँ, पुनर्जन्म माना जा सके, ऐसा प्रमाण मैं आपको दूँगा। ज़रा लंबा प्रमाण है न! आत्मा फिर से जन्म लेता है, इसका प्रमाण तो लोग माँगेंगे ही न!

पुनर्जन्म का 'प्रोसेस' कब तक?

प्रश्नकर्ता : पुनर्जन्म कौन लेता है? जीव लेता है या आत्मा लेता है?

दादाश्री : नहीं, किसीको लेना ही नहीं पड़ता, हो जाता है। यह पूरा जगत् 'इट हेपन्स' ही है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह किससे हो जाता है? जीव से हो जाता है या आत्मा से?

दादाश्री : नहीं, आत्मा को कोई लेना-देना ही नहीं है, सबकुछ जीव से ही है। जिसे भौतिक सुख चाहिए, उसे योनि में प्रवेश करने का 'राइट' (अधिकार) है। जिसे भौतिक सुख नहीं चाहिए उसका योनि में प्रवेश करने का 'राइट' चला जाता है।

ऐसा है न, आप चीनी के कारखाने में देखोगे न, तो वहाँ पर एक तरफ़ गन्ना खरीदकर लेते हैं और एक तरफ़ चीनी की बोरियाँ स्टॉक में रख आते हैं। बीच में क्या-क्या प्रक्रिया हो रही है, वह आप जानते हो? इस तरफ़ गन्ना लेते हैं, तो पहले गन्ना कटता है, फिर पिसता है, यानी 'दूसरे जन्म' में पिसा हुआ होता है। फिर वापस वहाँ से 'तीसरे जन्म' में जाता है, 'चौथे जन्म' में जाता है, ऐसे करते-करते चीनी बनती है। एक ही 'स्टेज' में, एक ही 'जन्म' में चीनी नहीं बन सकती। उसी तरह हर एक चीज़ का, उसका डेवलपमेन्ट होते-होते वह फिर अंतिम स्टेज तक पहुँचता है। आत्मा तो 'फुल डेवलप' ही है। लेकिन यह बाहर का जो भाग है, 'कपड़े' का जो भाग है, वह 'डेवलप' होना चाहिए। फॉरिनवाले कम 'डेवलप' हैं, तो उन्हें पुनर्जन्म समझ में नहीं आ पाता। और अपने यहाँ 'डेवलप' प्रजा है, इसलिए भले उन्हें पुनर्जन्म समझ में आए या नहीं आए, लेकिन मान्यता तो है ही। छोटा बच्चा भी कहता है कि अगले जन्म में ऐसा होगा। यानी समझ में आए या नहीं आए 'इट इज़ डिफ़रन्ट मेटर', लेकिन पुनर्जन्म को मानते ही हैं।

...वही का वही चक्कर

प्रश्नकर्ता : मनुष्य के हर एक जन्म का उसके पूर्वजन्म के साथ संबंध है क्या?

दादाश्री : वह तो हर एक जन्म पूर्वजन्म ही होता है। यानी हर एक जन्म का संबंध पूर्वजन्म से है ही।

प्रश्नकर्ता : परन्तु पूर्वजन्म का इस जन्म के साथ क्या लेना-देना है?

दादाश्री : अरे, अगले जन्म के लिए यह जन्म पूर्वजन्म है। पिछला जन्म, वह पूर्वजन्म था, उसीसे यह जन्म है। और यह जो जन्म है, वह अगले जन्म के लिए पूर्वजन्म कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यह बात सच है। लेकिन पूर्वजन्म में क्या ऐसा कुछ होता है, जिसका इस जन्म के साथ कोई संबंध हो?

दादाश्री : बहुत ही संबंध है! पूर्वजन्म में बीज पड़ते हैं, और दूसरे जन्म में बाली आती है। तो फिर बीज और बाली में फ़र्क़ नहीं है? संबंध है या नहीं?! हम बाजरे का दाना डालें, वह पूर्वजन्म है और बाली आए, वह यह जन्म है, वापस बाली में से बीज के रूप में दाना गिरा, वह पूर्वजन्म और उसमें से बाली आई वह नया जन्म। समझ में आया या नहीं?

प्रश्नकर्ता : एक आदमी रास्ते पर ऐसे चला जाता है और दूसरे कितने ही लोग उस रास्ते पर से जाते हैं लेकिन कोई साँप किसी खास आदमी के लिए ही बाधक होता है, उसका कारण पुनर्जन्म ही है?

दादाश्री : हाँ, हम यही कहना चाहते हैं न कि पुनर्जन्म है, इसलिए वह साँप आपको काटता है। पुनर्जन्म नहीं होता तो साँप आपको नहीं काटता। पुनर्जन्म है, वह आपका हिसाब आपको चुका रहा है। ये सभी हिसाब ही चुक रहे हैं। जैसे बहीखाते के हिसाब चुकते हैं न, उसी तरह सब हिसाब चुक रहे हैं। और डेवलपमेन्ट के कारण अपने को ये सब हिसाब समझ में भी आते हैं। इसलिए अपने यहाँ कुछ लोगों की 'पुनर्जन्म है' ऐसी मान्यता भी बन चुकी है न! लेकिन वह पुनर्जन्म है ही, ऐसा नहीं बोल पाते। 'है ही' ऐसा प्रमाण कोई दे नहीं सकता, लेकिन उसकी खुद की श्रद्धा में बैठ चुका है, ऐसे सभी उदाहरण देखकर, कि पुनर्जन्म है ज़रूर।

ये बहन कहेंगी, इन्हें सास अच्छी क्यों मिली और मुझे ऐसी सास क्यों मिली? यानी तरह-तरह के संयोग मिलते हैं।

योजना बनी, वही मूल कर्म

प्रश्नकर्ता : कर्मों का अच्छा या खराब फल इस जन्म में मिलता है या फिर अगले जन्म में मिलता है?

दादाश्री : जो कर्म किए जाते हैं, वे योजना के रूप में होते हैं। जैसे गवर्न्मेन्ट यहाँ पर योजना बनाती है, नर्मदा नदी के बांध की योजना यहाँ पर बनाते हैं। अब उस समय उस योजना से यहाँ पर पानी रुक सकता

है क्या? वह तो जब यहाँ रूपक में आएगा, जब बनकर तैयार हो जाएगा तब पानी रुकेगा। बाकी योजना में, नक्शे पर पूरा-पूरा ही होता है, बांध वगैरह सभी कुछ होता है, परंतु नक्शे पर। उसी तरह ये सभी कर्म जब योजना के रूप में हो जाते हैं, तब उन्हें कॉज़ेज़ कहा जाता है। और फिर वे ही कॉज़ेज़ जब रूपक में आते हैं, तब इफेक्ट कहलाते हैं। लेकिन वे दूसरे जन्म में रूपक में आते हैं, यानी कि पिछले जन्म के कर्म आप इस जन्म में भोगते हो, और इन जन्म के कर्म वापस अगले जन्म में भोगोगे। परन्तु वह योजना के रूप में किए गए वे कर्म अगले जन्म में भोगे जाते हैं।

अभी आपकी इच्छा नहीं होती, तो भी कर्म हो जाता है, ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : हो जाता है।

दादाश्री : इसका क्या कारण है? कि जो योजना के रूप में तैयार हो चुका है, वही आज रुपक में आया है, यानी यदि आज ही कर रहे होते तो बदला जा सकता था। लेकिन यह तो बदलता नहीं है, ऐसा होता है न? ऐसा देखने में आता है न?

आयोजन पूर्वजन्म का, रूपक इस जन्म में

प्रश्नकर्ता : तो फिर किस्मत जैसी कोई चीज़ है क्या?

दादाश्री : किस्मत ही प्रारब्ध है, पूर्वजन्म का लाया हुआ माल, उसीका अभी उपयोग होता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर पिछले जन्म में किए हुए पाप का फल इस जन्म में मिलता है या पिछले जन्म में ही मिल गया होगा?

दादाश्री : नहीं। पिछले जन्म के पापों का फल इस जन्म में ही मिलता है। ऐसा है, पिछले जन्म में जो पाप हो चुके हैं न, वे आयोजन के रूप में हुए थे। जैसे अपने यहाँ नर्मदा नदी पर बांध बननेवाला हो तो पहले क्या करते हैं? नक्शा तैयार करते हैं न? उसी तरह पहले आयोजन

के रूप में हो चुके हैं, वे फिर अभी रूपक के रूप में आते हैं। इस नर्मदा के बांध का आयोजन वहाँ पर होता है, फिर नक्शा बनता है, उस घड़ी उस नक्शे में यदि बांध फट गया, तो पानी बह जाता है क्या सारा? नहीं बहता। यानी नक्शे में बदलाव हो सकता है, फिर बदलाव नहीं हो सकेगा। यानी पिछले जन्म में जो आयोजन किया था, उसमें बदलाव हो सकता था, लेकिन अभी उसमें बदलाव किस तरह से हो सकेगा? यानी अभी हम इस जन्म में कुछ बदलाव करेंगे तो अगले जन्म में बदलाव होगा। वर्ना फिर अगले जन्म के लिए मुहर लग गई, इसे विधाता का लेख कहते हैं, बाद में वह बदलता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म में ही आयोजन हो चुका हो तो इस जन्म का आयोजन मैं कब करूँगा?

दादाश्री : हर एक जन्म में अंदर आयोजन होता ही रहता है, आयोजन के बगैर आगे चलता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म की जो-जो वस्तु पूर्वजन्म के आयोजन के अनुसार हो रही है, तो अगले जन्म के लिए मैं आयोजन करूँगा किस तरह?

दादाश्री : आयोजन किस तरह होता है, वह मैं आपको बता दूँ। और इस जन्म में अगर आयोजन ही नहीं होगा तो फिर मोक्ष हो जाएगा।

अब आयोजन यानी चार्ज होता है। और यह पुराना डिस्चार्ज होते समय वापस अंदर चार्ज होता है। अब चार्ज किस तरह से होता है? आयोजन किस तरह से होता है? तब कहे, 'अभी कोई कहे कि, मैंने बीस हज़ार रुपये फ़लानी जगह पर दान में दिए हैं।' अब उससे पूछें कि, 'सेठ, आप कभी किसीको बीस हज़ार रुपये नहीं देते हैं, तो यहाँ पर किस तरह से दे दिए?' तब वे कहते हैं, 'भाई, फ़लाने भाई के दबाव में आकर दिए।' अब बीस हज़ार रुपये देता है, लेकिन आयोजन उल्टा हो गया। और ऊँचे भाव से दिए होते तो आयोजन, फिर से वैसे का वैसा ही बीज पड़ता और ऊँचा फल मिलता।

अब कोई व्यक्ति हिंसा करे और फिर यदि उसे मन में ऐसा हो कि यह गलत हो रहा है, पछतावा करे तो वैसा आयोजन हो जाता है। फिर तू झूठ बोले और मन में भाव हो कि यह गलत हो रहा है, तो वैसा आयोजन होता है।

अब जन्म-मरण का कारण एक ही है, कि 'खुद कौन है?', इसका भान नहीं है वह। सिर्फ यही एक कारण है। जैनों ने कहा है कि राग-द्वेष और अज्ञान से बँधा हुआ है और वेदांत ने भी कहा है कि मल, विक्षेप और अज्ञान से बँधा हुआ है। दोनों अज्ञान को स्वीकार करते हैं। तो अज्ञान से बँधा हुआ है, और ज्ञान से छूटेगा। खुद को खुद का ही ज्ञान हो जाए, भान हो जाए कि छूट जाएगा।

...और विधेयक रह गए

यहाँ पर जितने आरोपित भाव किए, वे भाव संसारीभाव हैं। और इन संसारी भावों के कारण अन्य सभी पार्लियामेन्टरी मेम्बर इकट्ठे हो जाते हैं। और सभी मेम्बर इकट्ठे होकर फिर 'डिसीज़न' लेते हैं, उससे यह कार्य-बॉडी बनती है। फिर इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़, कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़, कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट ऐसे चलता रहता है!

यह चंदूलाल नाम है न, यह नाम तो इफेक्टिव है या नहीं? कोई कहेगा कि, 'फ़लाने, सिनेमावाले चंदूलाल खराब है!' इतना ही कहा कि आपको इफेक्ट हो जाता है। यह देह इफेक्टिव है या नहीं? यह वाणी भी इफेक्टिव है। आपकी वाणी किसीको इफेक्ट कर बैठती है। और मन भी इफेक्टिव है। मन चंचल हो जाए तो सोने नहीं देता। रात को साढ़े दस बजे बिस्तर बिछाते हैं, 'चंदूलाल सो जाओ', सभी ऐसा कहें, तो चंदूलाल सो जाता है। और फिर अंदर याद आया कि फ़लाने को मैंने पच्चीस हज़ार रुपये दिए हैं, वह उसके पास से अभी तक लिखवाकर नहीं लिया है। वह याद आते ही मन चंचल हुआ कि, फिर नींद नहीं आने देता। अतः मन भी इफेक्टिव है न?

यानी ये मन-वचन-काया सब इफेक्टिव हैं। इनसे कॉज़ेज़ उत्पन्न

होते हैं। इनमें राग-द्वेष होने से कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं, यह कॉज़ल बॉडी, वह फिर अगले जन्म में वापस इफेक्टिव बॉडी बन जाती है। यह कॉज़ल बॉडी है न, वह कारण शरीर कहलाता है, उसमें से यह कार्य शरीर हो जाता है।

यानी कारण शरीर बनने के बाद पार्लियामेन्टरी पद्धति से सबकुछ मिल आता है। और पार्लियामेन्टरी पद्धति बनने के बाद सिर्फ 'पार्लियामेन्ट' के विधेयक ही रह जाते हैं, परन्तु 'पार्लियामेन्ट' के सभी सदस्य चले जाते हैं। वे विधेयक एक-एक करके पास होते जाते हैं, योजना गढ़े हुए सभी विधेयक पास होते रहते हैं और उसका रूपक आता है, कुछ समझने जैसा तो होगा न? कुछ समझना तो पड़ेगा न?

आत्मा के साथ...

प्रश्नकर्ता : यदि मेरा पुनर्जन्म होनेवाला हो तो मेरा आत्मा साथ में ही जाएगा न?

दादाश्री : साथ में ही जानेवाला है न! यहाँ से जब यह आत्मा निकलता है, तब कषाय इस शरीर में से, जो कुछ भी होता है न, वह झाड़-बुहारकर निकलते हैं। क्योंकि खुद की जो 'रोंग बिलीफ़' हैं न कि 'यह मैं हूँ', यानी 'मैं हूँ', ऐसा हुआ, वहाँ पर सबकुछ 'मेरा' हो गया और 'मेरा है', ऐसा हुआ उससे ये क्रोध-मान-माया-लोभ खड़े हो जाते हैं। आत्मा निकलता है, उसके बाद ये क्रोध-मान-माया-लोभ झाड़-बुहारकर बाहर निकल जाते हैं। वे भी फिर थोड़ी देर के बाद सबकुछ झाड़-बुहारकर, अंदर देह में कुछ रह नहीं जाए, उस प्रकार से निकल जाते हैं, कषाय ऐसे हैं।

अब आत्मा के साथ और क्या-क्या जाता है? 'कारण शरीर', यह कॉज़ेल बॉडी है और 'सूक्ष्म शरीर', उसे इलेक्ट्रिकल बॉडी कहा जाता है। जब तक यह स्थूल देह है, जब तक संसारी है, तब तक हर एक जीव में इलेक्ट्रिकल बॉडी रहती है और जब मोक्ष में जाता है तब इलेक्ट्रिकल बॉडी छूट जाती है और सिर्फ आत्मस्वरूप ही जाता है।

यहाँ पर तो एक अवतार की गारन्टी

प्रश्नकर्ता : आत्मस्वरूप का दर्शन हो जाने के बाद जीव सतत आत्मस्वरूप में रहता है, तो ऐसी स्थिति हो जाने के बाद जीव के पुनर्जन्म होने की संभावना है क्या?

दादाश्री : नहीं। फिर भी एक अवतार बाकी बचता है। क्योंकि यह 'हमारी' आज्ञापूर्वक है। आज्ञा पालना, उसे धर्मध्यान कहते हैं। उसका फल भोगने के लिए एक जन्म रहना पड़ता है, यों तो यहाँ से ही मोक्ष हो चुका है, ऐसा लगता है। यहाँ पर ही मोक्ष नहीं हो जाए तो किस काम का? वर्ना इस कलियुग में तो सभी छल करते हैं। जान-पहचानवाले को सब्ज़ी लेने भेजा हो तो भी अंदर से 'कमीशन' ले लेता है, कलियुग में क्या भरोसा? अर्थात् गारन्टेड होना चाहिए। यह गारन्टेड हम देते हैं। फिर जितनी हमारी आज्ञा पालेगा, उतना उसे लाभ होगा। बाकी खुद के स्वरूप का भान तो सारे दिन रहा ही करता है, निरंतर भान रहता है! ऑफिस में काम कर रहे हों, तो भी भान रहता है!! ज़रा गाढ़ (जटिल) काम हो तो वह काम पूरा हुआ कि तुरन्त ही वापस भान में आ जाता है।

क्रिया यदि गाढ़ हो तो, जैसे आधे इंच के पाइप से पानी गिर रहा हो तो हम ऐसे नल के नीचे हाथ रखें तो हाथ खिसक नहीं जाता और डेढ़ इंच के पाइप में से फोर्स से पानी आ रहा हो तो हाथ खिसक जाता है। इसी प्रकार यदि बहुत भारी गाढ़ कर्म हों तो वे विचलित कर देते हैं। उसमें भी हमें हर्ज नहीं है। क्योंकि हमें एक जन्म में हिसाब साफ करना है न? हिसाब साफ किए बिना मोक्ष में जाया नहीं जा सकेगा न!

प्रश्नकर्ता : हिसाब साफ नहीं करें तो पुनर्जन्म लेना पड़ेगा?

दादाश्री : हाँ, इसलिए ही पुनर्जन्म मिलता है। यानी हिसाब बिल्कुल साफ हो जाना चाहिए, तो हल आएगा।

भ्रांति ही लाती है जन्म-मरण

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा ही हुआ न कि जब दूसरा जन्म होना होता है, तब वही का वही आत्मा वहाँ पर जाता है?

दादाश्री : हाँ, वही आत्मा, अन्य कोई नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा का भी जन्म हुआ, ऐसा कह सकते हैं न?

दादाश्री : नहीं। आत्मा का जन्म होता ही नहीं। जन्म लेने का आत्मा का स्वभाव ही नहीं है। यह जन्म भी *पुद्‌गल* का होता है और मरण भी *पुद्‌गल* का होता है। परन्तु यह 'उसकी' मान्यता है कि 'यह मैं हूँ' इसलिए उसे साथ में घिसटना पड़ता है। बाकी, इसमें *पुद्‌गल* का जन्म और *पुद्‌गल* का ही मरण है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन *पुद्‌गल* के साथ आत्मा होता है न?

दादाश्री : यह तो भ्रांति है, इसी वजह से *पुद्‌गल* साथ में है। वर्ना भ्रांति जाने के बाद *पुद्‌गल* और आत्मा का कोई लेना-देना नहीं रहता न! भ्रांति जाने के बाद तो जितना चार्ज हो चुका है, उतना डिस्चार्ज हो जाता है इसलिए फिर खत्म हो जाता है, फिर नया चार्ज नहीं होता।

ये सभी कर्म जो अभी हो रहे हैं न, उन कर्मों का यदि 'मैं मालिक हूँ' ऐसा कहे, 'मैंने किया' ऐसा कहे, तो नया हिसाब बँधता है और 'यह व्यवस्थित ने किया' और 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ' ऐसा समझ में आ जाए तो कर्मों के साथ उसका लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तब तो फिर जन्म ही नहीं होगा?

दादाश्री : हाँ, फिर मुक्त हो जाएगा। परन्तु इस काल में अभी संपूर्ण डिस्चार्ज नहीं हो सकता। यानी धक्का इतना ज़ोरदार है कि एक या दो जन्म और होते हैं। कर्ताभाव मिटा यानी बस, खत्म हो गया, कर्म बँधने रुक जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : पूर्वकर्म संबंधी आपके विचार जानने हैं। उदाहरण के तौर पर ये सूक्ष्म जंतु कौन-से कर्म करें कि जो उनके अगले जन्म में उपयोगी हो सकें?

दादाश्री : इन मनुष्यों के अलावा, दूसरे सभी जीव जो कर्म करते हैं, उसका उन्हें फल नहीं मिलता। इन योनियों में वे कर्म पूरा करके छूट जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो जंतु का दूसरा जन्म कौन-सा आता है? जंतु, वह जंतु ही रहेगा?

दादाश्री : नहीं। जंतु में से दूसरा जन्म होता है, तीसरा जन्म होता है। वह दूसरी योनि में जाता है, लेकिन दिनों-दिन उनके कर्म छूटते जाते हैं। वह बँधे हुए कर्मों को भोगता है, वह नये कर्म नहीं बाँध सकता। सिर्फ ये मनुष्य ही नये कर्म बाँध सकते हैं। देवी-देवता भी कर्म भोगते हैं। देवी-देवता क्रेडिट भोगते हैं और ये जानवर डेबिट भुगतते हैं, और ये मनुष्य क्रेडिट और डेबिट दोनों भोगते हैं। परन्तु मनुष्य भोगते भी हैं और फिर कर्ता भी हैं, इसलिए नये कर्म बाँधते हैं!

प्रश्नकर्ता : यह जो देह है, वह कर्मों का ही परिणाम है न?

दादाश्री : हाँ, कर्मों का ही परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : कर्मों की संपूर्ण *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होनी चाहिए न?

दादाश्री : संपूर्ण *निर्जरा* हो जाए, तब तो सिद्धक्षेत्र में चला जाता है। परन्तु जब वह शुद्ध चित्त हो जाएगा, तब कर्मों की *निर्जरा* हो चुकी, ऐसा कहा जाएगा!

डिस्चार्ज के समय, अज्ञानता से चार्ज

जैसे बेटरी में सेल होते हैं न, वे चार्ज होते हैं, उसी तरह यह देह भी चार्ज हो चुका है। देह में चेतन है ही नहीं। चेतन तो भीतर में अंदर है, चेतन आत्मा में ही है। देह तो चार्ज हो चुका चेतन है!

मनुष्य में सोने की भी शक्ति नहीं है, जागने की भी शक्ति नहीं है, जाने की भी शक्ति नहीं है, आने की भी शक्ति नहीं है, किसी भी

प्रकार की शक्ति इनमें नहीं है। मनुष्य में सिर्फ चार्ज करने की शक्ति है और वह भी खुद की स्वतंत्र शक्ति नहीं है, वह तो डिस्चार्ज के धक्के से चार्ज हो जाता है। यदि चार्ज करने की इनकी स्वतंत्र शक्ति होती न, तब तो फिर कभी भी कोई मोक्ष में जा ही नहीं सकता था। क्योंकि फिर वह गुनहगार माना जाता और गुनहगार हो गया तो मोक्ष में नहीं जा सकता।

यह तो खुद को ऐसा लगता है कि 'मैं कर रहा हूँ।' परन्तु यह डिस्चार्ज के धक्के से हो रहा है, बहुत दबाव आता है तो फिर चार्ज हो जाता है। यानी मुख्यत: अज्ञानता बाधक है। यदि अज्ञानता जाए तो मुक्ति हाथभर की दूरी पर है।

कारणों के परिणामस्वरूप परिभ्रमण

प्रश्नकर्ता : मृत्यु के बाद आत्मा की कैसी स्थिति होती है?

दादाश्री : अभी जो है ऐसी की ऐसी ही स्थिति रहती है। उसकी स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। सिर्फ, जब यहाँ पर मरता है, तब इस स्थूल देह को छोड़ देता है, और कुछ भी छोड़ता-करता नहीं है। अन्य संयोग साथ में ही ले जाता है। दूसरे कौन-से संयोग? तब कहे, कर्म बाँधे हैं न-वे, फिर क्रोध-मान-माया-लोभ और सूक्ष्म शरीर, वे सब साथ में ही जाता है। सिर्फ यह स्थूल देह ही यहाँ पर पड़ा रहता है। यह कपड़ा बेकार हो गया, इसलिए छोड़ देता है।

प्रश्नकर्ता : और दूसरा देह धारण करता है?

दादाश्री : हाँ, दूसरा कपड़ा बदलता है सिर्फ, और कोई बदलाव नहीं होता। क्योंकि जब तक अज्ञान है तब तक बीज डालता ही रहता है, बीज डालने के बाद ही आगे चलता है, और ज्ञान होने के बाद में फिर छुटकारा होता है। 'खुद कौन है', इसका भान हो जाए तब छुटकारा होता है।

मृत्यु के बाद जन्म और जन्म के बाद मृत्यु है। बस, यह निरंतर चलता ही रहता है। अब यह जन्म और मृत्यु क्यों हैं? तब कहे, 'कॉज़ेज़

एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़', कारण और कार्य, कार्य और कारण। इसमें से यदि कारणों का नाश किया जाए तो ये सभी इफेक्ट बंद हो जाएँगे, फिर नया जन्म नहीं लेना पड़ेगा।'

यहाँ पर पूरी ज़िन्दगी कॉज़ेज़ उत्पन्न किए हों, तो आपके वे कॉज़ेज़ किसके पास जाएँगे? और कॉज़ेज़ किए हैं इसलिए, वे आपको कार्य फल दिए बगैर रहेंगे नहीं। कॉज़ेज़ उत्पन्न किए हैं, ऐसा आपको खुद को समझ में आता है?

हर एक कार्य में कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं। आपको किसीने नालायक कहा कि आपको अंदर कॉज़ेज़ खड़े हो जाते हैं कि 'तेरा बाप नालायक है।' वह आपका कॉज़ेज़ कहलाएगा। आपको 'नालायक' कहा है, वह तो कायदे से कहकर गया और आपने उसे ग़ैरकायदा किया, वह समझ में नहीं आया आपको? क्यों नहीं बोलते?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : यानी कॉज़ेज़ इस जन्म में होते हैं, उसका इफेक्ट अगले जन्म में भोगना पड़ता है।

यह तो, इफेक्टिव मोह को कॉज़ेल मोह माना जाता है। आप ऐसा सिर्फ मानते ही हो कि 'मैं क्रोध कर रहा हूँ।' परन्तु यह तो जब तक आपको भ्रांति है, तभी तक यह क्रोध है। वर्ना, यह क्रोध है ही नहीं, यह तो इफेक्ट है। और कॉज़ेज़ बंद हो जाएँगे तो सिर्फ इफेक्ट ही बाकी रहेंगे और कॉज़ेज़ बंद कर दिए यानी 'ही इज़ नॉट रिस्पोन्सिबल फॉर इफेक्ट' और इफेक्ट अपना भाव बताए बगैर रहेगा ही नहीं।

जन्म परिभ्रमण तोड़ें 'ज्ञानी'

हक़ीक़त स्वरूप में क्या है? जो मूल आत्मा है, जो यथार्थ आत्मा है, वह शुद्ध चेतन है और वही परमात्मा है, और पूरा जगत् जिसे चेतन मानता है, वह निश्चेतन-चेतन है। लोहे का गोला तपा हुआ हो तो वह अग्नि जैसा हो जाता है, वैसा यह निश्चेतन-चेतन है।

निश्चेतन-चेतन यानी क्या? मूल चेतन की हाज़िरी में जो चार्ज हो रहा है, बाद में वह डिस्चार्ज होता रहता है, उसे निश्चेतन चेतन कहा है। घटक चार्ज हो रहे हैं, इन चार्ज हो चुके घटकों को 'कारण' कहते हैं, कॉज़ेज़ कहते हैं। और जब पूरी ज़िन्दगी के कॉज़ेज़ इकट्ठे होते हैं, और जब मनुष्य मर जाता है तब जो कॉज़ेज़ हैं न, कारण शरीर, वह दूसरे जन्म में कार्य शरीर, 'इफेक्टिव बॉडी' बन जाता है।

'इफेक्टिव बॉडी' यानी इन मन-वचन-काया की तीन बेटरियाँ तैयार हो जाती है और उन में से वापस नये कॉज़ेज़ उत्पन्न होते ही रहते हैं। अतः इस जन्म में मन-वचन-काया डिस्चार्ज होते रहते हैं और दूसरी तरफ़ अंदर नया चार्ज होता रहता है। मन-वचन-काया की जो बेटरियाँ चार्ज होती रहती हैं, वे अगले जन्म के लिए हैं और ये जो पिछले जन्म की हैं, वे अभी डिस्चार्ज होती रहती हैं। 'ज्ञानीपुरुष' नया चार्ज बंद कर देते हैं, तब फिर पुराना डिस्चार्ज होता रहता है।

यानी मृत्यु के बाद आत्मा दूसरी योनि में जाता है। जब तक खुद के 'सेल्फ' का 'रियलाइज़ेशन' नहीं हो जाता, तब तक अन्य सभी योनियों में भटकता रहता है। जब तक मन में तन्मयाकार रहता है, बुद्धि में तन्मयाकार रहता है तब तक संसार खड़ा है, क्योंकि तन्मयाकार होने का अर्थ है योनि में बीज पड़ना और कृष्ण भगवान ने कहा है कि योनि में बीज पड़ने से ही यह संसार है। जिसका योनि में बीज पड़ना बंद हो गया कि उसका संसार खत्म हो गया।

पंचेन्द्रियाँ, एक जन्म तक ही

प्रश्नकर्ता : एक जीव दूसरे खोल में जाता है, वहाँ पर साथ में पंचेन्द्रियाँ और मन वगैरह हर एक जीव लेकर जाता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, कुछ भी नहीं। इन्द्रियाँ तो सभी एक्ज़ोस्ट होकर खत्म हो गई। इन्द्रियाँ तो मर गई। यानी कि उसके साथ में इन्द्रिय वगैरह कुछ भी नहीं जाता। सिर्फ ये क्रोध-मान-माया-लोभ ही जाते हैं। कारण

शरीर में क्रोध-मान-माया-लोभ सबकुछ ही आ गया। और सूक्ष्म शरीर, वह कैसा होता है? जब तक मोक्ष में नहीं जाता, तब तक साथ में ही रहता है। भले ही कहीं भी जन्म हो, परन्तु यह सूक्ष्म शरीर तो साथ में ही रहता है।

बाकी, इन्द्रियाँ सभी मर जाती हैं। और कारण शरीर में से फिर से नई उत्पन्न होती हैं। ये इन्द्रियाँ तो एक्ज़ोस्ट होने के लिए उत्पन्न हुई हैं, ये निरंतर एक्ज़ोस्ट ही होती रहती हैं। और एक्ज़ोस्ट हो जाएँ तो खत्म हो जाती हैं। फिर मरते समय उनसे पूछें कि, 'कुछ बोलिए न! चाचा, कुछ बोलिए।' लेकिन वे 'ल ल ल...' करते रहते हैं। जीभ गई। क्योंकि एक्ज़ोस्ट हो गई, खत्म हो गई। आँख का भी ऐसा हो जाता है। इन कानों का भी ऐसा हो जाता है, यानी कि सबकुछ एक्ज़ोस्ट हो जाता है। यानी ये इन्द्रियाँ बिल्कुल भी साथ में नहीं जातीं। उसे नई फ्रेश इन्द्रियाँ मिलेंगी। आँखें भी फर्स्टक्लास, कान भी फर्स्टक्लास मिलेंगे। फिर रेडियो सुनते ही रहो न कान से लगाकर।

सूक्ष्म शरीर से संबंध कब तक?

देह को छोड़कर आत्मा अकेला नहीं जाता है। आत्मा के साथ में फिर सभी कर्म, कारण कर्म-कारण देह कहते हैं उसे, और तीसरा इलेक्ट्रिकल बॉडी, ये तीनों साथ में निकलते हैं। जब तक यह संसार है, तब तक हर एक जीव में यह इलेक्ट्रिकल बॉडी होती ही है। कारण शरीर बना कि 'इलेक्ट्रिकल बॉडी' साथ में होती ही है। इलेक्ट्रिकल बॉडी हर एक जीव में सामान्य भाव से होती ही है और उसके आधार पर अपना सब चलता है। भोजन खा लेते हैं, उसे पचाने का काम यह इलेक्ट्रिकल बॉडी करती है। ये खून वगैरह सब बनता है, खून शरीर में ऊपर चढ़ाती है, नीचे उतारती है, अंदर ये सारे काम करती है। आँखों से जो दिखता है, वह सारी लाइट इलेक्ट्रिकल बॉडी के कारण ही है। और ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये भी इस इलेक्ट्रिकल बॉडी के कारण होते हैं। आत्मा में क्रोध-मान-माया-लोभ हैं ही नहीं। यह गुस्सा भी, ये सब इलेक्ट्रिकल बॉडी के शॉक हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर चार्ज होने में इलेक्ट्रिकल बॉडी काम करती होगी न?

दादाश्री : इलेक्ट्रिकल बॉडी हो तभी चार्ज होता है, वर्ना यदि यह इलेक्ट्रिकल बॉडी नहीं होगी तो यह कुछ भी चलेगा ही नहीं। इलेक्ट्रिकल बॉडी हो और आत्मा नहीं हो, तब भी कुछ नहीं चलेगा। ये सब समुच्चय कॉज़ेज़ हैं।

प्रश्नकर्ता : जब जीव मर जाता है, तब तैजस शरीर किस तरह से उसके साथ में जाता है?

दादाश्री : तैजस शरीर कब तक रहता है? कर्म की सिल्लक हो तब तक। कर्म की सिल्लक खत्म हो गई कि तैजस शरीर (साथ में)नहीं आता। अर्थात् वह इस पूरे भवपर्यंत ठेठ तक रहता है। हर एक जीव मात्र में, पेड़ में, सभी में तैजस शरीर होता है, यह तैजस शरीर नहीं हो तो उसकी गाड़ी किस तरह चलेगी? तैजस शरीर को अंग्रेज़ी में कहना हो तो इलेक्ट्रिकल बॉडी कह सकते हैं। और 'इलेक्ट्रिसिटी' के बिना तो घर में चल ही नहीं सकेगा और आँखों से दिखेगा भी नहीं। 'इलेक्ट्रिसिटी' बंद हो गई कि हो चुका, सबकुछ खत्म हो जाएगा!

ऐसा है न, इस पानी के नीचे अगर स्टोव जलाओ, तो एक सेर पानी होगा, फिर भी खत्म हो जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यह पानी, वह स्थूल स्वरूप है और जो उड़ जाता है, वह सूक्ष्म स्वरूप है। उसी प्रकार यह देह जो स्थूल स्वरूप है, वह हमें दिखती है, और वह सूक्ष्म स्वरूप हमें दिखता नहीं है। परन्तु वह सूक्ष्म शरीर भी इसके जैसा ही होता है, अन्य कोई फ़र्क़ है ही नहीं। सूक्ष्म शरीर का मतलब ही इलेक्ट्रिकल बॉडी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिस समय जीव जाता है, उस समय कार्मण शरीर और तैजस शरीर उसके साथ में किस तरह से जाते हैं? अन्य कुछ साथ में क्यों नहीं जाता?

दादाश्री : जो पानी हमने जलाया न, उस पानी में ही हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दोनों साथ में निकलते हैं और बाद में वे अलग हो जाते हैं। लेकिन जब उड़ते हैं, तब दोनों साथ में उड़ते हैं। लेकिन बाद में अलग होते हैं और फिर से इकट्ठे होते हैं। यह हिसाब है। कर्म के हिसाब से इलेक्ट्रिकल बॉडी चिपकी हुई ही रहती है। यानी अन्य कोई मिलावट नहीं होती। यह इलेक्ट्रिकल बॉडी संपूर्ण भवपर्यंत एक ही रहती है और उसमें बाहर का और कुछ भी उसे छूता नहीं है। जैसे कि यह शरीर, दूसरे शरीर को घुसने नहीं देता, उसी प्रकार इस सूक्ष्म शरीर का है, यह स्थूल शरीर आँखों से दिखता है और सूक्ष्म शरीर आँखों से नहीं दिखे, ऐसा होता है, और कोई फ़र्क़ नहीं है। इसमें आकार वगैरह एक जैसा, सिर्फ इतना ही कि यह स्थूल दिखता है और सूक्ष्म शरीर नहीं दिखता, इतना ही। यानी इसमें कुछ भी मिश्रित नहीं हो सकता, यह सूक्ष्म शरीर किसी और को नहीं मिलता। इसमें भी ममता है न, उसी प्रकार से वहाँ पर सूक्ष्म देह में भी ममता है, सभीकुछ है।

ऐसा है न, जब तक संसार अवस्था है तब तक सूक्ष्म शरीर साथ में रहता ही है। संसार अवस्था अर्थात् भ्रांति की अवस्था। जब तक वह है तब तक सूक्ष्म शरीर रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो सूक्ष्म देह में आत्मा स्वतंत्र है या बँधा हुआ है?

दादाश्री : स्वतंत्र ही है, बँधा हुआ नहीं है। व्यवहार आत्मा बँधा हुआ है और खरा (निश्चय) आत्मा बँधा हुआ नहीं है। जिसका आप व्यवहार में उपयोग करते हो, वह आत्मा बँधा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : यह जो फिर से जन्म लेता है, वह सूक्ष्म देह लेता है न?

दादाश्री : हाँ, तो फिर आप ऐसा कहो न कि यह अहंकार जन्म लेता है! सूक्ष्म देह को तो पहचानते ही नहीं, कभी भी सूक्ष्म देह को तो देखा ही नहीं। सूक्ष्म देह शब्द बोलना सीख गए, वह तो किताब में पढ़कर।

अतः अहंकार ही जन्म लेता है, ऐसा कहो न! अहंकार को पहचानते हो या नहीं पहचानते? अहंकार ही देह धारण करता है बार-बार। एक तो व्यवहार आत्मा है और एक खरा आत्मा है। खरा आत्मा बँधा हुआ नहीं है, वह शुद्ध ही है।

यानी अहंकार की ही गड़बड़ है यह। अहंकार चला जाए तो मोक्ष हो जाएगा। बस, इतनी छोटी-सी बात समझ में आएगी न?

जिसे सूक्ष्मदेह कहते हो वह, वही दूसरे जन्म में जाती है। यह प्रमाण तो हमें समझ में आता है न? बाकी सूक्ष्म को तो किस तरह से पहचानोगे? सूक्ष्म वस्तु अलग है, उसे तो 'ज्ञानी' ही जानते हैं। यह तो लोग किताब में पढ़कर 'सूक्ष्मदेह, सूक्ष्मदेह' बोलते हैं। बाकी जो स्थूल को ही नहीं पहचानता, वह सूक्ष्म को किस तरह से पहचानेगा?

किस पर किसकी *वळगणा*

प्रश्नकर्ता : आत्मा *पुद्गल* से चिपका हुआ है या *पुद्गल* आत्मा से चिपका है?

दादाश्री : ऐसा है न, कोई किसीसे चिपका हुआ है ही नहीं, सबकुछ नैमित्तिक है। यह तो लोग व्यवहार में कहते हैं कि, 'आत्मा चिपक गया है।' इसीलिए तो लोग ऐसा कहते हैं कि, 'इस पेड़ को तूने पकड़ा है, तू छोड़ दे', लेकिन ऐसे छोड़ने से क्या छूटता होगा? यह तो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा दिखता है कि आत्मा इस *पुद्गल* से चिपका हुआ है। आत्मा *पुद्गल* में तन्मयाकार हो जाता है, इसलिए ऐसा हुआ है।

दादाश्री : वह तो अनिवार्यतः होना ही पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को यह अनिवार्यता क्यों हुई? किसने अनिवार्य किया?

दादाश्री : यह सब तो ऐसा है न, आत्मा चैतन्य है और यह *पुद्गल*

जड़ है, इन दोनों को साथ में रखा तो विशेषभाव उत्पन्न हो जाता है। कोई कुछ भी नहीं करता, लेकिन दोनों के इकट्ठे होने से विशेषभाव उत्पन्न होता है और विशेषभाव होने से संसार शुरू हो जाता है। फिर आत्मा जब वापस मूल भाव में आ जाता है और खुद जान लेता है कि 'मैं कौन हूँ' तब वह छूट जाता है। उसके बाद *पुद्गल* भी छूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : दोनों पास-पास में किस तरह से आए?

दादाश्री : वही यह एविडेन्स है न! व्यवहार में प्रवेश करते ही यह सब मिल जाता है। यहाँ व्यवहार पूरा संजोगों से भरा हुआ है, और जहाँ संजोग नहीं होते, वहाँ तक जाना है, सिद्धपद में जाना है। इसके लिए शास्त्र, 'ज्ञानीपुरुष', ये सभी साधन मिल जाते हैं, और तब, जब वह खुद का स्वरूप समझे, तब से ही वह मुक्त होने लगता है। फिर एक जन्म, दो जन्म, नहीं तो पंद्रह जन्मों में भी उसका हल आ जाता है!

यानी चेतन खुद *पुद्गल* के चक्र में पड़ा ही नहीं है। यह जो ऐसा लगता है कि पड़ा हुआ है, वह भी भ्रांति है। यह भ्रांति दूर हो जाए तो अलग-अलग ही हैं।

आत्मा शुद्ध ही! बिलीफ़ ही रोंग

प्रश्नकर्ता : आत्मा उसके मूल स्वभाव में तो शुद्ध है, तो उसे ये सब कषाय किस तरह से लग गए होंगे? और कर्म किस तरह से बँधे?

दादाश्री : यह साइन्स है! हम यहाँ पर लोहा रख दें और यदि वह लोहा जीवित हो और कहे कि, 'मुझे ज़ंग नहीं लगे', लेकिन साइन्स का नियम है, कि यदि उसे अन्य संयोगों का स्पर्श होगा तो उसे ज़ंग लगे बिना रहेगा ही नहीं। उसी प्रकार से आत्मा मूल स्वभाव से तो शुद्ध ही है, परन्तु उसे इन संयोगों के दबाव से ज़ंग लग गया है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा अभी कर्म से आवृत हैं, परन्तु आत्मा यदि कर्मों को खपा दे तो फिर उसे ज़ंग लगेगा क्या?

दादाश्री : ऐसा है न, जब तक खुद स्वभान में नहीं आता, तब तक

ज़ंग लगता रहता है, निरंतर ज़ंग लगता ही रहता है। खुद का भान गया, खुद आरोपित भाव में है, इसलिए ज़ंग लगता ही रहता है। 'मैं चंदूलाल हूँ' यह आरोपित भाव है, इसलिए निरंतर ज़ंग लगता रहता है। वह आरोपित भाव गया और 'स्वभाव' में आ जाए, यानी कि खुद के स्वरूप में आ जाए, क्षेत्रज्ञदशा में आ जाए, तो फिर उसे ज़ंग नहीं लगेगा!

प्रश्नकर्ता : शुरूआत में आत्मा मूल पदार्थ के रूप में क्या होगा कि जिससे यह ज़ंग लगा?

दादाश्री : ये सभी तत्व लोक में हैं, और लोक में जब तक हैं तब तक दूसरे तत्वों का असर होता रहेगा। इसे 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' कहते हैं। आत्मा जब लोक से परे जाएगा, सिद्धगति में जाएगा, तब वहाँ पर उसे ज़ंग नहीं लगेगा।

ऐसा है न, अन्य कोई कर्म लगे हुए नहीं हैं, भान खोया है, वही कर्म लगे हुए हैं। बाकी खुद शुद्ध ही है। अभी भी आपका आत्मा शुद्ध ही है। हर एक का आत्मा शुद्ध ही है, परन्तु यह जो बाह्यरूप खड़ा हो गया है, उस रूप में खुद को 'रोंग बिलीफ़' खड़ी हो गई है। जन्म से ही खुद को यहाँ पर उस रूप में अज्ञान प्रदान किया जाता है। संसार है, इसलिए जब से बच्चे का जन्म होता है, तब से ही उसे अज्ञान का प्रदान किया जाता है कि 'बेटा आया, बेटा, बेटा' कहते हैं। फिर चंदू नाम रखा जाए तो लोग फिर उसे 'चंदू, चंदू' कहते हैं, तब खुद फिर मान लेता है कि 'मैं चंदू हूँ।' फिर उसे पापा की पहचान करवाते हैं, मम्मी की पहचान करवाते हैं, सारा अज्ञान का ही प्रदान किया जाता है। 'तू चंदू, ये तेरी मम्मी, ये तेरे पापा' ऐसे पहचान करवाते हैं, इसलिए फिर उसे जो रोंग बिलीफ़ बैठ गई है, वह उखड़ती ही नहीं। उस रोंग बिलीफ़ को जब 'ज्ञानीपुरुष' तोड़ देते हैं, तब राइट बिलीफ़ बैठती है, और तब हल आ जाता है! यानी आत्मा तो शुद्ध ही है, यह तो सिर्फ दृष्टिफेर ही है!!

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसकी शुरूआत किस तरह से हुई?

दादाश्री : यह तो अविनाशी वस्तुओं के इकट्ठे होने से ये सब

अवस्थाएँ उत्पन्न हो गई हैं। यह संसार अर्थात् समसरण मार्ग और समसरण अर्थात् निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है। इस परिवर्तन से आपको खुद के लिए ऐसा लगता, कि आपका आत्मा अशुद्ध ही है, लेकिन मुझे आपका आत्मा शुद्ध ही दिखता है। सिर्फ आपकी 'रोंग बिलीफ़' बैठी हुई है, इसलिए आप अशुद्ध मानते हैं। इन 'रोंग बिलीफ़ों' को मैं फ्रेक्चर कर दूँ और आपको 'राइट बिलीफ़' बैठा दूँ, तब फिर आपको भी शुद्ध दिखेगा।

यह तो सिर्फ मिथ्यादर्शन उत्पन्न हो गया है, जहाँ पर सुख नहीं है वहाँ पर सुख की मान्यता उत्पन्न हो गई है। हम जब ज्ञान देते हैं, उसके बाद फिर उसे सच्ची दिशा में रास्ता मिल जाता है। रास्ता मिल जाता है इसलिए हल आ जाता है। मिथ्यादर्शन बदल दें और सम्यकदर्शन कर दें, तब उसका निबेड़ा आ जाता है, तब तक निबेड़ा नहीं आता।

आत्मा शुद्ध ही है। अभी भी आपका आत्मा शुद्ध ही है, सिर्फ आपकी बिलीफ़ रोंग है। इसलिए आप इन टेम्परेरी वस्तुओं में सुख मान बैठे हो। जो आँखों से दिखता है, कान से सुनाई देता है, जीभ से चखा जाता है, वह सब, 'ऑल आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्टस' है और उस टेम्परेरी में आपने सुख माना। अभी आपको इस 'रोंग बिलीफ़' का असर हो गया है। यह 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर हो जाए तो फिर टेम्परेरी में सुख नहीं आएगा, 'परमानेन्ट' में सुख आएगा। 'परमानेन्ट' सुख, वह सनातन सुख है, वह आने के बाद फिर जाता नहीं है। और उसे ही 'आत्मा प्राप्त किया', कहा जाता है, उसे स्वानुभव पद कहते हैं। उस स्वानुभव पद सहित आगे बढ़ते-बढ़ते फिर पूर्णाहुति हो जाती है।

वस्तुओं का आवन-जावन कैसा?

प्रश्नकर्ता : सभी जीव कि जो आत्मा हैं, वे आत्मा इस जगत् में कहाँ से आए होंगे?

दादाश्री : कोई भी आया नहीं है। यह पूरा ही जगत् छह तत्वों का प्रदर्शन हैं। ये जो छह तत्व हैं, उन सबके मिलने से ही यह जगत् बना है, वही दिखता है। सिर्फ 'साइन्टिफिक सरकमस्टेनिश्यल एविडेन्स' है!

यानी किसीने बनाया नहीं है, किसीको कुछ करना नहीं पड़ा है। इसकी आदि नहीं है, इसका अंत नहीं है। यह 'जैसा है वैसा' कह दिया है कि जगत् अनादि-अनंत है। सिर्फ एक दृष्टिफेर से जगत् दिखता है और दूसरी दृष्टिफेर से मोक्ष दिखता है। पूरा दृष्टिफेर ही है सिर्फ, और कुछ भी है ही नहीं।

जो 'आता' है, वह सनातन नहीं हो सकता और आत्मा सनातन वस्तु है, तो फिर उसके लिए 'आया, गया' नहीं होता। जो आता है वह तो चला जाता है। आत्मा ऐसा नहीं है।

जगत् में सबसे प्रथम तो...

प्रश्नकर्ता : तो फिर ये जीव कहाँ से पैदा हुए?

दादाश्री : ये जीव पैदा हुए ही नहीं। आत्मा अविनाशी है। और अविनाशी पैदा नहीं होता कभी भी। वह तो हमेशा रहता है। और उसका नाश भी नहीं होता और वह पैदा भी नहीं होता। कोई पैदा नहीं हुआ है और नष्ट भी नहीं हुआ है। यह जो दिखता है, यह सारी भ्रांति है। और अवस्थाओं का नाश होता है। बुढ़ापे की अवस्था, जवानी की अवस्था, उन सबका नाश होता रहता है और वह 'खुद', जो था, वही का वही। अर्थात् अवस्था का विनाश होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपनी पृथ्वी पर पहले जीव थे ही नहीं न? तो बाद में ये सब जीव आए कहाँ से?

दादाश्री : थे नहीं, ऐसा किसीने कहा था?

प्रश्नकर्ता : साइन्स कहती है।

दादाश्री : साइन्स ऐसा कहती ही नहीं है। साइन्स तो सबकुछ एक्सेप्ट करती है। यह भूमि बगैर जीवों की कभी भी थी ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : विज्ञान ऐसा भी कहता है कि पहले जीवसृष्टि हुई और फिर मनुष्यसृष्टि हुई।

दादाश्री : यह विज्ञान तो था ही नहीं, उस समय। यह जगत् तो अनादि से है ही। इसका आरंभ हुआ ही नहीं और इसका अंत हो जाएगा, ऐसा भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मैं कई बार सोचता हूँ, कि सबसे प्रथम पूर्वज कौन होंगे? लेकिन मुझे इसका जवाब नहीं मिलता।

दादाश्री : ऐसा है, सबसे पहला पूर्वज होता न, तो उसकी आदि हुई कहलाती और जिसकी आदि होती है उसका अंत होता है, तो दुनिया का नाश हो जाता। लेकिन इस दुनिया का नाश नहीं होनेवाला और दुनिया की आदि भी नहीं हुई है। यानी पहला पूर्वज कोई था ही नहीं। यह जैसा है, वैसे का वैसा ही है, जो है न वही का वही है। अनादि से यही का यही प्रवाह चलता आ रहा है। यह दुनिया अनादि काल से ऐसी की ऐसी ही है और अनादि काल तक ऐसी की ऐसी ही रहेगी। यानी ऐसे ही चलता रहेगा, अनादि काल से चल रहा है और अनादि काल तक चलता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई वैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि पहले वानर थे।

दादाश्री : ऐसा कोई वानर नहीं था। उसे वानर कहो या कुछ और कहो, लेकिन मूलतः वह आत्मा ही है न? और आत्मा ही, सभी योनियों में है, और अनात्मा भी है। *पुद्गल* भी है और आत्मा भी है। यानी पहले बंदर था वगैरह, ऐसा कुछ है नहीं। सर्व योनियों में, जैसा हिसाब होता है न वह वैसी योनियों में जाता है। बाकी आत्मा अनादि से हैं और अनात्मा भी अनादि से हैं।

प्रश्नकर्ता : संसार में मनुष्य खुद के पूर्वकर्म के कारण ही बँधा हुआ है, ऐसा कहा जाता है। तो फिर पृथ्वी पर सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाला मनुष्य खुद के साथ में पूर्व के कौन-से बंधन लाया होगा?

दादाश्री : सबसे पहले उत्पन्न होनेवाला मनुष्य था ही नहीं। यह जगत् उत्पन्न हुआ ही नहीं है। जिसकी उत्पत्ति हो उसका विनाश अवश्य होता है। यह जगत् विनाशी भी नहीं है और उसी प्रकार, उत्पन्न भी नहीं

हुआ है। जगत् तो अनादि अनंत है। और ये मनुष्य हैं, और जीव मात्र हैं, ये सभी अनादि अनंत हैं। पेड़ में जीव हो या छोटे से छोटे जीव हों, वे सभी अनादि अनंत हैं! इसमें कुछ भी कम-ज़्यादा नहीं हुआ है, जितने थे उतने ही हैं!

एक भी जीव बढ़ा नहीं है और एक भी जीव घटा नहीं है, ऐसी यह दुनिया है। एक परमाणु भी बढ़ा नहीं है, घटा नहीं है। जला दे, चाहे कुछ भी करे, फिर भी अनादि से एक भी परमाणु घटता नहीं है, न ही बढ़ता है, ऐसी यह दुनिया है।

यानी आत्मा आया भी नहीं है और गया भी नहीं है। यह 'आया-गया', यह सारी बुद्धि की भाषा है, जब ज्ञानभाषा में आ जाएगा न तब उसे खुद को लगेगा कि ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था। उसे बुद्धि से यह सब भासित होता है। यह बुद्धि जाए, अहंकार जाए न, तो खुद मुक्त ही है। इस बुद्धि और अहंकार से सबकुछ खड़ा हो गया है, इसलिए यह सब दिखता है।

संयोगों में बिलीफ़ की *आँटी*, कौन निकाले?

मनुष्य बाहर निकलता है तो परछाई कहाँ से आती है? सभी संयोगों के कारण। सूर्य का संयोग मिल जाए तो परछाई उत्पन्न हो जाती है, दर्पण का संयोग मिल जाए तो प्रतिबिंब उत्पन्न हो जाता है। यानी यह सब संयोगों के कारण हुआ है और इसलिए पूरी बिलीफ़ बदल गई है। 'स्वरूप' तो वही का वही है, लेकिन बिलीफ़ बदल गई है कि यह क्या हो गया? यह चिड़िया दर्पण में चोंच नहीं मारती? चिड़िया दर्पण में चोंच मारती है न? अब मनुष्य ऐसा नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि यह तो मेरा ही फोटो है। लेकिन चिड़िया की बिलीफ़ बदल गई है कि यह दूसरी चिड़िया आई है, इसलिए उसे चोंच मारती रहती है। लेकिन बहुत दिनों के अनुभव के बाद फिर वह बिलीफ़ टूट जाती है। इसी प्रकार यह बिलीफ़ ही बदली हुई है। पूरी बिलीफ़ ही रोंग हो गई है, इसलिए अहंकार उत्पन्न हो गया है और इसीलिए बुद्धि उत्पन्न हो गई है। और बुद्धि उत्पन्न हो गई, इसलिए बुद्धि

के आधार पर, बुद्धि की लाइट चलती है, और वह मूल लाइट बंद हो गई। इसलिए उलझ गया है सभीकुछ। आत्मा में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। आत्मा का कुछ बिगड़ा भी नहीं है, न ही आत्मा पर कुछ असर हुआ है।

मनुष्य बाहर निकलता है, तो परछाई पीछे-पीछे घूमती है न? यह सब परछाई जैसा ही है। कोई मनुष्य परछाई में ऐसे-ऐसे करे, एक उँगली ऊँची करे, दो उँगलियाँ ऊँची करे, ऐसे-वैसे देखे, तो हम नहीं समझ जाएँ कि इसका दिमाग़ ज़रा बिगड़ गया है? इसी तरह जब खुद का भान हो जाए, तब फिर जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो उस तरह से संयोगों में से छूट जाता है। यानी कि ये संयोग इकट्ठे हो गए हैं, और कुछ नहीं। और परछाई को निकालने के लिए अगर रोड पर दौड़ता रहे तो परछाई चली जाएगी? नहीं। वह तो ऐसे दौड़े तो पीछे दिखती है, नहीं तो इधर घूम जाए तब भी फिर दिखती है। तो फिर वह आदमी चाहे कैसे भी वापस घूमे फिर भी कुछ न कुछ दिखता ही रहता है न? यानी कि परछाई उसे छोड़ती नहीं है। अब उसे कोई बताए कि 'तू घर में घुस जा न' तो परछाई बंद हो जाएगी!

यानी यह तो सिर्फ बिलीफ़ रोंग हो चुकी है, वर्ना और कुछ है नहीं। आत्मा ने कर्म बाँधे ही नहीं और यह तो सब गप्पबाज़ी चली है। यदि कर्म बाँधे तब तो वह उसका हमेशा का स्वभाव हो जाएगा और हमेशा का स्वभाव फिर जाएगा ही नहीं। यह तो सारी उल्टी समझ घुसा दी है। भगवान ने कहा अलग और लोगों ने समझा अलग। भगवान के कहे हुए शब्दों में से एक अक्षर भी लोग नहीं समझ सकते हैं अभी! कुछ भी छूट नहीं पाता और बेहिसाब चिंता-परेशानियाँ उस पर असर करती ही रहती हैं। 'ज्ञानीपुरुष' जानते हैं कि यह सब क्या है! महावीर भगवान जानते थे, लेकिन कहें किस तरह? स्पष्ट नहीं कहा जा सकता था। थोड़े-से ही लोगों के बीच में मैं स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ, लेकिन पाँच सौ लोगों के बीच ऐसे स्पष्ट रूप से नहीं कह सकता। हम बँधे हुए से कहें कि, 'तू मुक्त ही है', तो क्या दशा होगी बेचारे की? उसके अनुभव में आएगा नहीं, और बल्कि उल्टा करेगा।

इस चिड़िया को शीशे में कुछ करना पड़ता है? शीशे का संयोग मिला कि अंदर दूसरी चिड़िया आ जाती है। आँखों और चोंच सहित, और बाहरवाली चिड़िया जैसा करती है, वैसा ही अंदरवाली चिड़िया करती है। इसी तरह आत्मा भी संयोगों से घिरा हुआ है। जैसे सूर्यनारायण के संयोग से परछाई उत्पन्न होती है, वैसे ही यह तो संयोगों के कारण 'खुद का स्वरूप' उल्टा दिखता है। बाकी, इन सब संयोगों से कोई मुक्त हो चुके हों, वे ही हमें मुक्त करवा सकते हैं, और कोई मुक्त नहीं करवा सकता। जो खुद ही बँधा हुआ है, वह किस तरह से मुक्त करेगा?

आत्मा कहाँ से आया? तो 'रिलेटिव' में मुझे कहना पड़ा कि आत्मा समसरण मार्ग में है। मार्ग में जाते हुए ये तरह-तरह के संयोग मिलते जाते हैं, उन संयोगों के दबाव से ज्ञान विभाविक हो गया। अन्य कुछ आत्मा ने किया ही नहीं। यह तो ज्ञान विभाविक हुआ न, इसीलिए जैसा भाव हुआ, वैसा ही यह देह निर्मित हो गया। इसमें आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ा। फिर जैसी कल्पना करता है वैसा बन जाता है, कल्पना करे वैसा बन जाता है और फिर उलझता रहता है, फिर नियम में आ जाता है, 'व्यवस्थित' के नियम में आ जाता है। फिर 'बेटरी' में से 'बेटरी', 'बेटरी' में से 'बेटरी' ऐसे साइकल (चक्र) चलती रहती है। जब 'ज्ञानीपुरुष' 'बेटरी' छुड़वा देते हैं, तब छुटकारा होता है। ये मन-वचन-काया की तीन बेटरियाँ हटा देते हैं ताकि ऐसी 'बेटरी' चार्ज नहीं हो और पुरानी 'बेटरी' डिस्चार्ज होती रहें!

इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है, अनादि-अनंत

यह तो आत्मा को ऐसे संयोग मिले हैं। जैसे अभी हम यहाँ पर बैठे हैं, और बाहर निकले तो एकदम कोहरा हो तो आप और मैं आमने-सामने होंगे, फिर भी नहीं दिखेंगे। ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, होता है।

दादाश्री : हाँ, वह जो कोहरा छा जाता है, उससे दिखना बंद हो जाता है। ऐसे ही इस आत्मा पर संयोगरूपी कोहरा छाया हुआ है, यानी

कि इतने सारे संयोग खड़े हो जाते हैं। और ये अनंत प्रकार की परतें तो उस कोहरे से भी ज़्यादा हैं। ये इतने अधिक भयंकर आवरण हैं कि उसे भान ही नहीं होने देते। बाकी, आत्मा आया भी नहीं है और गया भी नहीं है। आत्मा खुद ही परमात्मा है! लेकिन भान ही नहीं होने देता, यह भी आश्चर्य है न! और यह 'ज्ञानी' ने देखा है, जो मुक्त हो चुके हैं उन्होंने देख लिया है।

अत: ये सब बुद्धि के प्रश्न हैं। प्रश्न मात्र बुद्धि के हैं और बुद्धि खत्म हो जाए तब यह ज्ञान हो सके ऐसा है। लोग तो कहते हैं, 'इसकी आदि कहाँ से?' अरे, आदि शब्द तू कहाँ से सीख लाया? ये सब विकल्प हैं। 'ज्ञानी' ने इनके विकल्पों का शमन करने के लिए ऐसा कहा है कि, 'अनादि-अनंत हैं!'

प्रश्नकर्ता : 'अनादि-अनंत' का अर्थ समझ में नहीं आया।

दादाश्री : अनादि-अनंत यानी क्या? कोई भी वस्तु गोल होती है न, उसकी शुरूआत का पता नहीं चलता और अंत का भी पता नहीं चलता! इस माला में अंत का पता चल सकता है क्या? शुरूआत का भी पता नहीं चलता न? इसलिए इसे अनादि-अनंत कहा है। लोगों को उनकी भाषा में समझाना पड़ता है न?

बाकी, ऐसा कुछ होता ही नहीं है। अभी भी खुद परमात्मापद में ही है, लेकिन उसे भान नहीं है। इन संयोगों के प्रेशर के कारण भान चला गया है। अभी कोई कलेक्टर हो, लेकिन भान चला गया हो तब हम उनसे पूछें कि, 'आप कौन हो?' तब यदि उसे खुद का भान नहीं होगा तो क्या जवाब देगा? यहाँ जीवित मनुष्य का भान चला जाता है न? उसी तरह इसका भान बिल्कुल ही नहीं रहा। लोगों ने जैसा कहा वैसा असर होता गया, होता गया, और उसी अनुसार मान लिया है सबकुछ।

सनातन की शुरूआत, वह क्या है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा को किसने बनाया?

दादाश्री : उसे किसीने नहीं बनाया। बनाया होता न तो उसका नाश हो जाता। आत्मा निरंतर रहनेवाली वस्तु है, वह सनातन तत्व है। उसकी बिगिनिंग हुई ही नहीं। उसे कोई बनानेवाला है ही नहीं। बनानेवाला होता तब तो बनानेवाले का भी नाश हो जाता और बननेवाले का भी नाश हो जाता।

प्रश्नकर्ता : आत्मा जैसी वस्तु किसलिए उत्पन्न हुई है?

दादाश्री : वह उत्पन्न जैसा कुछ हुआ ही नहीं। इस जगत् में छह तत्व हैं, वे तत्व निरंतर परिवर्तित होते ही रहते हैं और परिवर्तन के कारण ये सभी अवस्थाएँ दिखती हैं। अवस्थाओं को लोग ऐसा समझते हैं कि, 'यह मेरा स्वरूप है।' ये अवस्थाएँ विनाशी हैं और तत्व अविनाशी है। यानी आत्मा को उत्पन्न होने का रहता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : यानी अकेले आत्मा को ही मोक्ष में जाना है, अन्य किसी पर यह लागू नहीं होता?

दादाश्री : आत्मा मोक्ष स्वरूप ही है, लेकिन इस पर ये दूसरे तत्वों का दबाव आ गया है। इन तत्वों में से छूटेगा तो मोक्ष हो जाएगा, और खुद मोक्ष स्वरूप ही है। लेकिन अज्ञान के कारण मानता रहता है कि 'मैं यह हूँ, मैं यह हूँ', और इससे 'रोंग बिलीफ़' में फँसता रहता है, जब कि ज्ञान से छूट सकता है।

व्यवहार राशि की 'ज्यों की त्यों' व्यवस्था

प्रश्नकर्ता : नये-नये आत्मा दुनिया में आते होंगे या जितने हैं उतने ही आत्मा इस दुनिया में हैं?

दादाश्री : आप ऐसा पूछना चाहते हो कि ये मनुष्य बढ़ गए हैं, वे कहाँ से आते होंगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा नहीं। यह तो पहला *आरा* (कालचक्र का एक भाग), दूसरा *आरा* ऐसे सब *आरे* आते हैं, तो उस समय जितने आत्मा थे वे सभी आत्मा अभी भी हैं या फिर उनमें कुछ कम-ज़्यादा होता है?

दादाश्री : एक भी आत्मा बढ़ता या घटता नहीं है। जितने यहाँ से मुक्ति में जाते हैं, उतने आत्मा दूसरी जगह से यहाँ पर आ जाते हैं, इस संसार व्यवहार में आ जाते हैं। व्यवहार यानी जिन जीवों के नामरूप पड़ चुके हैं, वे व्यवहार में आ चुके हैं। यानी यह गुलाब का पौधा है वह, व्यवहार में आया कहा जाएगा। और जिसका अभी तक नामरूप कुछ पड़ा नहीं है, वे व्यवहार में आए ही नहीं हैं। ऐसे अनंत जीव हैं कि जो व्यवहार में नहीं आए हैं, इसलिए उनको तो हिसाब में ही मत लेना। यहाँ से जितने मोक्ष में जाते हैं, उतने वहाँ से यहाँ पर आ ही जाते हैं। यानी इस व्यवहार में जितने जीव हैं, वे उतने के उतने ही रहते हैं। उनमें कुछ भी कम-ज़्यादा नहीं होता है। इसीको संसार कहते हैं, एक भी बढ़ता नहीं और एक भी घटता नहीं। आपको समझ में आया न?

जिनका अभी तक नाम भी नहीं पड़ा है, ऐसे अनंत जीव हैं, उनमें से यहाँ पर आते हैं। यहाँ से जितने जीव मोक्ष में गए कि तुरन्त ही वे वहाँ (अव्यवहार राशि) से यहाँ पर एडमिट हो जाते हैं। यह सब नियमपूर्वक है। अत: यहाँ तो जितने हैं न उतने ही रहते हैं, जब गिनो तब उतने के उतने ही रहते हैं।

व्यवहार यानी कोई भी नाम पड़ा, गुलाब नाम पड़ा, आलू नाम पड़ा, वायुकाय नाम पड़ा, ये सभी व्यवहार में आ गए। लेकिन जिनका नाम नहीं पड़ा है, वे अभी तक व्यवहार में नहीं आए हैं!

प्रश्नकर्ता : वे जीव कहाँ पर हैं?

दादाश्री : वे दूसरी जगहों पर हैं। यह बात बहुत समझने जैसी है, बहुत गहरी बात है। लेकिन हम इतनी अधिक गहराई में नहीं जाएँगे, नहीं तो आत्मा चूक जाएँगे। यह सब ज्ञानीपुरुष का काम है! आपको तो इतना समझ लेना है कि यह हक़ीक़त क्या है। वापस यदि इस सूक्ष्म को याद रखने जाएँगे तो मूल जो करना है, वह रह जाएगा। आप अपने आप ही समझ लेना न, और आपको खुद को ही यह सब दिखेगा। हम जो दिखा रहे हैं उस तरह से चलते रहोगे तो आप भी उस स्टेशन पर आ पहुँचोगे,

केन्टीन दिखेगी, सबकुछ दिखेगा। इसलिए अभी से ही इतनी पूछताछ मत करना। अभी यहाँ पर भरूच आया हो और आप कहो कि, 'दादा, मुंबई में मरीनड्राइव कैसा लगता है?' तब मैं कहूँगा कि, 'भाई, मुंबई आने दो न, वहीं जाकर देख लेना न!' यह तो ऐसा होता है कि सूरत स्टेशन पर वह घारी (एक मिठाई) मिली हो, तो उसमें ध्यान नहीं रहता और मरीन-ड्राइव याद आता रहता है। इसीलिए हम कहते हैं न, कि अभी आराम से खाते-पीते जाओ, मुंबई जाओगे तो मरीन-ड्राइव आपको दिखेगा, अगर अभी नहीं दिखे तो उसका बोझा रखने जैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्माओं की संख्या में कमी-बढ़ौतरी नहीं होती इसका ऐसा अर्थ हुआ?

दादाश्री : कम-ज़्यादा होता ही नहीं, जो है वही है! उसमें कम भी नहीं होता और बढ़ता भी नहीं है। इस जगत् में सिर्फ आत्मा ही नहीं, लेकिन अनात्मा का भी एक भी परमाणु कम-ज़्यादा नहीं होता। इतनी सारी लड़ाइयाँ होती हैं, झगड़े होते हैं, इतने सारे लोग मर जाते हैं, फिर भी एक भी परमाणु कम नहीं होता और एक भी परमाणु बढ़ता नहीं है, आत्मा की संख्या में कमी-बढ़ौतरी नहीं होती। जैसा है वैसा जगत् है, इसमें परिवर्तन हो सके, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह सारा कारोबार जो शक्ति चलाती है, उस शक्ति को किस स्वरूप में पहचानें?

दादाश्री : यह सब जो चलाती है, वह शक्ति तो, ऐसा है न, कि अपने को यदि पाँच लोग परेशान कर रहे हों तो हम किसका नाम देंगे कि यह मुझे परेशान कर रहा है?

प्रश्नकर्ता : पाँचों का?

दादाश्री : हाँ, उसी तरह यहाँ पर भी किसी एक का नाम दे सकें, ऐसा नहीं है। इस प्रकार ये सब मिलकर करते हैं। यह तो सारा 'साइन्टिफिक सरकमस्टेनिश्यल एविडेन्स' है। यानी सभी मिलकर करते हैं, इसमें किसका नाम दें? एक का भी नाम दे सकते हैं? और है यह

सबकुछ अनिवार्य। यह संसारमार्ग है और आत्मा संसारमार्ग में से गुज़र रहा है, उसका असर है। और कुछ है नहीं, इफेक्ट ही है सिर्फ।

अतः आत्मा बढ़ता भी नहीं है और घटता भी नहीं है। *पुद्गल* भी न तो बढ़ता है, न ही घटता है। ये जड़ परमाणु हैं न, वे भी घटते नहीं हैं और बढ़ते भी नहीं हैं। यहाँ पर भले ही कितने ही लोगों को जला डालें, काट डालें, फिर भी एक भी परमाणु बढ़ता-घटता नहीं है, सबकुछ वैसे का वैसा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर नये किस तरह उत्पन्न होते हैं? मनुष्यों की आबादी बढ़ी है न?

दादाश्री : इन जानवरों में से जो कम हुए हैं, वे सभी यहाँ मनुष्य में आ गए हैं। लेकिन वे वापस रिर्टन टिकट लेकर आए हुए हैं। जहाँ से निकले वहाँ की रिर्टन टिकट लेकर आए हैं। लेकिन यहाँ आकर काम क्या करोगे? तब कहते हैं, 'हम तो लोगों का सबकुछ भोग लेंगे, *अणहक्क* का भोग लेंगे और मकान बना देंगे, रोड बना देंगे, पुल बना देंगे, और मेहनत करके मर जाएँगे।' यानी कि जहाँ पर थे वहीं के वहीं वापस जानेवाले हैं। ये जो मिलावट करते हैं न, वे वहाँ पर जाने के लिए मार्क्स इकट्ठे कर रहे हैं, उतने मार्क्स मिल जाएँगे तो वापस वहाँ पर चले जाएँगे।

सृष्टि के सर्जन-समापन की समस्या

प्रश्नकर्ता : भगवान इस जीवरूपी जगत् को कब समेट लेंगे? और उस समय की स्थिति कैसी होगी?

दादाश्री : भगवान में इस जगत् को समेटने की शक्ति ही नहीं है। बल्कि भगवान ही इस जगत् में फँसे हुए हैं, वे मुक्त होने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। 'ज्ञानीपुरुष' फिर रास्ता दिखाते हैं, तब बाहर निकल जाते हैं। जगत् को समेटने की शक्ति किसी में है ही नहीं इस जगत् में।

यानी यह जगत् भगवान ने नहीं बनाया है। इस जगत् में भगवान (आत्मा) ही ऐसी एक वस्तु नहीं है, ये तो 'ओन्ली साइन्टिफिक

सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है। और 'दी वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ।' 'इटसेल्फ पज़ल' हो चुका है यह। यह पज़ल किस तरह से हो गया है, वह हम देखकर बता रहे हैं, ये तत्व जब मिलते हैं तब उनमें से दो तत्वों के कारण यह 'जो' उत्पन्न हुआ है, 'उसका' ज्ञान से नाश हो जाता है। अज्ञान के कारण उत्पन्न हुआ है, अज्ञान यानी विशेषभाव, यानी विशेषभाव के कारण उत्पन्न हुआ है। ज्ञान से वह खत्म हो जाता है।

यह जगत् किसीने बनाया नहीं है। बनानेवाला कोई है ही नहीं। यहाँ पर ये सब घर, वगैरह कौन बनाता है? क्या पटेल बनाते हैं? पटेल तो पैसे दे सकते हैं। फिर सुथार, कारीगर, लुहार, ये सभी लोग घर बनाते हैं। उसी तरह भगवान क्या लुहार या कारीगर है? वे तो भगवान हैं। उनकी हाज़िरी से सबकुछ चलता रहता है। जैसे उस पटेल की हाज़िरी से पूरा मकान बनता रहता है, उसी तरह भगवान की उपस्थिति से यह पूरा जगत् चलता रहता है और कुछ भी करना नहीं पड़ता।

इन परमाणुओं में इतने सारे गुण हैं न, यह जो *पुद्गल* है, यह यानी जड़ वस्तुओं में, अनात्म विभाग में इतना सारे गुण हैं, कि ये आँखें वगैरह अपने आप ही बन जाते हैं। किसीको कुछ करना नहीं पड़ता। इन गायों की, भैंसों की, बकरी की आँखें कितनी तेजवाली होती है? बंदर की आँखें कैसी होती है? यह सब अपने आप ही हो जाता है, प्रकृति अपने आप ही बन जाती है।

वह विज्ञान क्या है, वह हमने, ज्ञानीपुरुष ने खुद देखा हुआ है। खुद उसे जानते हैं, लेकिन उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। शब्दों से इसका वर्णन हो नहीं सकता। और शास्त्रों में भी पूरा स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। बाकी मूल स्पष्टीकरण अलग ही है इसका।

अतः जगत् हमेशा इसी तरह रहेगा। इसे 'साइन्टिफिक' प्रकार से समझना हो तो मेरे पास आना। बाकी आपकी बुद्धि से यह जगत् नापा जा सके, ऐसा है ही नहीं, क्योंकि इस जगत् में से जीव मोक्ष में भी जाते हैं, और फिर भी जगत् ऐसे का ऐसा ही रहेगा। यह अजूबा यदि पूरी तरह

से समझना हो तो यहाँ मेरे पास आना। इस जगत् को समेटनेवाला कोई है ही नहीं।

यह दुनिया भगवान ने नहीं बनाई है। ये फॉरिन के साइन्टिस्ट मुझसे पूछ रहे थे कि, 'गॉड इज़ क्रियेटर। हमारे क्राइस्ट ने कहा है, तो आप क्यों नकार रहे हैं?' तब मैं कहता हूँ, 'गॉड इज़ क्रियेटर इज़ करेक्ट बाइ क्रिश्चियन व्यू पोइन्ट, बाइ इन्डियन व्यू पोइन्ट, बाइ मुस्लिम व्यू पोइन्ट, नॉट बाइ फेक्ट।'

परमात्मा ने दुनिया बनाई ही नहीं है। यह दुनिया इटसेल्फ बनी है और इटसेल्फ पज़ल हो गया है यह और यह विज्ञान से पज़ल हुआ है। ये छह तत्व हैं, इनमें से दो तत्वों के साथ में रहने से, उनमें से विशेषभाव उत्पन्न होता है। दो तत्वों के साथ में रहने के कारण खुद, खुद के गुणधर्मों को छोड़ता नहीं है और विशेष गुणधर्म उत्पन्न हो जाते हैं। इसे लोगों ने व्यतिरेक गुण कहा है। तो ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये आत्मा के गुण नहीं हैं, उसी तरह ये अनात्मा के भी गुण नहीं है। ये व्यतिरेक गुण हैं। यानी कि ये विशेष गुण उत्पन्न हुए हैं, और उससे यह जगत् उत्पन्न हो गया है, बस, और कोई भी बनानेवाला नहीं है इस दुनिया का!

ये लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि भगवान की इच्छा हुई, इस दुनिया की रचना करने की! लेकिन जिसे इच्छा होती है न, उसे भिखारी कहते हैं। भगवान किसी भी प्रकार की इच्छावाले नहीं हैं। जहाँ पर परितृप्ति है, परमानंद है, वहाँ पर इच्छा कहाँ से होगी? यानी भगवान को इच्छा उत्पन्न ही नहीं होती, लेकिन यह तो लोगों ने घुसा दिया है कि भगवान को इच्छा हुई और यह दुनिया रची, ऐसा-वैसा कुछ है नहीं। यह तो पूरा विज्ञान है। और विज्ञान से उत्पन्न हुआ है। यह पूरा जगत् विज्ञान ही है।

यह रचना, खुद ही विज्ञान

प्रश्नकर्ता : इस जगत् की उत्पत्ति क्रियाशक्ति से नहीं, इच्छाशक्ति से है?

दादाश्री : नहीं, इच्छाशक्ति भी नहीं है। इच्छावाला तो भिखारी

कहलाता है। भगवान को यदि इच्छा होती न, तो भगवान को भिखारी कहते।

प्रश्नकर्ता : जो कोई पूर्णब्रह्म है, सिर्फ उसकी इच्छाशक्ति से ही। उसने खुद ने कुछ भी नहीं किया?

दादाश्री : नहीं, इच्छाशक्ति भी नहीं है। इच्छाशक्ति होती तो भिखारी कहलाता। निरीच्छक है भगवान तो। सिर्फ विज्ञान से ही उद्‌भव हुआ है यह।

प्रश्नकर्ता : उस विशेषभाव को ही इच्छाशक्ति कहा है?

दादाश्री : नहीं, विशेषभाव और इच्छाशक्ति में बहुत फ़र्क़ है। विशेषभाव यानी दो चीज़ों के एक साथ रखने से, जैसे सूर्य और समुद्र दो आमने-सामने आ जाएँ, तब भाप बनती है। सूर्य की ऐसी इच्छा नहीं है, समुद्र की भी इच्छा नहीं है, यानी इसी तरह से व्यतिरेक गुण उत्पन्न होकर, उसमें क्रोध-मान-माया-लोभ व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो गए। इन्हें विशेषगुण कहा जाता है और उससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है।

रूपी तत्वों के रूप दिखें जग में

ये सब छह परमानेन्ट वस्तुएँ हैं। ये जो पाँच तत्व हैं-पृथ्वी, तेज, वायु, पानी, आकाश। इनमें से सिर्फ आकाश तत्व अकेला ही परमानेन्ट है, बाकी के चार तत्व तो विनाशी तत्व हैं। जो पृथ्वी, तेज, वायु, पानी ये विनाशी चीज़ें हैं, वे चेन्ज हो जाते हैं। आकाश विनाशी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : इन सबकी उत्पत्ति आकाश में से ही हुई है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। आकाश में से कोई उत्पत्ति हुई नहीं है इस वर्ल्ड में। इसमें जो परमाणु तत्व (जड़ तत्व) है, जिन्हें अणु कहते हैं उसमें से, उन परमाणुओं में से यह सब उत्पन्न हुआ है। सिर्फ परमाणु (जड़) ही रूपी तत्व हैं। उसी रूपी में से यह सब उत्पन्न हुआ है।

यानी कि परमाणु निरंतर पूरे जगत् में होते ही हैं, और यदि किसी

जगह पर अधिक इकट्ठे हो जाएँ, तब अणु कहलाते हैं। तो इन परमाणुओं को तो देखा नहीं जा सकता, किसी भी प्रकार से! केवळ ज्ञानी ही इसे देख सकते हैं, और कोई नहीं देख सकता!

ऐसा है न, परमाणु रूपी हैं और आकाश अरूपी है। और ये जो चार तत्व हैं न, पृथ्वी-तेज-वायु-जल, ये सब रूपी हैं (जड़ तत्व की अवस्थाएँ हैं)। यानी रूप में से रूप उत्पन्न हुए हैं।

जब देखोगे, तब ऐसे का ऐसा ही...

प्रश्नकर्ता : साकार जगत् निराकार में से बन सकता है क्या?

दादाश्री : निराकार में से साकार जगत् बना ही नहीं है। साकार वस्तु अलग ही हैं। इस साकार शब्द का उपयोग आप जिस तरह से करते हो, साकार वैसा नहीं है। ये तो सब पर्याय हैं। और पर्याय सभी विनाशी हैं, उत्पत्ति होती है और विनाश होता है। फिर वापस उत्पन्न होते हैं और विनाश होता है। और शाश्वत चीज़ें शाश्वत ही रहती हैं। कोई शाश्वत चीज़ उत्पन्न नहीं होती, और उसका विनाश भी नहीं होता। यानी शाश्वत चीज़ें शाश्वत रहती हैं और उनमें से उत्पन्न होनेवाले पर्यायों का तो विनाश होता रहता है, उत्पन्न होते रहते हैं और विनाश होता रहता है। जो जन्म लेता है, वह मरता है। उससे आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। इस प्रकार यह जगत् अलग ही तरह से चलता है, इसलिए घबराने जैसा नहीं है कि यह दुनिया एक दिन टूट पड़ेगी। ऐसा-वैसा कोई कारण नहीं है। एक्ज़ेक्ट ऐसे का ऐसा ही रहेगा। सूर्य, चंद्र, तारे जब भी देखोगे, जब भी जन्म लोगे तब ऐसे के ऐसे ही दिखेंगे!

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग 'यह भगवान की इच्छा थी' ऐसा अर्थघटन करते हैं। लेकिन वास्तव में तो ऐसा है कि खुद अद्वैतभाव में थे इसलिए एकांतिक लगता था, अतः संकल्प करके द्वैतभाव में आए और उससे सृष्टि का सर्जन हो गया।

दादाश्री : यदि संकल्प करे तो वह भगवान ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, संकल्प नहीं। लेकिन वह पूरा द्वैतभाव प्रकट हो गया।

दादाश्री : नहीं, भगवान में द्वैतभाव नहीं होता और भगवान में अद्वैतभाव भी नहीं होता। द्वैत और अद्वैत, वह तो द्वंद्व है और भगवान द्वंद्वातीत हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह द्वंद्व है, तभी सृष्टि का सर्जन है न?

दादाश्री : हाँ, यह द्वंद्व ही सृष्टि है। सृष्टि का मतलब ही द्वंद्व और द्वंद्वातीत हो गया तो काम पूरा हो गया।

अनादिसांत से सादिअनंत की ओर

ऐसा है न 'इस जगत् की आदि' जैसी चीज़ है नहीं और अंत जैसी भी चीज़ नहीं है। लोग बुद्धि से 'इसकी आदि कब?' ऐसा पूछते रहते हैं। क्योंकि खुद की आदि हुई है ऐसा मानता है, इसलिए इस जगत् की भी आदि होनी चाहिए, ऐसा पूछता है।

'इस जगत् की आदि' जैसा शब्द है नहीं और अंत जैसा भी शब्द नहीं है। यह संसारप्रवाह अनादि से है, लेकिन अंतवाला है। तब कोई पूछे, 'किस अपेक्षा से अंतवाला है?' तब कहेंगे, ''इस संसारप्रवाह में जीव भ्रांति में बहते रहते हैं, लेकिन उसे यदि 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तो उसकी भ्रांति का वहाँ पर अंत आ जाता है।'' यानी कि अनादि से जो भ्रांति चली आई है, उसका अंत आ जाता है और सम्यक्त्व का उदय होता है। स-आदि, का मतलब सादि होता है, 'वह सम्यक्त्व कब तक रहेगा?' तब कहते हैं, जब तक उसे केवळज्ञान नहीं हो जाए तब तक उसका अंत नहीं होगा। यह सादि सांत कहलाता है, स-आदि और स-अंत! और वहाँ पर मोक्ष में फिर से स-आदि हुई, और अनंतकाल तक रहेगा। इसलिए उसे सादि-अनंत कहा है। यानी पहले अनादि-सांतवाला भाग, फिर सादि-सांतवाला भाग, फिर सादि-अनंतवाला भाग!

अर्थात् इस जगत् में आदि जैसी कोई वस्तु है ही नहीं, अंत जैसी

भी वस्तु है ही नहीं। यानी उसकी कल्पनाएँ करने का अंत ही नहीं आएगा, ऐसा है!!

जगत्-स्वरूप, अवस्थाओं का रूपांतर

प्रश्नकर्ता : फिर भी जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय, इसमें नैमित्तिक कारण क्या होंगे?

दादाश्री : लेकिन उत्पत्ति आप किसे कहते हो?

प्रश्नकर्ता : यों तो हम सब जानते हैं कि यह जो *पुद्गल* का रूपांतर है, उसीसे यह जगत् है। लेकिन जब यह जगत् उत्पन्न हुआ था, वह जो उत्पत्ति है, बाद में जो स्थिति रहती है और फिर उसका लय होता है, उसमें नैमित्तिक कारण क्या है?

दादाश्री : लेकिन आपने कहाँ जगत् को उत्पन्न होते हुए देखा है?

प्रश्नकर्ता : देखा नहीं है, फिर भी रूपांतर होता रहता है न!

दादाश्री : रूपांतर का अर्थ ही यह है कि उत्पन्न होना, स्थिर होना और लय होना, उसीका नाम रूपांतर! यानी यह जगत् वस्तु के रूप में उत्पन्न ही नहीं होता और लय भी नहीं होता और कुछ भी नहीं होता। मात्र वस्तुओं (छः तत्वों) की अवस्था का ही रूपांतर है!

प्रश्नकर्ता : उसमें आत्मा की शक्ति नैमित्तिक कारण है या नहीं?

दादाश्री : कुछ भी लेना-देना नहीं है। इससे आत्मा को क्या लेना-देना? ये दवाईवाले नहीं लिखते हैं कि भाई, यह दवाई १९७७ में एकदम 'सील' की हुई है, फिर भी १९७९ में फेंक देना। किसलिए कहा?

प्रश्नकर्ता : उसका तत्व खत्म हो जाता है इसलिए।

दादाश्री : उसमें आत्मा की क्या ज़रूरत पड़ी? ऐसा है यह सब। काल है, वह हर एक वस्तु को खा जाता है। काल हर एक वस्तु को पुरानी कर देता है और फिर हर एक को नई भी करता है।

रूपांतर में सबकुछ आ गया। रूपांतर का मतलब क्या? कि उत्पन्न होना और थोड़ी देर टिकना और नाश हो जाना।

प्रश्नकर्ता : एक चीज़ का अभी तक ख़याल नहीं आया। जगत् की उत्पत्ति को अनादि काल से कहा है, परन्तु उत्पत्ति का कोई कारण तो होना चाहिए न?

दादाश्री : उसका मूल कारण यह पज़ल है।

प्रश्नकर्ता : इस पज़ल को सोल्व करने के लिए कोई शक्ति होगी न?

दादाश्री : नहीं, इसमें किसी शक्ति की ज़रूरत नहीं है। यह तो, अगर विज्ञान को जान लें तो पज़ल 'सोल्व' हो जाएगी।

यह जगत् छह तत्वों से बना हुआ है। तत्व अर्थात् अविनाशी और वे तत्व खुद के स्वभाव में ही रहते हैं। परन्तु तत्व आमने-सामने समसरण होते हैं, इसलिए ये सब तरह-तरह के दिखाव दिखते हैं!

प्रश्नकर्ता : ये छह तत्व कौन-कौन से हैं?

दादाश्री : एक चेतन तत्व हैं, दूसरा जड़ और रूपी तत्व हैं। चेतन अरूपी हैं। तीसरा यह जड़ और चेतन को गति करवानेवाला तत्व है, उसका नाम गतिसहायक तत्व है। और यदि अकेला गतिसहायक तत्व होता तो सभीकुछ गति ही करता रहता। इसलिए फिर जड़ और चेतन को स्थिर करने के लिए स्थितिसहायक तत्व है। ये चार तत्व हुए और पाँचवा आकाश और छठ्ठा काल तत्व! इन छह तत्वों से जगत् उत्पन्न हुआ है। ये छह के छह तत्व शाश्वत हैं।

कुदरत की अगम्य प्लानिंग

यह जगत् स्वभाव से चल रहा है। हर एक वस्तु अपने स्वभाव में ही है और स्वभाव से बाहर कुछ भी नहीं गया है। सिर्फ यह जो व्यवहार है, यह पूरा ही समसरण मार्ग है, और इस समसरण मार्ग में ये जीव आए

हुए हैं। इसके तीन भाग किए हैं। एक यह अव्यवहार-राशि, दूसरी व्यवहार-राशि और तीसरा सिद्धक्षेत्र!

अव्यवहार राशि के जीव अनंत हैं और जो व्यवहार में आए हैं, वे जीव भी अनंत हैं, लेकिन व्यवहार में इन मनुष्यों को गिनना हो तो गिने जा सकते हैं, ऐसा है। और जो व्यवहार में से मुक्त हो गए हैं, सिद्धगतिवाले हैं, वे भी अनंत जीव हैं!

अव्यवहार राशि के जीव यहाँ पर व्यवहार में आते हैं। ऐसा मानो न, पचास हज़ार जीव मोक्ष में गए तो दूसरे पचास हज़ार अव्यवहार राशि में से आकर व्यवहार राशि में प्रवेश करते हैं, जिससे यह व्यवहार वैसे का वैसा ही रहता है।

व्यवहार किसे कहते हैं? कि जो जीव समसरण मार्ग में से होते हुए आए हैं और जिनके नाम पड़ चुके हैं, यानी जिनका नामरूप उत्पन्न हो जाए, तभी से ऐसा कहा जाएगा कि ये व्यवहार में आ गए कि 'भाई, यह तो प्याज़ है, यह तो गुलाब है, यह चावल का दाना, यह काई है।' ठेठ मोक्ष में जाने तक अवस्थाएँ निरंतर बदलती ही रहती हैं और डेवलपमेन्ट चलता ही रहता है। एकेन्द्रिय में से धीरे-धीरे, फिर आगे उसका डेवलपमेन्ट होते-होते ठेठ पंचेन्द्रिय तक का डेवलपमेन्ट होता है। पंचेन्द्रिय में आने के बाद फिर फॉरिन का मनुष्य बनता है। और वापस मनुष्य में डेवलप होते-होते-होते-होते हिन्दुस्तान में आता है। हिन्दुस्तान में जन्मे सभी जीव अध्यात्म में बहुत ही उच्च कक्षा के डेवलपमेन्टवाले हैं, और वे ही सभी मोक्ष के अधिकारी हैं। फॉरिनवाले अभी तक 'डेवलप' हो रहे हैं! जो फुल डेवलप हो जाता है, तब वह यहाँ से मोक्ष में जाता है!

व्यवहार में से जितने जीव वहाँ मोक्ष में जाते हैं, सिद्धक्षेत्र में जाते हैं, उतने जीव अव्यवहार में से व्यवहार में आते हैं, यानी कि व्यवहार किसे कहते हैं कि व्यवहार में जितने जीव हैं, उनमें से एक भी जीव कभी भी कम नहीं होता और न ही बढ़ता है, उसीका नाम व्यवहार! व्यवहार में एक भी जीव कम-ज़्यादा हो जाए न, तो पूरी व्यवस्था ही टूट जाए!

प्रश्नकर्ता : या तो एक जीव कम हो जाए, या फिर एक जीव बढ़ जाए, तो क्या होगा?

दादाश्री : कुदरत का पूरा प्लानिंग ही टूट जाएगा! यह सूर्य आज ग़ैरहाज़िर हो गया हो तो कल चंद्र ग़ैरहाज़िर हो जाएगा, या फिर कितने ही तारे भी नहीं होंगे, फिर किसी दिन कोई ग्रह नहीं होगा। क्योंकि कहेंगे, 'वे तो मोक्ष में गए', तो यहाँ पर घोर अँधेरा छा जाएगा! यानी एक जीव भी कम-ज़्यादा हो जाए तो पूरा प्लानिंग ही टूट जाएगा, लेकिन यह तो पूरा डिज़ाइन, सबकुछ एक्ज़ेक्ट रहनेवाला है।

सूर्य-चंद्र-तारे अभी तो अरबों वर्ष बाद भी ऐसे के ऐसे ही दिखेंगे। वही का वही शनि ग्रह और वही का वही शुक्र ग्रह, लेकिन अंदर से जीव बदलते रहते हैं। सिर्फ पैकिंग वही की वही रहती है, बिंब वही रहते हैं, और अंदरवाला जीव च्यवित होकर दूसरी जगह पर जाता है। सूर्यनारायण का भी च्यवन होता है और दूसरे जीवों का भी च्यवन होता है। लेकिन वे जब च्यवन होकर जाते हैं, उसी घड़ी दूसरा जीव वहाँ पर उनकी जगह पर आ जाता है। इसीका नाम 'व्यवस्थित'! यह कैसी सुंदर व्यवस्था है!! तीन बजकर तीन मिनट पर वह जीव वहाँ पर आ जाता है, उसी घड़ी पहलेवाले जीव का निकलना होता है। हाँ, नहीं तो हमें पता चल जाएगा कि ऐसा 'अँधेरा' क्यों हो गया? लेकिन ऐसा कुछ होता नहीं है। यानी एक भी जीव कम-ज़्यादा नहीं होता और सभी जीव अपनी-अपनी सर्विस में ही रहेंगे!

जितने जीव यहाँ से मोक्ष में जाते हैं, उतने ही जीव अव्यवहार राशि में से व्यवहार में आ जाते हैं। तो उससे व्यवहार में कमी या बढ़ोतरी नहीं होती, व्यवहार उतना और वैसा ही रहता है। इसलिए किसीको चिंता नहीं करनी चाहिए कि शायद कभी इस तरह के फल खत्म हो जाएँगे तो क्या करेंगे? ये कुछ तरह के फल वगैरह खत्म हो जाते हैं तो दूसरी तरह के उत्पन्न हो जाते हैं, लेकिन यह व्यवहार तो ठेठ तक रहेगा ही।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि आत्मा निगोद में से आते हैं। पहले सभी आत्मा निगोद में होते हैं, तो निगोद का मतलब क्या है?

दादाश्री : निगोद अर्थात् एक देह में कितने ही सारे जीव होते हैं। जैसे एक आलू में बहुत सारे जीव होते हैं न? उसी तरह निगोद में बहुत सारे जीव होते हैं। उन जीवों को नाम नहीं दिया गया होता है। इस आलू को तो नाम दिया हुआ है।

प्रश्नकर्ता : तो शुरूआत, नाम देते हैं वहाँ से होती है?

दादाश्री : नहीं। शुरूआत तो उससे भी पहले से है। जो जीव अभी तक व्यवहार में नहीं आए हैं, उन्हें अव्यवहार राशि कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : निगोदवाला जो आत्मा होता है, उसका प्रदेश कहाँ है?

दादाश्री : यही भूमि! आकाश में सब जगह पड़ा हुआ है। पूरा लोकाकाश निगोद से भरा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अव्यवहार राशि में भी जीवों की उत्पत्ति तो है न?

दादाश्री : नहीं। वहाँ उत्पत्ति नहीं होती। वहाँ तो अनंत जीव हैं। यानी अनंत में से चाहे कितना भी कम हो, फिर भी उसका अनंतपना जाता नहीं है। यह बुद्धि से नापने जैसा नहीं है, वहाँ बुद्धि पहुँच ही नहीं सकती। अनंत में से कम होता ही नहीं। अनंत में से चाहे कितना भी निकाल लो, फिर भी अनंत ही रहता है, उसीको अनंत कहते हैं। यानी वहाँ पर कोई कमी हो जाएगी, ऐसा नहीं है। और वहाँ सिद्धगति में भी अनंत हैं, कि वहाँ पर भले ही कितने ही बढ़ जाएँ, फिर भी अनंत के अनंत ही रहते हैं।

ब्रह्मांड में सिर्फ मनुष्य ही संख्यात हैं, अन्य सारी आबादी असंख्यात है। संख्यात अर्थात् कम-ज़्यादा होनेवाली, घटती-बढ़ती है, और इस घटने-बढ़ने के भी नियम हैं वापस। यह जो कम-ज़्यादा होता है न, तो वह इसकी 'नोर्मेलिटी' है। कई बार जब बढ़ जाता है, तब इतनी हद तक आबादी बढ़ती है और वापस घटती है तब इतनी हद तक आबादी घटती है, ऐसी 'नोर्मेलिटी' है।

अब जब कम होने की शुरूआत होगी न, तो पहले अनंत भाग कम

होगा, फिर असंख्यात भाग कम होगा, फिर संख्यात भाग कम होगा, फिर संख्यात गुण कम हो जाएँगे। फिर असंख्यात गुण कम हो जाएँगे और फिर अनंत गुण कम हो जाएँगे, और फिर वापस वर्धमान होंगे। यानी कम होने के बाद में फिर से वर्धमान होंगे और वर्धमान होने के बाद र्‌हीयमान होंगे।

प्रश्नकर्ता : संख्यात और असंख्यात का मतलब क्या है?

दादाश्री : संख्यात अर्थात् जो गिना जा सके, ऐसा हो। मनुष्य की आबादी संख्यात है और तिर्यंच की आबादी असंख्यात है। असंख्यात अर्थात् जो गिने नहीं जा सकें, संख्याएँ भी पूरी नहीं पड़ें। ये अरब से आगे की संख्याएँ हैं न, वे सब भी बोल दें, फिर भी वह पूरा नहीं होगा, उसे असंख्यात कहा है, संख्या पूरी हो जाए तब भी वह पूरा नहीं होगा। सिर्फ ये मनुष्य ही संख्यात हैं, चार अरब या पाँच अरब गिनकर कह सकते हैं। बाकी तिर्यंच असंख्यात हैं, देवी–देवता भी असंख्यात हैं। नर्कगति के जीव असंख्यात हैं और मनुष्य के अलावा व्यवहार के बाकी सभी जीव असंख्यात हैं। अव्यवहार राशि के जीव अनंत हैं और वहाँ पर सिद्धगति में भी अनंत सिद्ध हैं। अनंत अर्थात् असंख्यात से भी आगे, पार ही नहीं आता, अंत ही नहीं आता, इसलिए उसे गिनने का प्रयत्न ही मत करना। संख्यात को गिनने का प्रयत्न कर सकते हैं, और असंख्यात की संख्या ही नहीं है तो क्या हो सकता है? करोड़, दस करोड़ अरब, ऐसे आगे कितना ही बोलते रहें, फिर भी हिसाब पूरा नहीं होगा, इसलिए उसे असंख्यात में रख दिया है, कि यह संख्या में नहीं समा सकता!

यह वर्ल्ड इटसेल्फ पज़ल हो गया है। इसका कारण क्या है कि ये जीव निरंतर प्रवाह में ही बहते रहते हैं, अनादि प्रवाह के रूप में ये जीव बहते ही रहते हैं। जैसे नर्मदाजी नदी ऐसे बह रही होती हैं न, उसी तरह ये जीव निरंतर बहते ही रहते हैं। निरंतर द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव बदलते ही रहते हैं! क्षेत्र भी बदलता रहता है!! यानी कि पिछले जन्म में यदि दसवें मील पर होंगे तो अभी इस जन्म में ग्यारहवें मील पर आते हैं। अब, दसवें मील पर अच्छे–अच्छे बाग़, अच्छे लोग, ये सब देखा होता है और फिर ग्यारहवें मील पर रेगिस्तान आता है, तब मन में ऐसा होता है कि

ऐसे में तो रहा जाता होगा? दसवें मील का देखा हुआ सब दिखता है, तब फिर इन दोनों में मतभेद पड़ता रहता है। 'यह खराब है, यह खराब है' ऐसा होता रहता है। आज का यह ज्ञान उसे परेशान करता है अंदर। उसी के कारण यह कलह उत्पन्न हुई है न, सारी। जब तक 'आत्मज्ञान' नहीं हो जाता, तब तक यह कलह हमेशा के लिए चलती ही रहेगी।

यानी यह जगत तो ऐसे का ऐसा ही रहेगा, हमेशा के लिए ऐसा ही रहेगा। उसमें से नियम से मोक्ष में जाते रहेंगे!

...अंत में तो ज्ञानी की संज्ञा से ही हल

प्रश्नकर्ता : जो जीव व्यवहार राशि में आया, वह फिर मोक्ष में जाएगा ही? तो उसका समय भी तय ही होगा न कि इस समय पर जन्म लेगा और फिर मोक्ष में जाएगा? मोक्ष में जाने की समय मर्यादा तय होगी?

दादाश्री : जब से जीव व्यवहार राशि में आता है न, तभी से मोक्ष में जाने की तैयारी हो गई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसका समय तय होगा न?

दादाश्री : समय तय ज़रूर है, लेकिन मनुष्य में आने के बाद यदि अहंकार नहीं करे तो समय तय है। अहंकार करे तो वहाँ से वापस गिरता है, फिर ठिकाना नहीं। अहंकार में उल्टा चला, तो फिर ठिकाना नहीं है, कितने ही जन्मों तक भटकता है फिर तो! इसलिए यदि अहंकार नहीं करे तो समय निश्चित है। इन जानवरों की तरह रहे न, जिस तरह जानवर रहते हैं उस तरह से सबके साथ रहे न, मान-तान, अहंकार का झंझट नहीं, लोभ का झंझट नहीं, तो सीधे मोक्ष में चला जाएगा। लेकिन ये लोग जानवर की तरह रहते नहीं हैं न!

प्रश्नकर्ता : मनुष्य में आने के बाद जानवर की तरह किस तरह से रह पाएँगे?

दादाश्री : मेरा कहना यह है कि ये जानवर जिस तरह से रहते हैं न, जीव उस तरह से जीए तो मोक्ष में चला जाए। लेकिन इन दूसरे लोगों

का देखकर, वह भी वैसा ही बन जाता है। 'इसने ऐसा किया और मैं ऐसा हूँ' फिर ऐसे करते-करते सब बिगड़ जाता है! फिर यदि उसे अच्छा सत्संग मिल जाए और 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तब छुटकारा होता है, नहीं तो छुटकारा नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानीपुरुष' किसी निश्चित समय पर ही मिलेंगे, ऐसा निश्चित है?

दादाश्री : नहीं, वह निश्चित नहीं है। वह तो जिसे जो संयोग मिला! वह तो किसीको ऐसा धक्का लगा और वह अहंकारी बना! अहंकारी बना इसका मतलब निराश्रित हुआ। इन मनुष्यों के अलावा दूसरे सभी जीव भगवान के आश्रित हैं, लेकिन सिर्फ ये मनुष्य ही निराश्रित हैं!

उसका ऐसा सब अहंकार है, कि 'मैं यह कर लूँ और मैं वह कर लूँ'! फिर तरह-तरह की इच्छाओं के ढेर हैं कि 'यह कर लेना है न'! अब ये मनुष्य निराश्रित हैं, और उसमें 'मैं कर लूँ' कहता है। तब भगवान कहते हैं, 'ठीक है, तू कर ले!' तब फिर भगवान अलग हो गए!!

आप क्या कहते हो डॉक्टरसाहब? आप कहते हो कि 'यह इलाज मैं कर रहा हूँ, मैंने इसे ऐसे ठीक कर दिया और वैसा किया' तो भगवान अलग हो जाएँगे न?

यानी यह सारा लोकसंज्ञा का ही झंझट है। लोगों ने जैसा देखा वैसा सीखे, और जैसा लोग सीखे, वैसा हमने सीखा। इस लोकसंज्ञा से कभी भी मोक्ष में नहीं जाया जा सकता। लोकसंज्ञा, आपको समझ में आती है? लोगों ने जिसमें सुख माना है, लोगों की इस संज्ञा से जो चलेगा, वह कभी भी मोक्ष में नहीं जा पाएगा। 'ज्ञानी' की संज्ञा से चलेगा तो हल आएगा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन जन्म लिया तब से लोकसंज्ञा के अलावा और कुछ मिलता ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन क्या हो फिर? लोगों के बीच रहता है, तो ऐसा ही होगा न!

बाकी, यदि साहजिक हो न, तो सीधे-सीधे मोक्ष में ही चला जाएगा। देखो, सभी जानवर साहजिक हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ कुछ भी नहीं है! वह आपको धक्का मारे तो भी उसे क्रोध नहीं है, वह साहजिक है। और वह खाने के लिए उतावले हों, तब भी उसे लोभ नहीं है, साहजिक है।

मोक्षप्राप्ति निश्चित, काल अनिश्चित

प्रश्नकर्ता : तो हम क्या समझें कि हर एक आत्मा का मोक्ष में जाने का काल निश्चित होता है या फिर किसी आत्मा का निश्चित नहीं भी होता?

दादाश्री : प्रत्येक आत्मा मोक्ष में जाएगा, यह बात पक्की है, लेकिन उसका मोक्ष में जाने का काल निश्चित नहीं होता। मनुष्य जन्म में वह क्या करता है, यह इस पर आधारित है। मनुष्य जन्म में वह उलझनें खड़ी करता है या उलझनें कम करता है या उलझनें बंद करता है, उस पर आधारित है।

प्रश्नकर्ता : हर एक आत्मा को मनुष्य जन्म एक ही सरीखे टाइम पर मिलता है? निश्चित समय पर ही मिलता है?

दादाश्री : मनुष्य जन्म तो सबको मिलना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह निश्चित समय पर मिलता है?

दादाश्री : हाँ, निश्चित समय पर मिलता है, मनुष्य का जन्म, जो उसकी शुरूआत है, वह निश्चित समय पर मिलती है। और फिर मनुष्य का जन्म मिल गया यानी भटकने के लिए वह स्वतंत्र हो गया! क्योंकि फिर उलझनें पैदा करना उसके हाथ में आ गया, इसलिए फिर इसके बाद का ठिकाना नहीं है। लेकिन तब तक का रास्ता तो है ही और वह क्लियर कट है। यानी हर एक जीव का मनुष्य के रूप में प्रथम बार जन्म होना, वह बिल्कुल रेग्युलर है, उसके टाइम पर हो ही जाता है। लेकिन बाद में फिर उलझन में पड़ता है! और उलझता है तो इतना अधिक उलझता है कि बात न पूछो, उसमें तो कितने सारे काल निकल जाते हैं! क्योंकि यहाँ पर मनुष्य में उसमें कर्तापन उत्पन्न होता है और

कर्तापन में तो सभी तरह की छूट होती है, किसी भी गति में जाने की। नर्कगति में जाने का कार्य कर सकता है, जानवरगति में जाने का कार्य कर सकता है, मनुष्य में सज्जनता और 'सुपर ह्यूमन' के कार्य भी कर सकता है, मनुष्य में वापस आ सके, ऐसा कार्य भी कर सकता है और देवगति में जाने का कार्य भी कर सकता है! और यदि कभी 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ या वीतराग मिल जाएँ तो संसारकार्य न करते हुए वीतराग मार्ग पर चले, आत्मकार्य पर जाए तो मुक्ति में जाएगा। यानी मुक्ति भी इस मनुष्य जन्म में ही मिलती है। अन्य कहीं से भी, देवगति से भी मुक्ति में नहीं जा सकते। दूसरी गतियों में जीव कर्ता नहीं है, जब कि मनुष्य गति में कर्ता है।

अहंकार को मोड़ना, वीतरागों की रीत

प्रश्नकर्ता : यानी जब आत्मा पहली बार मनुष्य गति में आता है, उस समय बिल्कुल 'अलर्ट' रहना चाहिए।

दादाश्री : लेकिन 'अलर्ट' रहने की सत्ता उसके हाथ में नहीं है न! उसे जो सब संयोग मिलते हैं, उसी अनुसार उन संयोगों में वापस उलझता है! और वह उलझन तो सभी को होती ही है!! लेकिन यदि खुद के 'अहंकार' को 'खुद' ही जान जाए, फिर भी घटाए नहीं, तब जानना कि खुद जान-बूझकर उलझ रहा है।

प्रश्नकर्ता : मुझे मन में विचार आ रहे थे कि हर एक आत्मा को एक ही तरह का 'स्कोप' नहीं मिलता, तो फिर एक आत्मा जल्दी मोक्ष में जाता है और एक आत्मा देर से जाता है। फिर तो वह 'लक' से हो गया या कुछ और होगा?

दादाश्री : नहीं। वह 'लक' से नहीं है। वह जब मनुष्य में जन्म लेता है, तब जन्म तो उसे संयोगानुसार मिल जाता है। यहाँ पहली बार जब मनुष्य जन्म मिलता है, तब वह जन्म ऐसा मिल जाता है कि उसे मोक्ष में जाते हुए नुकसान नहीं करे, ऐसा होता है। लेकिन वह 'खुद' अहंकार को किस तरफ़ मोड़ता है, उस पर सब आधारित है।

चोर के वहाँ जन्म पाया हो, लेकिन खुद यदि अहंकार को नहीं मोड़े तो कुछ भी नहीं। क्योंकि मनुष्यपन है, इसलिए अधिकारी हुआ न! यानी अहंकार का कर्ता हुआ है। उसमें यदि 'खुद' 'अहंकार' को नहीं मोड़े तो कुछ भी नहीं है। जन्म तो कहीं भी हो सकता है, कैसे भी संयोग मिल सकते हैं, लेकिन अहंकार को किस तरफ़ मोड़ना है; जैसे इन स्टीमरों में कुतुबनुमा होता है न, वैसा ही इसमें भी कुतुबनुमा रखना चाहिए। यानी कि अहंकार को ऐसा रखना चाहिए कि मुझे अब यह चलाना पड़ रहा है इसलिए मुझे ध्यान रखना है, ज़रा धीरे से, 'इस' दिशा में ही चलाना है। इस तरह मनुष्य का जन्म हुआ, तब से उसे 'खुद' को ही 'अहंकार' को मोड़ना है।

प्रश्नकर्ता : और वह आसान तो नहीं है।

दादाश्री : वह यदि आसान होता, तब तो सभी लोग कर लेते। वही कठिन है, आसान नहीं है! बहुत ही कठिन है!! कठिन है इसीलिए तो, इतना जान लेने के लिए ही तो इतने सारे शास्त्र लिखे हैं! लेकिन वही अत्यंत कठिन है न!

कभी खुद को पसंद हो ऐसी कोई बात आती है और फिर से नासपंदगीवाली आती है, 'उसे' पसंदीदा संयोग मिलता है और नापसंद मिलता है। अब जब मनपसंद आता है, तब उनमें वीतराग क्या कहते हैं कि इनमें से कोई भी चीज़ पसंद करने जैसी नहीं है और नापसंद करने जैसी भी नहीं है, इनसे 'तू' अलग रह, क्योंकि नापसंद करने जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। फिर भी 'तू' अपने आप बँध रहा है कि यह वस्तु अच्छी है। और इसे 'अच्छी है' कहा इसलिए दूसरे को 'खराब है' ऐसा बोलेगा। एक को अच्छा कहा इसलिए दूसरे को खराब कहेगा ही। इसलिए वीतराग क्या कहते हैं? ये सभी संयोग ही हैं। और यह तो 'हमने विभाजित किया है कि यह संयोग अच्छा है और यह संयोग खराब है।' वीतरागों ने इन सभी संयोगों को ऐसा ही कहा है कि, 'ये सभी संयोग ही हैं। और ये संयोग फिर वियोगी स्वभाववाले हैं, इसलिए किसी भी संयोग को पसंदीदा मत बनाना ताकि नापसंद संयोग को तुझे धक्का नहीं मारना पड़े। यदि तू

धक्का मारने जाएगा तो तेरा मोक्ष चला जाएगा। कोई भी नापसंद संयोग मिल जाए तब यदि उस घड़ी तू उस संयोग को धक्का मारेगा तो तू फिर से उलझ जाएगा। इसलिए उस संयोग को धक्का मारने के बजाय उसे समताभाव से तू पूरा कर। और वह वियोगी स्वभाव का ही है। इसलिए अपने आप वियोग हो ही जाएगा, तुझे कोई झंझट ही नहीं। और फिर भी यदि उस नापसंद संयोग के सामने तू उल्टा रास्ता करने जाएगा तब भी काल तुझे छोड़ेगा नहीं, उतने काल तक तुझे मार खानी ही पड़ेगी। अतः, यह संयोग वियोगी स्वभाववाला है, उस आधार पर धीरज रखकर तू चलने लग।'

गजसुकुमार को मिट्टी की पगड़ी बाँध दी थी न, उनके ससुरजी ने? और उसमें अंगारे रखे। उस घड़ी गजसुकुमार समझ गए कि यह संयोग मुझे मिला है और उसमें, ससुर ने मोक्ष की पगड़ी बंधवाई है, ऐसा संयोग मिला है। अब यह उन्होंने मान लिया, बिलीफ़ में ही माना कि यह मोक्ष की पगड़ी बंधवाई है और उसमें अंगारे रखे। अब नेमीनाथ भगवान ने गजसुकुमार से कहा था कि, ''तेरा' स्वरूप 'यह' है और यह संयोग 'तेरा' स्वरूप नहीं है। संयोगों का 'तू' ज्ञाता है। सभी संयोग ज्ञेय हैं।'' अतः वे 'खुद' उन संयोगों में भी ज्ञाता रहे, और ज्ञाता रहे इसलिए मुक्त हो गए और मोक्ष भी हो गया। वर्ना कल्पांत करके भी मनुष्य मर तो जाता ही है। मरने का समय हुआ, और कल्पांत करके मरे, तो कल्पांत करने का फल मिलेगा।

आत्मज्ञान के बाद क्रमबद्धता

प्रश्नकर्ता : जैसे कि बालक की शिक्षा की शुरूआत एक से होती है यानी कि क्रमपूर्वक ही वह आगे बढ़ता है, ऐसा धर्म के बारे में भी नहीं कह सकते?

दादाश्री : ये धर्म में भी ऐसा ही है सब। लेकिन धर्म में, यहाँ पर मनुष्य में आने के बाद वापस बदल जाता है। फिर सबकुछ टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है। यहाँ से, मनुष्यगति में से या तो अधोगति में जाता है या ऊर्ध्वगति में जाता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यहाँ मनुष्यगति में आने के बाद क्रम जैसा कुछ नहीं रहता?

दादाश्री : नहीं। लेकिन आत्मज्ञान होने के बाद वापस क्रम हो जाता है। यानी आत्मज्ञान होने के बाद क्रमबद्ध हो जाता है। जब तक मनुष्य का जन्म है और आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक भटकना है, उसमें क्रम वगैरह उड़ जाता है सारा। वर्ना यदि मनुष्य जन्म में बीच में ऐसा नहीं हो रहा होता, तब तो भगवान ऐसा ही लिख देते कि सबकुछ नियति के अधीन है।

स्वभाव से ही ऊर्ध्वगामी! लेकिन कब?

प्रश्नकर्ता : आत्मा का मूल स्वभाव ऊर्ध्वगामी है। यह मनुष्य देह जो हमें मिली है, वह ऊर्ध्वगामी स्वभाव के हिसाब से मिली है, ऐसा कहते हैं। अब इस मनुष्ययोनि में जो कर्म करते हैं, उन कर्मों के फल मिलने पर तिर्यंचगति में जाना पड़ता है। अब तिर्यंचगति भोगकर मनुष्यदेह में वापस आए, तो वहाँ उस पर कौन-सा नियम लागू होता है?

दादाश्री : वह तो ऐसा है न, कि यहाँ पर कर्म बाँधता है उससे पौद्गलिक भार बढ़ा और *पुद्गल* का वज़न बढ़ा, इसलिए निचली गति में जाता है। फिर निचली गति में उस *पुद्गल* को भोग लेने के बाद पौद्गलिक भार घटता है और वापस मनुष्य में आ जाता है! और मनुष्य में आकर यदि मनुष्य का भार टूटा और देवधर्म का भाव उत्पन्न हुआ तो हल्का हो जाता है, जिससे ऊपर देवगति में जाता है। जैसे-जैसे बोझ बढ़ता है वैसे-वैसे नीचे जाता है, तो नीचे सात पाताल हैं, सात लोक हैं, वहाँ तक जाता है! और जब हल्का हो जाए तो ऊपर छह लोक हैं, वहाँ तक जाता है! इसी प्रकार यह चौदह लोकवाली दुनिया है!

पुद्गल, वह अंधकार है और आत्मा, वह प्रकाश है। अंधकार में खिंचा तो नीचे जाता है, प्रकाश में खिंचे तो ऊपर जाता है।

अधोगामी तो अहंकार के आधार पर

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा का तो सहज स्वभाव है न? तो फिर श्रेय की साधना किसलिए करनी पड़ती है?

दादाश्री : आत्मा के लिए न तो श्रेय है, न ही प्रेय है। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है, निरंतर ऊर्ध्वगामी स्वभाव में आत्मा है। आत्मा ऊर्ध्वगामी स्वभावी है, जब कि *पुद्गल* का स्वभाव अधोगामी है।

प्रश्नकर्ता : तो ऊर्ध्वगामी की परिभाषा बताइए।

दादाश्री : ऊर्ध्वगामी अर्थात् स्वभाव से ही मोक्ष में जाए, ऐसा है। 'आप' यदि कोई दख़ल नहीं करो तो आत्मा स्वभाव से ही मोक्ष में जाए-ऐसा है, उसमें 'आपको' कुछ करना पड़े, ऐसा नहीं है। और *पुद्गल* स्वभाव से ही अधोगाति में ले जाए ऐसा है। जितना *पुद्गल* का ज़ोर बढ़ा उतना नीचे दबता हैं, जितना *पुद्गल* का ज़ोर कम हुआ उतना ऊँचे चढ़ता हैं, और जब वह *पुद्गल* रहित हो जाता है, तब मोक्ष में जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा तो ऊर्ध्वगामी स्वभाव का ही है, तो फिर वापस नीचे अधोगति में क्यों जाता है?

दादाश्री : जितने नुकसानदायक विचार हों, मनुष्य को या किसी भी जीव को नुकसान पहुँचाने का विचार किया या किसीको किंचित् मात्र भी दु:खदायी हो, ऐसा विचार भी किया तो वज़नदार परमाणु चिपक जाते हैं, जिससे वज़नदार हो जाता है, वे फिर नीचे ले जाते हैं। और दुनिया का भला करने का विचार आएँ तो हल्के परमाणु चिपकते हैं, वे ऊपर ले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहा जाता है न कि आत्मा तो निरंतर मोक्ष की तरफ़ ही जा रहा है?

दादाश्री : ज़रूर, वह आगे ही बढ़ रहा है, लेकिन वज़नदार परमाणु इकट्ठे करता है, इसलिए नीचे जाता है। खुद का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है और यह *पुद्गल* उसे नीचे खींचता है, जिससे यह खेंचा-खेंची चली है।

इसलिए हम कहते हैं न कि कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर लो। शुद्धात्मा प्राप्त हो जाएगा तो फिर *पुद्गल* का खिंचना कम हो जाएगा। वर्ना तब तक काल, कर्म, माया सबकुछ बाधक रहेगा। अतः जब *पुद्गल* के इस पूरे ही सिलसिले का *निकाल* (निपटारा) कर लेगा, तब फिर 'वह' 'खुद के स्वभाव' में रहकर मोक्ष में चला जाएगा।

अब, *पुद्गल* का स्वभाव अधोगामी है। लेकिन *पुद्गल* का स्वभाव किस प्रकार से अधिक अधोगामी होता है? तब कहे, 'शरीर मोटा हो उसके आधार पर नहीं या शरीर वज़नदार हो, उसके आधार पर नहीं, अहंकार कितना बड़ा है और कितना लंबा-चौड़ा है, उस पर आधारित है। यों तो शरीर इतना पतला-दुबला होता है, लेकिन अहंकार पूरी दुनिया जितना होता है और कोई शरीर से एकदम मज़बूत हो, ढाई सौ किलो का लेकिन अगर उसका अहंकार नहीं होगा तो वह डूबेगा नहीं!' अहंकार अर्थात् वज़न! अहंकार का अर्थ ही वज़न!!!

यानी कि यह जगत् अपार है, लेकिन नियमबद्ध है। क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही ऊर्ध्वगमनवाला है, सिद्धगति की ओर गमनवाला स्वभाव है।

मनुष्य जन्म के बाद वक्रगति

प्रश्नकर्ता : भौतिक विज्ञान का उत्क्रांतिवाद, थ्योरि ऑफ इवोल्युशन और जगत् के अनादिपन का किस तरह से मेल बैठता है? इसे समझाने की कृपा करें।

दादाश्री : जगत् अनादि अनंत है। इसमें ये जीव उत्क्रांति प्राप्त करते ही रहते हैं। जीवों के तीन विभाग किए गए हैं। इन तीन विभागों में से, एक विभाग में बिल्कुल भी उत्क्रांति होती ही नहीं है। वे जीव तो स्टॉक में पड़ा हुआ माल है। उसे अव्यवहार राशि कहा जाता है। और स्टॉक में से अंदर आते हैं, व्यवहार में आते हैं और व्यवहार जीवों की उत्क्रांति होती ही रहती है। उत्क्रांति होने पर अंत में जीव मोक्ष में जाते हैं। उत्क्रांति होते-होते, सभी अनुभव लेते-लेते, वे आगे जाकर फिर मोक्ष में जाते हैं।

चार इन्द्रियाँ थीं और कान सबसे अंत में आता है। सबसे अंत में कान आता है। अंतिम डेवलपमेन्ट कान का है। फिर इससे पहले का डेवलपमेन्ट कान की जगह पर छेदवाला होता है, नहीं तो चार इन्द्रियाँ होती हैं।

चौथी इन्द्रिय आँख होती है, तब कीट बनता है। तो आँख खुली कि उजाले पर उसे मोह उत्पन्न होता है। इसलिए उजाले के पीछे ही मर जाता है। यह कान खुला तो सुनने के पीछे ही मर जाता है। पूरे दिन कहाँ से सुनूँ, कहाँ से सुनूँ, वह फिर रेडियो सुनता है, गीत सुनने जाता है! जिसकी नई-नई इन्द्रिय विकसित हुई हो, उसे ऐसा सब होता है।

इन चींटियों में तीसरी नई इन्द्रिय निकली की भाग-दौड़, भाग-दौड़ करके यहाँ पर कुछ लटकाया हो न, तो अगर पतीली सीलिंग से तीन फुट नीचे हो, तब भी यहाँ ज़मीन पर से पता चल जाता है, नाक की इन्द्रिय से, कि यहाँ पर घी है। अब वह समझती है कि वहाँ पर किस तरह से पहुँचा जाए। वह फिर ऐसे दीवार पर चढ़कर ऊपर जाती है और फिर नीचे उतरती है और फिर घी चाटती है। क्योंकि यह नाक की इन्द्रिय उत्पन्न हुई है तो उसके पीछे ही पूरे दिन भाग-दौड़ करती रहती है!

बाकी ये लोग चौर्यासी लाख योनियाँ कहते हैं न, वे तो, सब मिलाकर चौर्यासी लाख योनियाँ जीव जाति की हैं। बाकी वैसे फिर से चौर्यासी में घूमने जाएँगे तो फिर दिखेंगे ही नहीं न, कैसे दिखेंगे? लेकिन ऐसा नहीं है। वह तो यहीं पर भटकते रहना है। मनुष्य में से जो जानवर में जाता है, वह आठ जन्मों तक उस तरफ़ जाता है, और वापस यहीं पर आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उत्क्रांति के नियम के अनुसार मनुष्यपन में से निचली गति में नहीं जा सकते न?

दादाश्री : ऐसा है, मनुष्यगति ही सिर्फ ऐसी गति है कि जहाँ पर चार्ज और डिस्चार्ज दोनों क्रियाएँ हो रही हैं, जब कि देवगति सिर्फ डिस्चार्ज के रूप में ही है, तिर्यंचगति डिस्चार्ज के रूप में ही है, नर्कगति डिस्चार्ज के रूप में ही है। यानी मनुष्यगति में से, जो जानवरगति में या देवगति में या

नर्कगति में सब तरफ़ गये हो, वे मनुष्य में से ही गए हैं। यह डार्विन की 'थ्योरि' बिल्कुल गलत नहीं है, उसकी 'थ्योरि' दस–पंद्रह प्रतिशत तक ठीक है। लेकिन असल में तो तीन सौ साठ 'डिग्रियाँ' होती हैं! और उन सभी का उसे पूरा–पूरा ज्ञान नहीं था। उसे बुद्धि से मिला वह ठीक है, 'करेक्ट' है। लेकिन फिर वह पूरा मार्ग एक मोड़ लेता है, उसके बारे में उसे पता नहीं है कि मनुष्य में आने के बाद वापस गाय–भैंस भी बनता है, ये गाय–भैंस, वह डेवलपमेन्ट की योनि नहीं है, वे तो मनुष्य में से जाते हैं।

यानी उत्क्रांति का नियम दस प्रतिशत ही सच है। बाकी के नब्बे प्रतिशत का उसे पता नहीं है। दस प्रतिशत में उसने मनुष्यगति तक की ही खोज की है न! मनुष्य के बाद में जो वक्रगति होती है, उसे यह समझ में नहीं आया कि मनुष्य में से हाथी किस तरह से बना? भैंसा किस तरह से बना? गेंडा किस तरह से बना? मछली किस तरह से बनी? व्हेल किस तरह से बनी? वह उसे समझ में नहीं आया। बाकी उनका यह जो उत्क्रांति का नियम है, डार्विन की थ्योरि है, वह ठीक है। लेकिन वह टेन प्रतिशत ठीक है। उससे आगे तो बहुत कुछ है। यह व्हेल किस तरह से बनती होगी? वहाँ पर कौन–सा उत्क्रांति का नियम आया? वह तो वक्रगति है, मनुष्य में से वापस लौटा है। यह गेंडा कहाँ से बना? वह भी मनुष्य में से वापस गया हुआ है। ये बाघ–सिंह कहाँ से वापस आए? मनुष्य में से वापस आए हैं। ये बाघ–सिंह और उनके बच्चे होते हैं, वे जब बच्चे होते हैं तभी से मांसाहार करते हैं या नहीं करते? और अपनी गाय–भैंसों के बच्चे? बड़े हो जाएँ, फिर भी मांसाहार नहीं करते। उसका क्या कारण है? तब कहे, ''ये 'वेजिटेरियन' और ये 'नॉन वेजिटेरियन'।'' यानी ऐसा इनमें भी पहचाना जा सकता है कि ये मनुष्य यहाँ पर भी 'वेजिटेरियन' थे, तो वे गाय–भैंस में आए हैं। और जो मनुष्य 'नोन वेजिटेरियन' थे, वे बाघ–सिंह में जन्मे हैं। वह सब पहचाना जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : तो मनुष्य में जन्म लेने के बाद फिर पृथ्वीकाय, तेउकाय में जाते हैं या नहीं?

दादाश्री : पृथ्वीकाय या तेउकाय में नहीं जाते। बहुत हुआ तो स्थावर

काय में पेड़-पौधों की योनि में जा सकते हैं। बहुत हुआ तो मनुष्य में से आठ जन्मों तक तिर्यंच में जाता है।

यानी पूरी देवगति, पूरी नर्कगति और तिर्यंचगति का कुछ ही भाग, वे सब मनुष्य में से गए हुए हैं। मनुष्य चार्ज और डिस्चार्ज दोनों करता है और चार्ज - डिस्चार्ज से परे भी रह सकता है। यानी इतनी मनुष्य में शक्ति है कि मोक्ष में जा सकता है।

जिसकी सज्जनता नहीं टूटती, उसका मनुष्यपन नहीं जाता। यदि उसे खुद को पाशवता के विचार आते रहते हों, तो उसे तिर्यंच में ले जाते हैं। भोगने की हद होती है। तेरी मालिकी का हो, वही भोगना और मालिकी का नहीं हो, उसका विचार भी मत करना। यह तो *अणहक्क* का भोगता है, वही तिर्यंचगति में ले जाता है यानी कि अपने विचार ही इन गतियों में ले जाते हैं।

कुछ स्थावर, फल देनेवाले पेड़ हैं, जिस मनुष्य ने प्रपंच और ऐसा सब किया होता है वह फिर नारियल, आम, रायण ऐसे पेड़ों में जाता है और लोगों को पूरी ज़िन्दगी खुद के फल देता है, तब जाकर लोगों के ऋण में से मुक्त होता है, इतने मधुर आम होते हैं, फिर भी खुद आम नहीं खाता है न? इस तरह लोगों को आम देकर कर्ममुक्त होता है। यानी यह सब 'साइन्टिफिक' है। इसमें किसीका चले, ऐसा नहीं है।

...तब मोक्ष में जाएगा

प्रश्नकर्ता : 'थ्योरि ऑफ इवोल्युशन' की बात में, उत्क्रांतिवाद में जीव एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय ऐसे 'डेवलप' होते-होते मनुष्ययोनि में आता है। और मनुष्ययोनि में से वापस फिर पशुयोनि में जाता है। तो इस 'इवोल्युशन' की 'थ्योरि' में ज़रा विरोधाभास लगता है। इसे ज़रा स्पष्ट कीजिए।

दादाश्री : नहीं। इसमें विरोधाभास जैसा नहीं है। 'इवोल्युशन' की 'थ्योरि' पूरी ठीक है। सिर्फ मनुष्य में पहुँचने तक ही 'इवोल्युशन' की थ्योरि 'करेक्ट' है, फिर उससे आगे वे लोग जानते ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य में से पशु में वापस जाता है क्या, ऐसा प्रश्न है।

दादाश्री : ऐसा है, पहले डार्विन की थ्योरि से ऐसे उत्क्रांतिवाद के अनुसार 'डेवलप' होते-होते मनुष्य तक पहुँचता है, और मनुष्य में आया, तब फिर 'इगोइज़म' साथ में होने से कर्ता बनता है। कर्म का कर्ता बनता है, इसलिए फिर कर्म के अनुसार उसे भोगने जाना पड़ता है। अगर डेबिट करे तब जानवर में जाना पड़ता है या फिर नर्कगति में जाना पड़ता है। और क्रेडिट करे तब देवगति में जाना पड़ता है या फिर मनुष्य में राजसी जीवन मिलता है। यानी मनुष्य में आने के बाद में क्रेडिट और डेबिट पर आधारित है।

यहाँ पर क्रेडिट-डेबिट करनेवाले लोग हैं या नहीं? अभी लोग डेबिट ज़्यादा करते हैं न? उन्हें पता ही नहीं है कि कौन-से गाँव जाएँगे, लेकिन डेबिट कर देते हैं न? इसलिए फिर दो पैरों की बजाय चार पैर और पूंछ मिलती है! लेकिन फिर वापस यहाँ पर मनुष्य में आ जाता है, फिर अधिक नीचे नहीं उतरता। एक बार मनुष्ययोनि में आने के बाद सौ साल-दो सौ साल (तक अन्य योनि) भोगकर फिर वापस यहाँ मनुष्य योनि में ही आ जाता है। फिर यह स्थान, मनुष्यपन छोड़ता नहीं है। यहाँ से फिर मोक्ष में जाने तक उसका मनुष्यपन जाता नहीं है। अगर डेबिट हो तो सौ-दो सौ साल जानवर में जाकर आता है, लाखों वर्ष नर्कगति में जाकर आता है या फिर अगर क्रेडिट हो तो लाखों वर्ष देवगति में जाकर आता है। लेकिन वहाँ का भुगतान पूरा हुआ कि वापस यहीं के यहीं। यहाँ से जब मोक्ष में जाने की तैयारी करेगा तब मोक्ष में जाएगा, तब तक इसी तरह भटकते रहना है।

प्रश्नकर्ता : जब मनुष्ययोनि में आता है तब उसका मन भी 'डेवलप' हो चुका होता है, तो जब वह वापस जानवरयोनि में जाता है, तब वापस मन का डेवलपमेन्ट खो देता है?

दादाश्री : नहीं। लेकिन उस मन पर आवरण आ जाता है। वहाँ जानवरगति में उसमें मन होता है, लेकिन वह 'लिमिटेड' रहता है, फिर

वहाँ पर उसका भोजन भी वैसा होता है, ब्लड वगैरह सब जानवर का ही होता है। लेकिन उस गति में सबकुछ भोगने के लिए जाना पड़ता है। ऐसा नहीं होता न तब तो लोग नौकरी करने जाते ही नहीं और चोरी करके ही खाते! लेकिन इसका तुरन्त ही फल मिल जाता है दूसरे जन्म में।

अब यहाँ पर *अणहक्क* का खा जाते हैं, मिलावट करके बेचते हैं, *अणहक्क* का भोगते हैं, ये सभी पाशवता के विचार हैं, यह जानवर में जाने की तैयारी हो रही है। हमें समझ जाना है कि ऐसे विचार उसे जानवर में ले जाएँगे और यहाँ पर सज्जनता के विचार उसे फिर से मनुष्य में लाएँगे। और जो खुद के हक़ की चीज़ हो, उसे भी दूसरों को दे दे, ऐसे 'सुपरह्युमन' विचारवाला हो तो वह देवगति में जाएगा।

प्रश्नकर्ता : पशुयोनि में उसे अच्छे-बुरे विचार आते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं। वहाँ पर तो ऐसे कोई भी विचार नहीं होते। पशुयोनि का मतलब सिर्फ भोगने की योनि। देवगति भी भोगने की और नर्कगति भी सिर्फ भोगने के लिए ही। और सिर्फ मनुष्य जन्म में ही कर्म बाँधना और कर्म भोगना दोनों साथ में होता है।

प्रश्नकर्ता : क्रेडिट और डेबिट दोनों बंद हो जाएँ तो?

दादाश्री : क्रेडिट और डेबिट, पुण्य और पाप दोनों बंद हो जाएँ तो मोक्ष में जाएगा!

गति में भटकने का कुदरती नियम

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहते हैं न, मानवजन्म जो कि चौर्यासी लाख फेरों में भटकने के बाद मिला है, तो वापस इतना ही भटकना पड़ता है और उसके बाद मानवजन्म मिलता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। एक बार मनुष्य योनि में आ गया न, फिर वापस पूरी चौर्यासी में नहीं घूमना पड़ता। उसे यदि पाशवता के विचार आएँ तो आठ जन्मों तक उसे पशुयोनि में जाना पड़ता है, वह

भी सौ-दो सौ वर्षों के लिए। फिर वापस यहीं का यहीं, मनुष्य में आता है। एक बार मनुष्य बनने के बाद में बहुत नहीं भटकना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : एक ही आत्मा चौर्यासी लाख फेरे घूमता है न?

दादाश्री : हाँ, एक ही आत्मा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा तो पवित्र है न?

दादाश्री : आत्मा पवित्र तो अभी भी है। चौर्यासी लाख योनियों में घूमते हुए भी पवित्र रहा है और पवित्र था और पवित्र रहेगा!

प्रश्नकर्ता : तो फिर इस घूमने का कारण क्या है?

दादाश्री : आत्मा के लिए कोई कारण नहीं है, वह तो आनंद में ही है। जिसे दुःख होता है, उसे दुःख निकालने की इच्छा होती है। बाकी आत्मा तो आनंद में ही है।

भिन्नता देखी, भ्रांति से...

प्रश्नकर्ता : जगत् में भिन्नता किसलिए उत्पन्न हुई? भिन्नता नहीं होता तो आत्मा की एकता जगत् में सभी जगह फैली होती। जगत् में सुख और दुःख, यह भी भिन्नता है, अमीर और गरीब, यह भी भिन्नता है। तो यह भिन्नता उत्पन्न किसलिए हुई?

दादाश्री : ऐसा कुछ इस दुनिया में उत्पन्न हुआ ही नहीं और कुछ विनाश भी नहीं हुआ। उत्पत्ति और विनाश ये सारी सिर्फ अवस्थाएँ दिखती हैं। मूल तत्व को कुछ भी नहीं होता। अवस्थाओं में भिन्नता भ्रांतिवालों को दिखती है। मूल तत्व में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता।

यह तो विपरीत बुद्धि ऐसा सब दिखाती है। बुद्धि का जन्म हुआ है। उसका 'एन्ड' होने तक बुद्धि इसमें फँसाती रहती है। यदि बुद्धि 'रिटायर' हो जाए तो काम निकाल देगा। लेकिन 'रिटायर' होती नहीं न, अस्सी वर्ष की उम्र में भी 'रिटायर' नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : पानी और ताड़ी, इन दोनों में भिन्नता है।

दादाश्री : ऐसी सब भिन्नता होती ही है न! स्वाभाविक रूप से इनमें भिन्नता होती है। ताड़ी सफेद दिखती है लेकिन पीएँ तब चढ़ती जाती है और पानी का नशा नहीं चढ़ता। कोई भी चीज़ अपना प्रभाव बताए बगैर रहती नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : हर एक तरह के जीव के या मनुष्य के आहार में भिन्नता रखी है।

दादाश्री : भिन्नता है ही, हर एक वस्तु मात्र में भिन्नता है। दो राई के दाने होते हैं न, उनमें भी भिन्नता है।

प्रश्नकर्ता : यह भिन्नता किसलिए उत्पन्न हुई? यह नहीं होती तो सुख होता।

दादाश्री : हाँ, लेकिन ये तो सारी कल्पनाएँ हैं न! यह बुद्धि है न, वह कल्पना करवाती है कि 'ऐसा नहीं होता तो, ऐसा होता तो ऐसा हो जाता।' लेकिन ये शब्द ही 'डिक्शनरी' में से निकाल देने चाहिए। 'ऐसा होता तो ऐसा हो जाता' ये शब्द ही नहीं होने चाहिए, 'डिक्शनरी' में कभी भी रखना ही मत।

प्रश्नकर्ता : तो यह भिन्नता आत्मा-परमात्मा ने उत्पन्न की? जान-बूझकर किया या अपने आप हो गया?

दादाश्री : नहीं, भिन्नता है ही नहीं। उसे दिखता है, वह उसकी 'रोंग बिलीफ़' ही है। जैसे कि एक मनुष्य ने यहाँ पर सुबह कोई पुस्तक पढ़ी हो और उसमें कोई भूत की बात पढ़ने में आई हो और रात को जब वह अकेला हो और रूम में सोने गया और दूसरे रूम में चूहे ने कोई प्याला खड़काया कि तुरन्त वह डर जाता है। अब जब से उसके मन में भूत घुसा, तो जब तक वह निकलता नहीं है, तब तक उस पर भूत का असर रहता है, ऐसे ये असर हैं।

प्रश्नकर्ता : सृष्टि के अंदर भी जीवमात्र में भेद डाले हैं?

दादाश्री : जीवमात्र में भेद है ही नहीं। सभी जीव एक ही स्वभाव

के हैं। भेद तो सिर्फ, उसकी दृष्टिभेद से ये सब भेद दिखते हैं। और यह भेद कुदरत का संचालन है। और वह भी बाह्य भेद है, 'कपड़ों' का भेद है, मूल भेद नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आचरण में भेद है। जिस तरह से गाय, भैंस, बकरी वगैरह शाकाहारी हैं और सिंह और बाघ मांसाहारी हैं, यह भेद किसने उत्पन्न किया? यह भेद है, वह किसलिए है? यह जीव का भेद है, शरीर का भेद है या भौतिक भेद है? यह जीव में भेद है तो उन लोगों के जीवन में भेद है?

दादाश्री : नहीं। ऐसा नहीं है। वह मैं आपको बताता हूँ, सुनो। कितनी ही कौम हैं, वे सभी मांसाहार नहीं करते न? अब उन्हें जब जानवर में जाना पड़ा तो किसमें जाएँगे? जहाँ मांसाहारी कौम नहीं होती, वहाँ पर जाएँगे। यानी कि गाय-भैंस जो मांसाहार नहीं करते हैं, उनमें जाते हैं। और मांसाहारी राजा वगैरह जब जानवर में जाते हैं, तब वे फिर किसमें जाते हैं? वे गाय-भैंस में नहीं जाते, वे तो सिंह-बाघ की योनि में जाते हैं। अतः यह सारी व्यवस्था बिल्कुल नियमबद्ध है। हर एक देश में 'वॉरियर्स' (सैनिक) नियम से पैदा होते ही हैं।

ऐसा है, इस जगत् में सभी लोगों के विचार एक ही तरह के नहीं होते, हर एक मनुष्य के विचार अलग-अलग ही होते हैं। उसका क्या कारण है? यह गोलाकार होता है, 'सर्कल', ऐसा आपने देखा है? इसमें जगत् में मनुष्य तीन सौ साठ डिग्रियों पर जगत् के मनुष्य हैं। यानी जिस 'डिग्री' पर-जिस अंश पर खड़ा है, उसे वहाँ से जैसा दिखता है वैसा ही वह बोलता है। उसमें उसका दोष नहीं है। यानी की 'डिग्री' पर सब मतभेदवाला है। क्योंकि अलग-अलग अंश हैं। और बीच में 'सेन्टर' में आते हैं तब पता चलता है कि 'परमात्मा क्या है? जगत् क्या है? किस तरह से जगत् चल रहा है?'

जगत् कल्याण की अद्‌भुत, अपूर्व भावना

प्रश्नकर्ता : अब 'आत्मा है' ऐसा तो जैनों ने, वेदांतियों ने और सभी

ने कहा है लेकिन अभी की जो साइन्स दृष्टि है, उसे सभी 'यूनिवर्सली' क्यों एक्सेप्ट नहीं करते?

दादाश्री : नहीं करे या करेंगे। क्योंकि उन्हें समझ में नहीं आता है न! आत्मा का अस्तित्व तो अपने हिन्दुस्तान में हर एक दर्शन स्वीकार करता है। 'फॉरिनवालों' में आत्मा के अस्तित्व का दर्शन नहीं होता, क्योंकि वे लोग अभी तक पुनर्जन्म को ही नहीं समझते। जो लोग पुनर्जन्म को समझते हैं, उन्हीं को आत्मा के अस्तित्व का दर्शन ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि यह बात यूनिवर्सली सत्य हो, तो फिर उस तरह से यूनिवर्सली क्यों सभीको पहुँच नहीं सकती?

दादाश्री : ऐसा है न, ये जो सारे सत्य हैं, यदि वे यूनिवर्सली होते, फिर भी वे सब सापेक्ष सत्य हैं। यदि मैं आपके साथ बात करूँ न, लेकिन वह बात ये भाई नहीं समझ सकेंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूँ और आप तुरन्त ही समझ जाओगे। यानी हर एक का 'व्यूपोइन्ट' अलग-अलग होता है और हिन्दुस्तान के अलावा, बाहर का कोई भी मनुष्य आत्मा के संबंध में कुछ भी समझ नहीं सकता। मेरे पास फॉरिन के 'साइन्टिस्ट' आएँगे तो तब मैं यह सब उन्हें ब्यौरेवार समझा दूँगा। और सिर्फ 'साइन्टिस्ट' यह समझ सकते हैं, और वह भी कुछ हद तक का। आप इसे जितना समझ सकते हो, उतना तो वे भी नहीं समझ सकेंगे। क्योंकि अभी वे लोग 'डेवलप्ड' ही नहीं है न! सभी 'फॉरिनवाले' 'अध्यात्म' में 'अन्डर डेवलप्ड' हैं।

प्रश्नकर्ता : हिन्दुस्तान में ऐसा पुरुषार्थ क्यों कोई नहीं कर सकता कि जिससे सभी को यूनिवर्सली यह बात पहुँचे?

दादाश्री : यह बात पहुँच सकती है, परन्तु अभी वीतरागों की जो लाइट है न, उनकी बात पर आवरण आ गया है। अभी सिर्फ मैं अकेला ही 'ज्ञानीपुरुष' हूँ। पूरे वर्ल्ड के प्रश्नों के खुलासे देने के लिए तैयार हूँ, चार अरब लोगों को संपूर्ण खुलासा देने के लिए तैयार हूँ, लेकिन ये लोग मुझसे मिलने चाहिए। वर्ना नहीं तो मैं क्या कर सकता हूँ? कहाँ-कहाँ

पहुँचूँ? आप मुझसे मिले, यह 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है और मिले हैं तो आपका काम हो जाएगा। वर्ना जो नहीं मिल पाता उसका काम नहीं होगा। मिल जाए तो उसके सभी खुलासे हो जाएँगे, वर्ना उसके खुलासे नहीं होंगे।

बाकी, एक दिन सभी 'साइन्टिस्टों' को इकट्ठा करने का मेरा विचार है और पूरे वर्ल्ड के उन सभी 'साइन्टिस्टों' को तब पूरी हक़ीक़त खुल्लम्खुल्ला बता दूँगा कि 'यह शरीर किससे बना हुआ है? मन क्या है? मन का जन्म किस तरह से होता है? मन का विलय किस तरह से होता है? बुद्धि क्या है? आत्मा क्या है? जगत् किस तरह से चल रहा है?' यानी कि पूरा विज्ञान है यह तो, और लोगों तक पहुँचे तो लाभ होगा, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : मेरा कहना यही था कि आपके पास 'मैं आत्मा हूँ, मैं असंग हूँ' यह सब 'एक और एक दो' की तरह स्पष्ट हो जाता है, 'कुछ भी करने की शक्ति ही नहीं है मुझमें', ऐसा स्पष्टरूप से बरतता रहता है, ऐसा पूरी दुनिया को हो जाए तो बहुत लाभ हो जाए न! बड़ा उपकार हो जाए न!

दादाश्री : ऐसा है न, पूरे जगत् का एक सरीखा दर्शन नहीं होता। क्योंकि हर एक के 'व्यूपोइन्ट' अलग-अलग हैं, यानी हर एक को इसकी ज़रूरत नहीं है। हम तो उसे बस इतना ही कहें कि, 'तुझे आत्मा के बारे में समझा देंगे, तब भी दूसरे दिन उसके लक्ष्य में कुछ भी नहीं रहेगा। यह दर्शन भी नहीं पहुँचेगा और यह मेहनत सब बेकार जाएगी।' यह मेहनत अपने हिन्दुस्तान के लिए ही ऐसी मेहनत करना फलदायी हो सकता है, और फॉरिन के लिए तो कितनी फलदायी होगी? हम लोग उनके 'साइन्टिस्टों' को मार्गदर्शन दे सकते हैं और वे साइन्टिस्ट उनकी भाषा में उन लोगों को दें, तभी यह सब घर-घर में पहुँचेगा। मेरा 'आइडिया' ऐसा है कि पूरे जगत् में 'इस' 'विज्ञान' की बात कोने-कोने तक पहुँचानी है और हर एक जगह पर शांति होनी ही चाहिए। मेरी भावना, मेरी इच्छा जो भी कहो मेरा सबकुछ यही है!

....तब 'ज्ञान-प्रकाश' में आएगा

जगत् में जो 'रियल' ज्ञान है, 'यूनिवर्सल' 'ट्रुथ' है, उस तक बुद्धि नहीं पहुँच सकती। वह बुद्धि से भी ऊपर है। बुद्धि वहाँ पर आकर रुक जाती है। बुद्धि के उस अंतिम स्तर को लांघ जाए तो 'ज्ञान-प्रकाश' में आ जाएगा, यूनिवर्सल ट्रुथ में आ जाएगा। यानी मन के सभी स्तर पूरे हो जाते हैं, उसके बाद बुद्धि के स्तर शुरू होते हैं और बुद्धि के स्तर पूरे हो जाएँ, उसके बाद फिर 'ज्ञान-प्रकाश' की स्थिति में आ जाता है। लेकिन वहाँ तक कोई पहुँच नहीं सकता। अरे, लोग बुद्धि के स्तर में नहीं पहुँच सके हैं, इसलिए फिर मन के स्तर में रहते हैं।

वर्ल्ड की वास्तविकता, प्रकाशमान करें 'ज्ञानी' ही

'ज्ञानीपुरुष' तो पूरे वर्ल्ड की चीज़ें बता सकते हैं। जो वेद में नहीं हो, किसी शास्त्र में नहीं हो, वह सभी 'ज्ञानीपुरुष' बता सकते हैं, क्योंकि 'ज्ञानीपुरुष', वे अपना 'मीडियम' हैं, इस 'मीडियम' के द्वारा अपने से सभीकुछ जाना जा सकता है। बाकी, यह हक़ीक़त पुस्तक में उतर सके ऐसी नहीं है, यह अवक्तव्य और अवर्णनीय है, तब फिर वेदों का क्या दोष है इसमें? हाँ, मैं आपको संज्ञा से समझा सकता हूँ, लेकिन वेद तो कितनी संज्ञा कर सकेंगे? बाकी, वेद इसका जवाब नहीं दे सकते। जो वेद ने नहीं दिया, वह तो 'ज्ञानीपुरुष' का काम है।

लोग जिसे चेतन मानते हैं, वह सब भौतिक ही है, उसमें आध्यात्मिक है ही नहीं। आत्मा है, वह मूल वस्तु है और 'आप' जिसे आत्मा मानते हो न, वह भी सारा भौतिक ही है। उसमें किंचित् मात्र भी, एक बाल जितना भी 'आत्मा' नहीं है, 'आप' भूल से 'मानते' हो उतना ही क्योंकि जो 'मूल आत्मा' है, वह 'मिकेनिकल (भौतिक के प्रति झुकाववाला)' नहीं है। और आप 'मिकेनिकल' आत्मा को मूल आत्मा मानते हो लेकिन 'मिकेनिकल आत्मा' तो 'भौतिक आत्मा' है।

ये सभी लोग चेतनवाले हैं या बगैर चेतन के हैं?

प्रश्नकर्ता : चेतनवाले।

दादाश्री : कैसे पता चलता है कि चेतनवाले हैं? कौन-से लक्षणों पर से?

प्रश्नकर्ता : ये सभी चलने-फिरने के 'मूवमेन्ट्स' होते हैं न! शरीर में जाकर शरीर का सिर्फ मूवमेन्ट करवाता है।

दादाश्री : मूवमेन्ट करवाता है? शरीर का? आत्मा ऐसा कुछ भी नहीं करता है। जो शरीर का मूवमेन्ट करवाता है, वह 'मिकेनिकल आत्मा' है। अभी 'आप' जिसे आत्मा जान रहे हो, वह तो 'मिकेनिकल आत्मा' है। सच्चे आत्मा को 'ज्ञानी' के अलावा और कोई नहीं जान सकता। इस 'मिकेनिकल' के उस पार सच्चा आत्मा है और वह इस शरीर में ही रहा हुआ है। बाकी, सच्चा आत्मा तो चलने-फिरने की स्थिति में है ही नहीं, वह क्रिया कर ही नहीं सकता।

यह तो जब छिपकली की पूंछ कट जाती है, तब फिर वह भी हिलती-डुलती रहती है। उस पूंछ में जान होती है? तो क्यों वह उछल-कूद करती है? किस आधार पर उछल-कूद करती है?

प्रश्नकर्ता : वे प्रकृति के स्वतंत्र गुणधर्म हैं, उस तरह से?

दादाश्री : यानी जो चलता है-फिरता है वह चेतन नहीं है। तब फिर चेतन का लक्षण क्या है? तब कहे, 'वहाँ पर ज्ञान-दर्शन होना चाहिए, तो वहाँ पर चेतन है ऐसा तय हो जाता है।' अभी जगत् में ये जो सब ज्ञान-दर्शन दिखता है वह चेतन नहीं है, वह ज्ञान-दर्शन तो बुद्धि के लक्षण हैं। यानी कि वास्तव में वह भी चेतन नहीं है, लेकिन वहाँ पर चेतन हाज़िर है, इतनी बात पक्की है।

इस 'टेपरिकार्ड' के अंदर ज्ञान भी नहीं है और *लागणी* भी नहीं है, इसलिए इसमें चेतन नहीं है। यह बोलता ज़रूर है, लेकिन इसमें चेतन नहीं है। यह आपके साथ अभी कौन बात कर रहा है? कोई न कोई बात कर रहा है, इतना तो पक्का ही है न? 'यह कौन बात कर रहा है', उसे पहचानना तो पड़ेगा न? कौन बोल रहा है आपके साथ?

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* बोल रहा है।

दादाश्री : हाँ, बोलता है *पुद्गल* और कहता है, 'मैं बोल रहा हूँ।' चेतन में बोलने का गुणधर्म है ही नहीं। यदि बोलने का गुणधर्म आत्मा का है तो फिर कभी किसीकी बोली बंद हो जाती है, ऐसा होता है या नहीं होता? अतः यह आत्मा का गुण नहीं है।

उसके तो परमात्म गुण हैं सारे। इस तरह से बोले, हिले-डुले तो वह थक जाएगा। थक नहीं जाएगा? आत्मा में एक भी गुण ऐसा नहीं है कि जिसका 'एन्ड' आए। और हिलने-डुलने का गुण यदि आत्मा का होता न, तब तो शाम को थक जाता तो सो जाना पड़ता, अतः हिलने-डुलने का गुण आत्मा का नहीं है।

आत्मा के सभी गुण 'परमानेन्ट' हैं। आप जो ये सब बता रहे हो न, वे सभी टेम्परेरी गुण हैं और वे 'रिलेटिव' गुण हैं, और वे 'रिलेटिव आत्मा' के हैं। यह जो आप अभी अपने आप को आत्मा मानते हो, वह 'रिलेटिव आत्मा' है, उसके अंदर 'रियल आत्मा' है। उस 'रियल आत्मा' का 'रियलाइज़ेशन' हो जाए तब काम होगा। लोग कहते हैं न 'सेल्फ' का 'रियलाइज़' करना है? ये शब्द सुने हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उस 'सेल्फ' का 'रियलाइज़ेशन' कब होगा कि 'रियल आत्मा' का 'रियलाइज़ेशन' होगा तब।

जगत् का जाना हुआ आत्मा तो...

इस जगत् में आपने चेतन देखा है कभी?

प्रश्नकर्ता : यह सारा देखते हैं, वह चेतन है।

दादाश्री : नहीं। चेतन तो आँखों से दिख नहीं सकता, कानों से सुनाई नहीं दे सकता, जीभ से चेतन चखा नहीं जा सकता। चेतन पाँच इन्द्रियों से कभी भी अनुभव में नहीं आ सकता। चेतन तो दुनिया ने देखा

ही नहीं है, कभी उसे सुना भी नहीं है, श्रद्धा में नहीं है। जिसे ये लोग चेतन कहते हैं, वह तो इस 'मिकेनिकल चेतन' को चेतन कहते हैं। 'मिकेनिकल चेतन' यानी कि जो खाता है, पीता है, श्वास लेता है, वह। नाक दबा दें, श्वास बंद कर दें तो यह चेतन कितने दिन चलेगा?

प्रश्नकर्ता : पाव घंटे।

दादाश्री : अतः यह चेतन नहीं है। यह तो चेतन की मायावी शक्ति खड़ी हो गई है। अंदर 'आत्मा' के कारण 'चेतन' का स्पर्श हुआ है इसलिए यह हमें चेतन के रूप में दिखता है, लेकिन वास्तव में यह चेतन नहीं है। यह भ्रांति का चेतन है?

जगत् जिसे चेतन कहता है वह उनकी दृष्टि का चेतन है, एक्ज़ेक्ट चेतन नहीं है। उस चेतन को 'निश्चेतन चेतन' कहा जाता है। अतः वह डिस्चार्ज होती हुई चीज़ है। जब डिस्चार्ज होता है, तब वह 'निश्चेतन चेतन' है। ये जो मनुष्य चलते-फिरते हैं, जो कुछ भी करते हैं, वह सारा ही निश्चतेन चेतन है। सिर्फ आत्मा की उपस्थिति के कारण यह पूरी मशीन चल रही है। यदि आत्मा हाज़िर नहीं होगा तो यह मशीन चलेगी ही नहीं, बंद हो जाएगी।

मुँह बंद कर दें और नाक दबाकर रखें तो क्या होगा? 'अंदरवाले' पूरा रूम खाली करके चले जाएँगे फिर। इसे चेतन कैसे कहेंगे? यह 'मिकेनिकल चेतन' है। दरअसल चेतन यदि जगत् ने जाना होता तो आज कल्याण हो जाता। वह जाना जा सके, ऐसी स्थिति में है ही नहीं। इस 'मिकेनिकल चेतन' को सचर कहा गया है और दरअसल चेतन को अचल कहा गया है यानी जगत् सचराचर है।

इस देह के अंदर चेतन है ज़रूर लेकिन 'इफेक्टिव चेतन' है। कैसा चेतन है? चार्ज हो चुका चेतन है। अब चार्ज हो चुका चेतन, मूल चेतन तो नहीं कहलाएगा न! कुछ भूल है या नहीं? अभी तक भूल में ही चला है, ऐसा पता चला आपको? सभी मान्यताएँ भूलों से भरी हुई थीं। कुछ 'एक्ज़ेक्टनेस' तो आनी चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : तो पूरे शरीर में जो है, वह 'मिकेनिकल' चेतन है?

दादाश्री : हाँ, 'मिकेनिकल' चेतन।

प्रश्नकर्ता : तो फिर असल चेतन कहाँ है?

दादाश्री : असल चेतन ही पूरे शरीर में है न! और 'मिकेनिकल चेतन', वह तो ऊपर की परत है खाली।

वस्तुस्थिति में लोगों ने जिसे आत्मा माना है, वह 'मिकेनिकल' आत्मा है। हम 'मिकेनिकल' आत्मा नहीं देते हैं। मैं तो आपको अचल आत्मा देता हूँ।

क्रमिकमार्ग में 'मिकेनिकल आत्मा' को ही आत्मा माना हुआ है, 'मिकेनिकल चेतन' को ही आत्मा माना जाता है। जब अहंकार शुद्ध हो जाता है, यानी कि जिस अहंकार में क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं समाते, अहंकार जब ऐसा शुद्ध हो जाता है, संपूर्ण शुद्ध हो जाता है, तब 'शुद्धात्मा' और 'शुद्ध अहंकार' एकाकार हो जाते हैं। यानी कि क्रमिकमार्ग में ऐसा है, लेकिन यह तो 'अक्रम विज्ञान' है। इसलिए यहाँ तो 'ज्ञानीपुरुष' आपके हाथ में शुद्धात्मा ही दे देते हैं, अचल आत्मा ही, नाम मात्र को भी 'मिकेनिकल' नहीं है, ऐसा निर्लेप आत्मा दे देते हैं।

प्रश्नकर्ता : अपने अंदर जो सभान अवस्था रही हुई है, जो अच्छा-बुरा दिखाती है, वह चेतन कहलाती है?

दादाश्री : नहीं। वह तो सारा निश्चेतन चेतन है, वह चेतन है ही नहीं। इसीलिए मैं कह रहा हूँ न कि चेतन को जानना तो अत्यंत मुश्किलवाला खेल है। यह जो जाना है न, वह तो 'निश्चेतन चेतन' है। 'निश्चेतन चेतन' को अंग्रेज़ी में कहना हो तो 'मिकेनिकल चेतन' कह सकते हैं। जिसमें क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार होते हैं, वह पूरा ही 'मिकेनिकल चेतन' है।

यदि ये क्रोध-मान-माया-लोभ, बोलना-करना सबकुछ आत्मा कर रहा है, तो वह सब करने की उसकी आदत जाएगी नहीं। जिसे लोग मानते

हैं, वह 'मिकेनिकल आत्मा' है। 'मिकेनिकल आत्मा' तो बोलता-करता, सबकुछ करता है, वह भ्रांत आत्मा है। असल आत्मा, वही परमात्मा है! उसकी पहचान हुई, तो अपना काम हो जाएगा, वर्ना तब तक काम नहीं होगा।

अब अगर 'मिकेनिकल आत्मा' को खुद का आत्मा मान लेगा तो कब ठिकाना पड़ेगा? इसलिए ही मैं कहता हूँ न कि आत्मा क्या है, वह जगत् ने जाना ही नहीं। और जो आत्मा नहीं है, वहीं पर आरोपण किया है कि यह जो सोचता है वह आत्मा है, यह हिलता है, चलता है, बोलता है, करता है, कूदता है, हँसता है, गाता है, खाता है, पीता है, व्यापार करता है, लड़ता है, सोता है, वह आत्मा है। सामायिक करता है, जप करता है, तप करता है, धर्मध्यान करता है, देवदर्शन करता है, वह आत्मा है। ऐसा ये लोग कहते हैं, तो मेरा क्या कहना है कि वहाँ पर आत्मा बिल्कुल भी है ही नहीं। अब जहाँ पर लेखे की रक़म में ही इतनी सारी बड़ी-बड़ी भूलें होती हैं, उसकी बेलेन्स शीट बन पाएगी क्या?

अतः यह जो व्यापार करता है, बेटी की शादी करवाता है, बेटे की शादी करवाता है, सबकुछ 'मिकेनिकल आत्मा' ही करता है और 'अचल आत्मा' इन सबको देखता रहता है। दोनों का धर्म अलग है। यह 'मिकेनिकल आत्मा' जीवित दिखता ज़रूर है, मन में ऐसा लगता है कि यही चेतन है, लेकिन वास्तव में यह चेतन नहीं है।

और वीतरागों की दृष्टि से आत्मा तो...

यह जो दिखती है न, वह सारी 'मशीनरी' है, वह आत्मा नहीं है। जिसे ये सभी लोग आत्मा कहते हैं उसे हम आत्मा नहीं कहते, और वीतराग भी उसे आत्मा नहीं कहते। वीतराग आत्मा को ही 'आत्मा' कहते थे, और ये सब लोग अनात्मा को आत्मा कहते हैं। अब इन सभी लोगों से हम पूछने जाएँ कि 'साहब, आपको आत्मज्ञान करना बाकी है?' तब कहेंगे, 'आत्मज्ञान तो जानना ही पड़ेगा न!' तब हम कहें, 'आप आत्मा कहते हो न, वह आत्मा नहीं है?' तब वे कहते हैं, 'यह भी आत्मा है, लेकिन

आत्मज्ञान तो जानना ही पड़ेगा न!' यानी इसका अर्थ क्या है फिर? यानी 'वीतरागों' ने जो 'आत्मा' देखा है, वह आत्मा इन लोगों के लक्ष्य में भी नहीं आया कभी भी! अरे, विचार में भी नहीं आया न!! वह आत्मा अचल आत्मा है और ये लोग जिसे आत्मा कहते हैं, वे 'मिकेनिकल आत्मा' को आत्मा कहते हैं। और 'मिकेनिकल आत्मा', वह सच्चा आत्मा नहीं है, वह डिस्चार्ज स्वरूप है। उसे 'डिस्चार्ज चेतन' कहते हैं। एक 'चार्ज चेतन' और दूसरा 'डिस्चार्ज चेतन'। अत: आत्मा है ज़रूर, लेकिन चार्ज और डिस्चार्ज होता रहता है! इसमें यह बात क्या आपको थोड़ी-बहुत समझ में आती है?

अत: जगत् जैसा मानता है आत्मा वैसी वस्तु नहीं है। जो आत्मा को जान ले, उसे इस जगत् में कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। यानी जिन्हें इस जगत् में कुछ भी जानना बाकी नहीं रहा, सिर्फ वही आत्मा को जानते हैं!

हम लोगों ने इसे 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहा है। लोग इसे आत्मा मान बैठे हैं, इसे ही लोग स्थिर करते हैं। स्थिर करने के प्रयत्न करते हैं न? लेकिन यह मूलत: चंचल स्वभाव का हैं, स्वभाव से ही चंचल है, 'मिकेनिकल' है। इसे स्थिर करने का प्रयत्न कर रहे हो, यह 'वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी' है। पूरा ही जगत् इसे आत्मा मानता है और ऐसा मानते हैं कि इसे स्थिर करेंगे तभी काम पूरा होगा। लेकिन यह सचर है और खरा आत्मा तो अचल स्वभाव का है।

प्रश्नकर्ता : इस 'मिकेनिकल' का 'स्विच' दब ही गया है न?

दादाश्री : उसका 'मिकेनिकल' हो ही चुका है, उसमें आपको कुछ ज़्यादा माथाकूट करने की ज़रूरत ही नहीं है। उसकी ज़रूरत का पेट्रोल पूरा भर ही चुका है, वह चलता रहेगा, आपको पेट्रोल नहीं डालना पड़ेगा, कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। आपको इस 'मिकेनिकल' को देखते रहना है। देखना और जानना, वह आत्मा का स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : करना कुछ भी नहीं है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं करना है। जहाँ कुछ भी करने का आया, वही 'मिकेनिकल आत्मा' है।

यानी कि लोग सिर्फ 'मिकेनिकल' आत्मा के पीछे ही पड़े हुए हैं। उसे ही कहते हैं, 'यही आत्मा है! आत्मा के अलावा ये सब और कौन कर सकता है?' वे ऐसा समझते हैं। यह तो आत्मा की हाज़िरी से हो रहा है और उसके खुद के असल गुण, खुद के स्वभाव में ही हैं। परन्तु 'रोंग बिलीफ़' से व्यतिरेक गुणवाली प्रकृति उत्पन्न हो गई है और फिर प्रकृति से सबकुछ चलता है। लेकिन 'रोंग बिलीफ़' ऐसी की ऐसी ही रहती है कि 'मैं यह हूँ और वह मैं हूँ।' सच्ची वस्तु का 'उसे' पता ही नहीं चलता, क्योंकि जन्म से ही ऐसे संस्कार दिए जाते हैं। पहले बच्चा कहा जाता है, फिर उसे नाम दिया जाता है। नाम रखते हैं, उस नाम को फिर भतीजा, चाचा, मामा कहा जाता है और इस तरह सभी भयंकर अज्ञानतावाले संस्कार दिए जाते हैं।

संसार यानी अज्ञानता में ही डालते रहना। इसलिए पिछले जन्म का ज्ञानी हो न, उसे भी इस जन्म में वापस अज्ञानता के प्रतिस्पंदन आते हैं। लेकिन उदय आता है न, तो फिर से वापस जागृति में आ जाता है। लेकिन इस संसार का क्रम ही ऐसा है कि लोग उसे 'रोंग बिलीफ़' फ़िट कर देते हैं।

और शादी नहीं की हो तब तक हम यदि कहें कि, 'आप किसीके पति हो?' तब कहेगा, 'नहीं। मैंने शादी नहीं की है।' और बाद में जब शादी कर लेता है, तब फिर पति बन बैठता है। जब पत्नी मर जाती है तब फिर विधुर भी बन जाता है। यानी ऐसा है यह जगत्। इस संसार की सभी अवस्थाएँ टेम्परेरी है और खुद परमानेन्ट है, लेकिन इसका भान नहीं है।

यह तो जो मानता है कि 'मैं पापी हूँ', वह भी 'मिकेनिकल आत्मा' है, चंचल विभाग का। जो यह संसार चलाता है, संसार में ही रचा-पचा रहता है ऐसा आत्मा, वह सारा 'मिकेनिकल आत्मा' है। उसे खुद को नहीं चलानी हो फिर भी 'मशीन' चलती रहती है। और मूल असल आत्मा

तो अचल है, बिल्कुल भी चंचल नहीं है। उस आत्मा को नहीं जानने से ही कहा है कि 'भाई, आत्मज्ञान जानो।' बड़े-बड़े संतपुरुष भी ऐसा कहते हैं कि, 'आत्मज्ञान जानो।' 'आप संतपुरुष हुए तब भी आप नहीं जानते?' तब कहते हैं, 'नहीं। वह आत्मज्ञान ही जानने जैसा है!' यानी आत्मज्ञान जानना वह तो 'ज्ञानीपुरुष' का काम, और किसीका काम ही नहीं है। कभी भी किसी और ने आत्मज्ञान जाना ही नहीं है। सभी जिसे आत्मा कहते हैं न, वे 'मिकेनिकल आत्मा' की ही बात को समझे हैं। आत्मा जानने के बाद तो उसकी दशा कुछ और ही होती है!

पूरा वर्ल्ड आत्मा का एक अंश भी नहीं चख सकता, ऐसा आत्मा है, अचल आत्मा है और वही खुद परमात्मा है।

यह तो 'आत्मा' शब्द बोलकर लोग पकड़ बैठे हैं कि, 'मैं आत्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ।' अरे, नहीं है तू शुद्धात्मा। दूसरों में तुम्हें शुद्धात्मा दिखता है? तब फिर कोई नुकसान करे तो क्यों चिढ़ जाते हो? यानी ये सारा 'मिकेनिकल आत्मा' ही है। यह जो पूरे जगत् ने अभी खोज की है न, वही 'मिकेनिकल आत्मा' है। या फिर जिसकी खोज कर रहे हैं, वह आत्मा जब मिलेगा, तब वह 'मिकेनिकल आत्मा' ही मिला होगा।

यानी कि मूल शुद्धात्मा के अलावा अन्य सारा सचर भाग है, 'मिकेनिकल' है। और शुद्धात्मा, वह अचल भाग है। शुद्धात्मा ज्ञायक स्वभाव का है और इस सचर का मतलब है 'मिकेनिकल' होना, क्रियाकारी होना। यानी ये दोनों ही चीज़ें अलग हैं। अलग तरह से चलती है, जुदापन का अनुभव बर्ते ऐसा है, लेकिन मात्र उसका भान नहीं है, उस भान को लाने के लिए ही तो हम 'ज्ञान' देते हैं।

मिश्रचेतन, बाद में मिकेनिकल बना

प्रश्नकर्ता : एक जगह पर आपने 'मिश्रचेतन' शब्द कहा है, तो उस 'मिश्रचेतन' और इस 'मिकेनिकल चेतन', इन दोनों में क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : सब एक ही है, लेकिन मिश्रचेतन तो शुरूआत में कहा

जाता है, तब 'मिकेनिकल' नहीं होता। लेकिन जब डिस्चार्ज होता है तब 'मिकेनिकल' बनता है। जब अच्छी तरह से जम जाता है फिर वह डिस्चार्ज स्वरूप बनता है, तब वह 'मिकेनिकल' बन जाता है। पहले 'मिकेनिकल' नहीं होता।

यहाँ पर उल्टे विचार करने लगे तब से मिश्रचेतन तैयार होने लगता है। वह फिर जम जाता है, फिर वह अगले जन्म में फल देता है, तब उस समय 'मिकेनिकल' कहलाता है। अभी 'मिकेनिकल' नहीं कहलाता। मिश्रचेतन कुछ समय बाद 'मिकेनिकल' कहलाता है। पहले 'मिकेनिकल' नहीं कहलाता। जब वह डिस्चार्ज होने लगता है तब 'मिकेनिकल' कहलाता है, यह डिस्चार्ज होता हुआ चेतन है।

इगोइज़म, फिर भी साधन के रूप में

प्रश्नकर्ता : जिसे आप 'निश्चेतन चेतन' कहते हैं कि वह जिसकी अभिव्यक्ति जगत् में सब ओर दिखती है, वह 'निश्चेतन चेतन' ऐसा मानता है कि ''चेतन' को हम समझ सकेंगे, पकड़ सकेंगे, बुद्धि के क्षेत्र में ला सकेंगे।'' उनका यह दावा कितने अंश तक सच साबित हो सकता है?

दादाश्री : उनके पास इसके अलावा और साधन भी क्या है? इसके अंदर 'निश्चेतन चेतन' भले ही हो लेकिन अंदर 'इगोइज़म' है। वह 'इगोइज़म' काम कर रहा है। और 'इगोइज़म' हो तो वह प्राप्ति ज़रूर करेगा, वर्ना सिर्फ 'निश्चेतन चेतन' से 'चेतन' प्राप्त नहीं किया जा सकता।

वस्तुत्वतः 'मैं' क्या है?

जगत् में अस्तित्व का भान जीवमात्र को है कि 'मैं हूँ।' लेकिन वस्तुत्व का भान नहीं है कि 'मैं क्या हूँ?' इसीसे इस जगत् में भ्रांति चल रही है। जब 'मैं क्या हूँ', ऐसा भान हो जाए तब वस्तुत्व का भान हो गया, ऐसा कहा जाएगा। और वस्तुत्व का भान हो जाए तो पूर्णत्व फिर अपने आप होता ही रहेगा। वस्तुत्व का भान भेदविज्ञान से होता है। जड़ और चेतन का भेद डाल दिया जाए, तब खुद के वस्तुत्व का भान होता है।

और इस जगत् में किसीको नास्तिक नहीं कह सकते। नास्तिक तो कहते होंगे? नास्तिक किसे कहते हैं? इस जगत् में कोई नास्तिक जन्मा ही नहीं है और जो 'मैं नास्तिक हूँ' बोलता है, वह उसका विकल्प है। बाकी, नास्तिक कोई जन्मा ही नहीं है। नास्तिक का अर्थ क्या है? कि जिसका अस्तित्व नहीं है उसे नास्तिक कहते हैं। तो तू अस्तित्व का सबूत तो है ही। 'मैं नास्तिक हूँ' ऐसा बोलता है, वह इटसेल्फ ही अस्तित्व का सबूत तो है ही। यह जो बोलता है, वही अस्तित्व कहलाता है। और नास्तिक शब्द तो विकल्प है। विकल्प अर्थात् एक तरह का अहंकार है कि 'मैं नास्तिक हूँ और यह आस्तिक है।'

प्रश्नकर्ता : अभी तो ऐसा है न, जब तक खुद अस्तित्व की स्थापना नहीं कर सकता, 'खुद है' ऐसा एक्ज़ेक्टनेस में 'फील' भी नहीं कर सकता, तब तक खुद का अस्तित्व है, लेकिन वह खुद उसकी प्रतीति नहीं कर सकता न?

दादाश्री : नहीं। जिसे 'मैं हूँ' ऐसा नहीं रहता हो, ऐसा कोई मनुष्य है ही नहीं न! 'मैं हूँ' ऐसा सबको रहता ही है। 'मैं हूँ' यह शब्द ही खुद अस्तित्व को ज़ाहिर करता है।

ऐसा है न, जीवमात्र का खुद का अस्तित्व है और उस अस्तित्व का उसे भान है। इसलिए 'मैं हूँ' ऐसा कुछ भान उसे है और उसका वह भान कभी भी जाता नहीं है। रात को नींद में भी 'मैं ही हूँ' ऐसा भान रहता है। यानी अस्तित्व का भान रहता ही है। अब उसे वस्तुत्व का भान नहीं होता कि 'मैं कौन हूँ?' वह ज्ञान यदि 'ज्ञानीपुरुष' करवाए और वह प्रकट हो जाए, तो फिर वह 'एडवान्स' हो जाता है।

हम क्या कहते हैं कि जीवमात्र को अस्तित्व का भान तो है ही, लेकिन वस्तुत्व का भान नहीं है। वस्तुत्व का भान हो जाए कि 'खुद कौन है' तो फिर पूर्णत्व होता रहेगा। और पूर्णत्व, वह निरालंब दशा है, वह अपने आप ही सहज स्वभाव से होता रहेगा। दूज होने के बाद फिर तीज होती है, चौथ होती है, अपने आप होती ही रहती है न! हम यदि आड़ापन

नहीं करेंगे तो फिर कोई परेशानी नहीं आएगी। उस पौधे को ऐसे उखाड़ देंगे तो फिर परेशानी आएगी। और शायद कभी उखड़ जाए तो वापस लगाना आना चाहिए।

सभी तरह के खुलासे हो जाएँ न, तो आत्मा वैसा ही रहेगा। जितने प्रकार के मनुष्य हैं या फिर जितने प्रकार के जीव हैं, उतने ही प्रकार के आत्मा हैं, लेकिन दरअसल आत्मा इनमें से एक भी नहीं है। ये सभी 'मिकेनिकल आत्मा' हैं। यह बात आपको समझ में आ रही है न?

आत्मज्ञान जानें? या फिर...

प्रश्नकर्ता : जो आत्मज्ञान जानता है, वह पौद्‌गलिक ज्ञान को भी जानता है, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : असल में तो आत्माज्ञान जानना नहीं है, खुद को खुद के स्वरूप के भान में आना है। खुद को जो अभानता है, खुद के स्वरूप का भान नहीं है, उसका भान करना है। यह तो शब्द से बोलते हैं कि 'जानना है', बाकी खुद को खुद के भान में आना है। यानी 'आत्मज्ञान' तो अपने सभी शास्त्रज्ञानी जानते ही हैं, लेकिन भान नहीं हो पाता। वे सबकुछ जानते हैं, तमाम शास्त्र कंठस्थ हैं कि 'आत्मा ऐसा होता है, ऐसा ही होता है' ऐसा सभीकुछ जानते हैं, लेकिन खुद को 'खुद का' भान नहीं हो पाता।

...उसका आसान तरीक़ा क्या है?

इसमें दो ही चीज़ें हैं, आत्मा और *पुद्‌गल*। जिसने आत्मा जाना हो वह *पुद्‌गल* को समझ गया और *पुद्‌गल* को जान ले तो आत्मा को समझ गया। लेकिन *पुद्‌गल* को समझ जाए ऐसा हो नहीं सकता, वह बहुत आसान चीज़ नहीं है। आत्मा को जानना, उसे 'ज्ञानीपुरुष' के आधार पर जाना जा सकता है।

वेदांतियों ने *पुद्‌गल* को जानने का प्रयत्न किया है, *पुद्‌गल* को जानने के लिए चार वेद लिखे हैं। क्योंकि *पुद्‌गल* को जानकर, फिर आत्मा को

जाना जा सकता है। लेकिन उसमें फिर थक गए, तब जाकर चार वेदों ने कहा कि 'दिस इज़ नॉट देट, दिस इज़ नॉट देट।' यानी कि वेदांती लोग *पुद्गल* से इसका पता लगाने गए थे। जब कि केवळज्ञानी उस तरफ़ से खोजते-खोजते आए कि 'वास्तव में हम कौन है' उसका पता लगाओ और फिर बाकी बचा, वह सारा ही *पुद्गल*।

अतः सिर्फ *पुद्गल* को समझा जा सके ऐसा नहीं है, वह तो बहुत गहन वस्तु है। उसे तो 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा अन्य कोई भी समझ नहीं सकता। इसका अर्थ इतना अधिक गहरा है और इस *पुद्गल* की कारामत कुछ और ही प्रकार की है, यह बात ही अलग है। पूरी ही दुनिया उलझन में है। देखो न, 'एक *पुद्गल*' ने ही पूरे जगत् को उलझा रखा है। बहस पसंद नहीं है, फिर भी करनी पड़ती है।

जो संपूर्ण *पुद्गल* को जान ले, वह चेतन को जान लेता है या फिर संपूर्ण चेतन को जो जानता है, वह *पुद्गल* को जान लेता है। जैसे यदि गेहूँ को जान ले, तो कंकड़ को पहचान सकता है और कंकड़ को जान ले तो गेहूँ को पहचान जाएगा, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : यानी दोनों में से किसी भी एक रास्ते से पहुँच सकते हैं?

दादाश्री : हाँ। किसी भी रास्ते से पहुँच सकते हैं। कोई भी रास्ता पसंद करे तब भी काम चल जाएगा, इसलिए मैं इन लोगों से कहता हूँ न, क्योंकि कुछ लोग आते हैं, वे कहते हैं कि, 'साहब, मैं तो अज्ञान में ही हूँ।' अरे, अज्ञान में भी कहाँ है? यदि संपूर्ण अज्ञान हो जाए तो भी ज्ञान का पता चल जाएगा। यह तो संपूर्ण अज्ञान भी नहीं हुआ। यह तो अर्धदग्ध है। यानी क्या? कि एक लकड़े का आधा भाग कोयला बन गया और आधा भाग लकड़ी ही है, तब लोग क्या कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : अर्धदग्ध।

दादाश्री : हाँ। तब यदि लकड़ी के व्यापारी से कहें कि, 'भाई, इसे ले ले न।' तब वह कहता है, 'नहीं। इसका मुझे क्या करना है?' और

कोयले के व्यापारी से कहें, तब वह कहता है, 'हमें लकड़े का क्या करना है?' यानी उसे कोई नहीं लेता, उसका कोई ग्राहक ही नहीं है, लकड़ेवाला भी नहीं लेता और कोयलेवाला भी नहीं लेता। ऐसे ही यह पूरा जगत् अर्धदग्ध प्रकार से चल रहा है।

संपूर्ण अज्ञान जान ले, तब भी आत्मा मिल जाए

और पूरे दिन चिंता में ही समय बिताता है। और 'ज्ञान' तो वहाँ अटारी पर। अरे! अज्ञान होता तो भी अच्छा था। इस हिन्दुस्तान में एक भी ऐसा आदमी मेरे पास ढूँढकर लाओ कि जिसे अज्ञान हुआ है। अज्ञान हुआ होता तो भी मैं उसे कहता कि, 'भाई, यह किनारा समझ गया है, इसलिए उस किनारे को समझ जाएगा।' लेकिन उस किनारे को भी नहीं समझा है। जिस किनारे पर खड़ा है, वहाँ का भी उसे भान नहीं है कि कौन-से किनारे पर है। यानी कि अज्ञानी भी नहीं बन पाया। या तो गेहूँ को पहचान ले या फिर कंकड़ को पहचान ले, तो दोनों को पहचान जाएगा।

इसलिए चार वेदों ने कहा है न, कि 'दिस इज़ नॉट देट, दिस इज़ नॉट देट, न इति, न इति।' लेकिन उस अज्ञान को भी पूरा नहीं किया। यदि पूरा किया होता न, 'न इति' कहने की बारी ही नहीं आती, तो ज्ञान आकर खड़ा रहता। लेकिन वहाँ से फिर थक गए, यह 'न इति, न इति' कहकर। वेद तो ज्ञान और अज्ञान का विवरण करते हैं। लेकिन अज्ञान यदि पूरा होने दिया होता तो आत्मा वहाँ पर हाज़िर हो जाता, लेकिन उसे पूरा नहीं होने दिया।

यथार्थ रूप में जगत्

सभी तरह की बातचीत करो, खुले दिल से, यह जगत् 'जैसा है वैसा' यहाँ पर बताया जाएगा। 'जैसा है वैसा'। 'नहीं है' उसे 'ना' कहेंगे और 'है' उसे 'है' कहेंगे। जो 'नहीं है' उसे हमारे द्वारा 'है' नहीं कहा जा सकता। और जो 'है' उसे 'नहीं' नहीं कहा जा सकता। एक-एक शब्द के लिए हम ज़िम्मेदार हैं। और ठेठ तक की बात हमारे पास है, क्योंकि एक सेकन्ड के लिए भी इस देह का मैं मालिक नहीं बना हूँ, इस मन

का मालिक नहीं बना। यह वाणी-यह 'ओरिजिनल टेपरिकार्ड' बोल रहा है, मैं नहीं बोल रहा। यह 'ओरिजिनल टेपरिकार्ड' वक्ता है, आप श्रोता हो, मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, यानी यह व्यवहार अलग ही प्रकार का है। अतः जब यह सारा ही 'सोल्युशन' आ जाए और जब एक भी 'सोल्युशन' बाकी नहीं रहे, तब जानना कि ज्ञान प्रकट हो गया। समाधान ही रहे, हमेशा निरंतर समाधान ही रहे, उसे ही ज्ञान कहते हैं। किसी भी स्थिति में, किसी भी संयोग में, किसी भी काल में जो समाधान में रखे, वही ज्ञान है। अन्य सब अज्ञान कहलाता है। यानी आपको जो बातचीत करनी हो, वह करो सारी। 'ज्ञानीपुरुष' तो चार वेद के *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) कहलाते हैं।

और किसी भी प्रकार का प्रश्न पूछा जा सकता है, क्योंकि यह हम देखकर बोलते हैं। एक भी शब्द पुस्तक से पढ़ा हुआ नहीं बोलते। मैं देखकर बोलता हूँ इसलिए लोगों के काम आता है। और फिर, मैं बोलनेवाला नहीं हूँ, 'टेपरिकार्ड' बोलता है, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ।

वेद थ्योरिटिकल, विज्ञान प्रेक्टिल

हम चार वेदों के ऊपरी हैं। चार वेद पढ़ने के बाद में वेद यह कहते हैं कि 'दिस इज़ नॉट देट'।

प्रश्नकर्ता : वेद और ज्ञान, ये दोनों शब्द अलग-अलग क्यों हैं?

दादाश्री : वेद बुद्धिजन्य हैं, क्रिया सहित हैं, त्रिगुणात्मक हैं और ज्ञान त्रिगुणात्मक नहीं होता, बुद्धिजन्य नहीं होता और स्वभाव से चेतन भाव ही होता है। ज्ञान हमेशा ही चेतन होता है।

प्रश्नकर्ता : तो वेद वाङ्गमय में ज्ञान तो सबकुछ भरा हुआ ही है न?

दादाश्री : वह ज्ञान मोक्ष के लिए काम में नहीं आएगा।

वह साधनज्ञान है। साध्यज्ञान नहीं है उसमें। उसमें साधनज्ञान है, अतः बुद्धिजन्य है। यानी वेद इटसेल्फ कहते हैं कि 'दिस इज़ नॉट देट।' तू जिस आत्मा को ढूँढ रहा है, वह यहाँ पर नहीं हो सकता। वह अवर्णनीय

है, अवक्तव्य है, वह शब्दों में नहीं होता। और वेद शब्दरूपी हैं। इसलिए 'गो टु ज्ञानी' कि जहाँ पर आत्मा हाथ में आ सकता है। 'दिस इज़ देट' कहेंगे वे।

वेद, वह बुद्धिजन्य ज्ञान है, और यह ज्ञान चेतनज्ञान है। बुद्धिजन्य ज्ञान यानी कि, बुद्धि और ज्ञान में डिफरेन्स क्या है? कि 'डायरेक्ट नॉलेज' को ज्ञान कहते हैं। 'इन्डायरेक्ट नॉलेज', उसे बुद्धि कहते हैं। वेद शब्दरूपी ज्ञान है, इसलिए बुद्धिगम्य ज्ञान है। वेद 'थ्योरिटिकल' हैं और ज्ञान 'प्रेक्टिकल' है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि अनुभवगम्य?

दादाश्री : हाँ। अनुभवगम्य ही सच्चा ज्ञान है। बाकी, दूसरा सारा तो 'थ्योरिटिकल' है। वह 'थ्योरिटिकल' शब्द के रूप में होता है, और चेतनज्ञान तो शब्द से आगे, बहुत आगे है। वह अवक्तव्य होता है, अवर्णनीय होता है। आत्मा का वर्णन हो ही नहीं सकता, वेद कर ही नहीं सकते।

फिर भी वेदों का मार्गदर्शन तो एक साधन है। वह साध्यवस्तु नहीं है। जब तक 'ज्ञानीपुरुष' नहीं मिलेंगे, तब तक कभी भी काम नहीं हो पाएगा।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और वेद, इन दोनों का जो भेद है न, वह शाब्दिक भेद है? इसमें कोई बौद्धिक कसरत है?

दादाश्री : बौद्धिक ही है।

वेद बौद्धिक ही हैं, त्रिगुणात्मक हैं और सच्चा ज्ञान, वह त्रिगुणात्मक नहीं होता, वही विज्ञान है। विज्ञान तो दरअसल ज्ञान है और यह 'ज्ञान', वह उस तक पहुँचने का साधन है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, लेकिन विज्ञान और ज्ञान दोनों शब्दों का उपयोग वेद में एक ही जगह पर किया गया है।

दादाश्री : उसमें विज्ञान का उपयोग हो ही नहीं सकता। वेद तो

विज्ञान के लिए मार्गदर्शन देते हैं, इशारा करते हैं। बाकी विज्ञान तो खुद ही अवर्णनीय है, अवक्तव्य है। वह ऐसे पुस्तकों में नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'सत्यम् ज्ञानम्' कहा है न! 'अनंतम् ब्रह्म्' ऐसा भी कहा है।

दादाश्री : शब्द जो भी हैं, वे तो ठीक हैं न! बाकी वेद त्रिगुणात्मक हैं, उन्हें और कुछ लेना-देना नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञान त्रिगुणात्मक है ही न?

दादाश्री : जो त्रिगुणात्मक ज्ञान है, उसे बुद्धि कहते हैं। वेद तो एक ही काम करते हैं कि संसार का डेवलपमेन्ट करते हैं। धीरे-धीरे बुद्धिजन्य डेवलपमेन्ट करते हैं और फिर साथ ही साथ यदि कोई 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तो उसका काम हो जाता है, बस निमित्त मिलना चाहिए। यदि निमित्त नहीं मिले तो काम नहीं हो पाता।

ये वेद क्या कहते हैं कि इनमें सारा ही बुद्धिजन्य ज्ञान आ जाता है, उसे वेदांत कहा जाता है। अब ज्ञानजन्य ज्ञान अर्थात् विज्ञान, अब उसमें तुझे पदार्पण करना है।

अनिवार्यता, 'ज्ञानी' की

प्रश्नकर्ता : मनुष्यानंद से ब्रह्मानंद तक जाने के लिए वेद में बारह सीढ़ियाँ बताई गई हैं, उस एक-एक सीढ़ी पर चढ़ने के लिए वेद में पूरा वर्णन है।

दादाश्री : अंतिम सीढ़ी तक पहुँचकर इतना ही जान पाते हैं, बारहवीं सीढ़ी पर, कि 'शक्कर मीठी है', इतना जान पाते हैं, लेकिन मीठी का मतलब क्या है, वह नहीं जान पाते।

जब उस बारहवीं सीढ़ी पर पहुँचते हैं, तब 'यह चीज़ बिल्कुल मीठी है और इसके अलावा और किसीकी ज़रूरत नहीं है' ऐसा उसे यक़ीन हो जाता है, लेकिन मीठी का मतलब क्या है? तब वह इसे ढूँढता है।

तो वहाँ पर ज्ञानीपुरुष से मिलता है, वह निमित्त मिल जाए, तब वे उसके मुँह में रख देते हैं कि 'दिस इज़ देट।'

प्रश्नकर्ता : अब आप बताइए कि ज्ञान के अंतर्गत वस्तु है या वेद के अंतर्गत ज्ञान है? यानी कि ज्ञान वेद में है या वेद ज्ञान में हैं?

दादाश्री : ज्ञान वेद में है, वेद ज्ञान में है लेकिन 'विज्ञान' वेद के भी बाहर है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और विज्ञान दोनों वेद में बताए गए हैं।

दादाश्री : वे सभी शब्द दिए हुए हैं। मूल वस्तु नहीं है। 'मीठी है' ऐसा लिखा हुआ है, अनुभव नहीं लिखा है! 'थ्योरिटिकल' में अनुभव नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ऋषि-मुनियों ने अनुभव किया है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह अनुभव यों ही नहीं लिया जा सकता। वह अनुभव, अनुभवी पुरुष के माध्यम से, निमित्त से होता है, वर्ना नहीं हो पाता। हर कोई व्यक्ति नहीं कर सकता, बीच में निमित्त के रूप में 'ज्ञानीपुरुष' हैं।

प्रश्नकर्ता : वेद में भी है कि गुरु के बिना तो चलेगा ही नहीं।

दादाश्री : जो-जो बात गुरु के बिना की जाती है न, वे सभी पागल जैसी बाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह जो सिद्ध हो चुकी हक़ीक़त है, उस सिद्ध हो चुकी हक़ीकतवाले जो ऋषि-मुनि हैं, वे अभी अपने यहाँ नहीं हैं।

दादाश्री : वह सिद्ध की हुई वस्तु कैसी है कि सहज है, सुगम है लेकिन उसकी प्राप्ति दुर्लभ है। क्योंकि प्राप्त पुरुष मिलने चाहिए, तब जाकर उसकी प्राप्ति होगी। प्राप्त पुरुष कैसे होते हैं कि खुद मुक्त पुरुष होते हैं, स्वतंत्र पुरुष होते हैं, जिन्हें संसार का एक भी विचार आता ही नहीं, स्त्री संबंधी विचार नहीं आते, खुद के अस्तित्व संबंधी विचार नहीं

आते, *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन) जिनमें नहीं होता। जहाँ *पोतापणुं* नहीं होता, वहाँ पर काम हो सकता है।

आप जैसे लोग आकर मुझसे कहते हैं कि, 'शक्कर मीठी है, ऐसा हमें चखाइए।' तब फिर मैं मुँह में रख देता हूँ कि 'दिस इज़ देट।' तब से फिर वह निरंतर आत्मामय हो जाता है, फिर एक क्षण के लिए भी वह इधर-उधर नहीं होता। निरंतर आत्मामय, चौबीसों घंटे, संपूर्ण जागृति! यह तो पूरा जगत् खुली आँखों से सो रहा है। तत्व विचारकों के अलावा पूरा जगत् खुली आँखों से सो रहा है।

शब्द भी अनित्य

प्रश्नकर्ता : अब कुछ लोग कहते हैं कि शब्द नित्य है और कुछ लोग कहते हैं कि शब्द अनित्य है, तो इसमें से अब सच क्या है?

दादाश्री : शब्द अनित्य है।

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि शब्द नित्य है।

दादाश्री : कितने भी कहते हों, लेकिन मैं आपको यह हमेशा के लिए इतना सत्य बता देता हूँ, फिर यदि वे कहें तो हमें हर्ज नहीं है, दुराग्रह नहीं है किसी भी प्रकार का।

इस दुनिया में जो सत्य है न, वह भी सत्य नहीं है, वह भी असत्य है। सत् हमेशा अविनाशी होता है और स्वाभाविक होता है। और यह शब्द स्वाभाविक नहीं है। शब्द तो जब वस्तु में कुछ टकराता है तभी होता है। अतः शब्द तो संयोग है, दो-तीन वस्तुओं के संयोग से बनता है इसलिए वह स्वाभाविक वस्तु नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'शब्द अनित्य है' यह बात तो ठीक है। अब वेद शब्दों से बना हुआ है, फिर भी जो वेद है, उसे नित्य माना जाता है।

दादाश्री : उस मानी हुई बात में कुछ भी नहीं है। नित्य किसे कहते हैं? कि जो अनिवाशी हो, हमेशा के लिए हो और वह खुद वस्तु स्वरूप

हो। जिसमें कुछ भी 'चेन्ज' नहीं होता हो, एक ही स्वभाव का हो, जिसका स्वभाव नहीं बदलता। आत्मा अविनाशी है। यह आकाश तत्व अविनाशी है। *पुद्‌गल,* ये परमाणु जो तत्व हैं, जो अणु का छोटे से छोटा भाग, अविभाज्य भाग परमाणु है, वह अविनाशी तत्व है। गति सहायक तत्व गति करवाता है उन सभी को, वह अविनाशी है। और जो स्थिति करवाता है, वह स्थिति सहायक तत्व, वह अविनाशी है। और काल भी अविनाशी तत्व है। यानी कि निर्विकल्पी सत्य तो ये छह वस्तुएँ हैं इस दुनिया में। छह ही वस्तुएँ निर्विकल्पी सत्य हैं, जिनमें कोई 'चेन्ज' नहीं होता, जो स्वाभाविक हैं।

साधन भी समाए विकल्प में

प्रश्नकर्ता : यह जो वेद 'टेक्नोलोजी' है, वह 'अप्रोच' बताती है, इतना तो सत्य है?

दादाश्री : वे हमारे लिए 'हेल्पिंग' हैं, उल्टे गए हैं इसलिए जगह पर आने के लिए वे 'हेल्पिंग' है। यदि उल्टे नहीं गए होते तो 'हेल्पिंग' नहीं था।

ये जो वेद हैं न, इन्हें लोग भले ही जो कुछ भी नाम देते हों, लेकिन मूल ऋषभदेव भगवान के मुख से ही हैं ये।

प्रश्नकर्ता : यह बात ठीक है। अब यह जो ॐकार है, उसके अंदर क्या सत्य छुपा हुआ है?

दादाश्री : ॐकार में बहुत सत्य छुपा हुआ है, लेकिन वह भी कौन-सा सत्य है? विकल्पी सत्य है। इसके बावजूद यह विकल्पी सत्य निर्विकल्प की तरफ़ ले जाए, ऐसा है। यह रास्ता है, यह रोड-वे है।

प्रश्नकर्ता : अब साध्य पूर्ण है, ब्रह्म पूर्ण है। साधन विकल्पी हैं, वे भी देशकाल का अनुसरण करके पूर्णभाव धारण करते हैं या नहीं?

दादाश्री : दूसरे संयोग इकट्‌ठे हो जाएँ तो हो सकता है। लेकिन आखिर में एक संयोग निर्विकल्पी गुरु का होना चाहिए, लेकिन वे

'ज्ञानीपुरुष' होने चाहिए, जिन्हें वर्ल्ड में कोई भी चीज़ जाननी बाकी नहीं रही हो। इस वर्ल्ड में ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि जो उन्हें जाननी बाकी हो।

प्रश्नकर्ता : निर्विकल्पी पुरुष कैसे होते हैं?

दादाश्री : निर्विकल्पी पुरुष में बुद्धि का छींटा तक नहीं होता। बुद्धि का एक छींटा भी नहीं होता, इसीलिए उनका नाम निर्विकल्प पुरुष।

प्रश्नकर्ता : तो गीता में क्षर पुरुष और अक्षर पुरुष, दो का वर्णन है, वे अक्षर पुरुष अर्थात् निर्विकल्प पुरुष?

दादाश्री : क्षर तो यह देह ही है और अक्षर विकल्पी है। और जो क्षर-अक्षर से परे है, वह निर्विकल्प।

विकल्पों के कारण चूक जाते हैं अंतिम मौका

बाकी मैं तो आत्मा को जानता हूँ। आप कहो कि मुझे आत्मा दे दीजिए, तो मैं आत्मा दे देता हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे तो व्यवहार में रहना है।

दादाश्री : तो व्यवहार में रहकर, लेकिन व्यवहार तो आदर्श व्यवहार होना चाहिए। आत्मा प्राप्त हुआ कब कहा जाएगा? खुद के घर का व्यवहार पूर्ण आदर्श हो, तभी आत्मा प्राप्त होगा। वर्ना आत्मा प्राप्ति की ये जो बातें करते हैं न, ऐसी गुफा जैसी वस्तु नहीं है यह। आत्मा, वह गुफा की वस्तु नहीं है। गुफा तो 'ऑन ट्रायल' वस्तु है। वर्ना तो जहाँ पर खुद का व्यवहार सुंदर हो, आदर्श हो, वहाँ पर क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते, पड़ोसी के साथ संबंध अच्छे होते हैं, घर में 'वाइफ' के साथ संबंध अच्छे होते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा को ढूँढना नहीं होता, उसका तो स्वयं दर्शन हो जाता है न?

दादाश्री : ऐसा है न, कि इन लोगों ने जहाँ पर रास्ता टूट गया वहाँ पर सारे 'ऑर्नामेन्टल' रास्ते बनाए। मूल रास्ता, जब बारह-बारह अकाल पड़े थे, तब यह रास्ता पूरा ही टूट गया था, तब 'ऑर्नामेन्टल' रास्ते बनाए।

वहाँ पर ऐसा कहा गया कि 'सत्य का शोधन अपने आप ही हो सकता है!' लो! बाकी सबकुछ तो कॉलेज में जाएँ, तब होता है और इस सत्य को घर पर ही ढूँढ सकते हैं।

बाकी विकल्पी कभी भी निर्विकल्पी बन ही नहीं सकता। विकल्पी बीज कभी भी निर्विकल्पी बन ही नहीं सकता और बेकार भटकता रहता है। निमित्त की ज़रूरत है। विकल्पी और निर्विकल्पी, दोनों दृष्टिफेर हैं। जब कि यदि निर्विकल्पी की दृष्टि मिल जाए, कोई कर दे, तो फिर वह निर्विकल्प हो जाता है। 'दृष्टि' को ही चेन्ज करने की ज़रूरत है। इसमें अभ्यास से नहीं होगा। यदि अभ्यास से होना होता, तब तो अभ्यास कर देते। लेकिन पूरी दृष्टि ही अलग है।

यानी कि जब खुद का स्वरूप जान ले तब निर्विकल्प बनता है। निर्विकल्प बन जाए तब अहंकार और ममता चले जाते हैं, बस। अहंकार और ममता चले गए, तो व्यतिरेक गुण चले गए सारे। ममता, वह लोभ और कपट है, अहंकार क्रोध और मान है। ये चार गुण इस तरह से उत्पन्न हुए थे, 'ज्ञानीपुरुष' इन दोनों चीज़ों को जुदा कर देते हैं, डिविज़न कर देते हैं, आत्मा और अनात्मा में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल देते हैं, तब फिर दोनों अलग हो जाते हैं। बाकी तो हैं ही अलग, अलग ही हैं।

अबुध होने पर, अभेद हुआ जाएगा

प्रश्नकर्ता : लेकिन वेद तो अभेद का निरूपण करते हैं न?

दादाश्री : हाँ। लेकिन अभेद का निरूपण तो हर एक ने किया ही है न! लेकिन अभेद प्राप्त होना मुश्किल है। जब तक वेदों को घोलकर पी नहीं जाए, तब तक अभेद नहीं हो सकता। क्योंकि जब तक बुद्धि नहीं जाती तब तक अभेद नहीं हुआ जा सकता। बुद्धि भेद डालती है। भेद कौन डालता है। जो बुद्धिवाले हैं न, वे ही भेद डालते हैं।

अब यदि आपके इस पूरे गाँव को अबुध बनाना हो तो कितना समय लगेगा? बुद्धि ही नहीं हो ऐसा मनुष्य बनाना हो तो कितना समय लगेगा? तुरन्त हो जाएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं होगा।

दादाश्री : तो तब तक अभेद होगा नहीं। जब बुद्धि जाएगी तब अभेद हुआ जाएगा। बुद्धि भेद डालती है, 'यह मेरा और यह तुम्हारा' बुद्धि ही मनुष्य को 'इमोशनल' करती है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि 'इमोशनल' करती है या हृदय 'इमोशनल' करता है।

दादाश्री : नहीं, बुद्धि ही। हृदय तो अबुध में भी होता है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि को शास्त्रों ने निश्चयात्मिका कहा है न, निश्चय करनेवाली?

दादाश्री : हाँ। बुद्धि निर्णय करनेवाली है, फिर भी वह 'इमोशनल' कर देती है।

स-इति तो भेदविज्ञान से ही

आत्मा वेद में समा सके, ऐसी वस्तु ही नहीं है। वेद में जो शब्द हैं, वे स्थूल भाषा के हैं और आत्मा सूक्ष्मतम है। दोनों का मेल किस तरह से पड़ेगा? एक स्थूल और एक सूक्ष्मतम, वेद किस तरह से वर्णन कर सकेंगे? आत्मा अवक्तव्य है और अवर्णनीय है, निःशब्द है, इसलिए वेद में कभी भी नहीं उतर सकता। जब कि कहते हैं, 'वेद ही इस जगत् की सभी वस्तुओं को जानते हैं न? तो फिर इस वेद से पार कौन जान सकेगा?' तब कहे, 'वेद से नीचे का तो कोई जान नहीं सकता। वेद खुद भी नहीं जानते। लेकिन वेद से ऊपर के जो होते हैं, सिर्फ वे ज्ञानीपुरुष ही जानते हैं कि आत्मा क्या है, वह!' 'ज्ञानीपुरुष' ऐसा भी कहते हैं कि, 'दिस इज़ देट, दिस इज़ देट।'

प्रश्नकर्ता : 'दिस इज़ नॉट देट' में से 'दिस इज़ देट' में किस तरह से जाया जा सकता है?

दादाश्री : 'दिस इज़ नॉट देट' में से 'दिस इज़ देट' में जाने के

लिए भेद विज्ञान की ज़रूरत पड़ती है कि आत्मा यह नहीं है, यह है, यह नहीं है, यह है। और वह भेद विज्ञान, 'ज्ञानी' के अलावा और किसीके पास नहीं होता।

जब-जब 'ज्ञानी' जन्म लेते हैं तब कुछ लोगों को (साथ में) ले जाते हैं। लेकिन यह 'अक्रम विज्ञान' है। 'विज्ञान' अर्थात् चेतन है यह। अतः आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। यह ज्ञान ही सावधान करता है आपको। यह ज्ञान ही इटसेल्फ काम करता रहता है। यह 'अक्रम विज्ञान' है।

वेद, वे ज्ञान स्वरूप हैं, और वेत्ता विज्ञानस्वरूप है। ज्ञान क्रियाकारी नहीं होता और विज्ञान क्रियाकारी होता है।

प्रश्नकर्ता : जो 'विज्ञान स्वरूप' है, उसका वर्णन करते-करते वेद भी थक गए!

दादाश्री : हाँ, थक गए! क्योंकि वेद वेत्ता को किस तरह से समझ सकेंगे? वेत्ता वेद को समझ सकता है, लेकिन वेद वेत्ता को समझे, वह किस तरह से 'पॉसिबल' हो सकेगा? वेत्ता का अर्थ क्या है? जाननेवाला! वह ज्ञाता-दृष्टा है। वेत्ता, यह शब्द यों देखने में छोटा दिखता है न!

आत्मप्राप्ति, किसके पास से संभव?

यहाँ पर सबकुछ पूछा जा सकता है, चार वेदों की बातें पूछी जा सकती हैं और चार अनुयोगों की बातें भी पूछी जा सकती हैं। जैनों की, वेदांत की, कुरान की सभी बातें यहाँ पर पूछी जा सकती हैं। क्योंकि जो वेद से भी ऊपर जा चुके हैं, उनसे वेद की बात पूछी जा सकती है!

प्रश्नकर्ता : वेद से ऊपर किस तरह से जाया जा सकता है?

दादाश्री : वह तो जब 'ज्ञान प्रकाश' हो जाए, तभी वेद से ऊपर जाया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह बुद्धिगम्य वस्तु नहीं है?

दादाश्री : नहीं। यह बुद्धिगम्य वस्तु नहीं है। जितनी बुद्धिगम्य वस्तुएँ

थीं, उतनी वेद में हैं, और बुद्धिगम्य से आगे जाने के लिए 'गो टु ज्ञानी' कि जिनमें बुद्धि बिल्कुल है ही नहीं। जो अबुध कहलाते हैं ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' के पास जा तो तुझे आत्मा प्राप्त होगा, वर्ना आत्मा प्राप्त नहीं होगा। बुद्धिवाले के पास आत्मा नहीं होता। आत्मा है तो बुद्धि नहीं है और बुद्धि है, तो आत्मा होगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : जैन धर्म के अध्ययन से आत्मज्ञान होता है, आपका ऐसा कहना है?

दादाश्री : नहीं। और जो वेदांत के चार वेद हैं, उनके अध्ययन से भी आत्मज्ञान नहीं होता। चार वेद हैं, वे सब जब पूरे हो जाते हैं, तब इटसेल्फ कहते हैं कि 'दिस इज़ नॉट देट।' तू जिस आत्मा को ढूँढ रहा है, वह इनमें नहीं है। इसलिए 'गो टु ज्ञानी।' आत्मा पुस्तक में उतारा जा सके ऐसा नहीं है। आत्मा अवर्णनीय है, अवक्तव्य है, यानी कि पुस्तक में उतारा जा सके ऐसा है ही नहीं। अतः यह 'ज्ञानीपुरुष' का ही काम है। जिनका आत्मा प्रकट हो चुका है, सिर्फ वे ही आत्मा बता सकते हैं। वर्ल्ड में अन्य किसी और के बस का यह काम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : बता नहीं सकते लेकिन अभ्यास करवा सकते हैं न?

दादाश्री : सिर्फ डायरेक्शन दे सकते हैं, इशारा दे सकते हैं। यानी कि आभास जैसा हो सकता है, लेकिन मूल वस्तु का साक्षात्कार नहीं करवा सकते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन खुद के आत्मा का खुद साक्षात्कार कर सकता है न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। 'ज्ञानीपुरुष' के बिना साक्षात्कार नहीं हो सकता, किसीका भी नहीं हुआ है। जो मुक्त हैं, वे ही छुड़वा सकते हैं । वही इस जंजाल में बँधा हुआ है, तो फिर हमें किस तरह से छुड़वा सकेगा? अतः तरणतारण पुरुष की आवश्यकता है। जो खुद तर चुके हैं और अनेकों को तारने में समर्थ हैं, वहाँ पर अपना काम होगा।

प्रश्नकर्ता : तो श्रुतवाणी के अभ्यास से आत्मज्ञान होता है?

दादाश्री : श्रुतवाणी वगैरह सब 'हेल्पिंग' करनेवाली चीज़ है। श्रुतवाणी से चित्त की मज़बूती होती है, दिनों दिन चित्त निर्मल होता जाता है। और जब चित्त निर्मल हो जाए और 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ, तो वह ज्ञान को जल्दी से, ज़्यादा अच्छी तरह से पकड़ सकेगा।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान गुरु से मिलता है, लेकिन जिस गुरु ने खुद आत्मसाक्षात्कार कर लिया हो, उनके ही हाथों ज्ञान मिल सकता है न?

दादाश्री : वे 'ज्ञानीपुरुष' होने चाहिए और फिर सिर्फ आत्मसाक्षात्कार करवाने से कुछ नहीं होगा। 'ज्ञानीपुरुष' तो 'यह जगत् किस तरह से चल रहा है? खुद कौन है? यह कौन है?' ऐसे सभी स्पष्टीकरण देते हैं तब काम पूरा हो, ऐसा है।

वर्ना, पुस्तकों के पीछे पड़ते रहते हैं, लेकिन पुस्तकें तो 'हेल्पर' हैं। वह मुख्य वस्तु नहीं है। वह साधारण कारण है, वह असाधारण कारण नहीं है। असाधारण कारण कौन-सा है? 'ज्ञानीपुरुष'!

सीढ़ी एक और सोपान अनेक

प्रश्नकर्ता : जैनदर्शन, वेदांत, अद्वैतवाद, सोहम्, अहम् ब्रह्मास्मि, एकोहम् बहुस्याम, सर्व इदम् ब्रह्म, ये सब एक ही हैं?

दादाश्री : जैसे सीढ़ी और सोपान एक ही हैं, वैसे ही ये सब एक ही हैं। लेकिन सोपान के रूप में अलग-अलग माने जाते हैं।

न द्वैत, न अद्वैत, आत्मा द्वैताद्वैत

प्रश्नकर्ता : अद्वैत और द्वैत को समझना है, आप समझाइए।

दादाश्री : अद्वैत का मतलब आप क्या मानकर बैठे हो, वह मुझे बताओ।

प्रश्नकर्ता : यह 'मैं ही एक सत्य हूँ, मेरे अलावा अन्य कोई सत्य

नहीं है। मैं जो हूँ वही सत्य है, अन्य जो कुछ भी इसमें प्रतिभासित होता है, वह सत्य नहीं है', उसे अद्वैत कहता हूँ।

दादाश्री : तो फिर अब सत्य खोजने का रहा ही कहाँ? यदि 'मैं ही सत्य हूँ' तो फिर सत्य को ढूँढने का रहा ही नहीं। तो फिर पुस्तक किसलिए पढ़ते हो? आपका सिद्धांत यही कहता है न, 'मैं ही सत्य हूँ'?

प्रश्नकर्ता : सिद्धांत की निष्ठा के लिए, सिद्धांत दृढ़ हो उसके लिए पुस्तक पढ़नी है न?

दादाश्री : लेकिन यह सिद्धांत तो ठीक नहीं कहलाएगा। क्या नाम है आपका?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : तो आप चंदूभाई हो, यह सत्य है?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई तो नाम है, और नाम, वह सत्य नहीं है।

दादाश्री : तब क्या सत्य है? आप सत्य बनकर फिर बोलो।

प्रश्नकर्ता : सत्य तो शब्द में आता ही नहीं न!

दादाश्री : फिर भी तब आप कौन हो? 'चंदूभाई बेअक़्ल हैं' कहें तो आपको बुरा लगता है। यदि आप पर असर हो जाता है, तो आप चंदूभाई ही हो।

प्रश्नकर्ता : जब तक असर होता है, तब तक 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा है?

दादाश्री : हाँ। और गालियाँ दे फिर भी असर नहीं हो, मारे फिर भी असर नहीं हो, जेब कट जाए फिर भी असर नहीं हो, तब मैं जानूँगा कि अद्वैतवाद के कोने में आ गए हैं। यह तो अभी तक अद्वैत को समझता ही नहीं।

अब आपको द्वैत और अद्वैत समझाता हूँ। समझने की इच्छा है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पूरी-पूरी।

दादाश्री : अद्वैत, वह आधारी है या निराधारी?

प्रश्नकर्ता : निराधारी।

दादाश्री : और द्वैत?

प्रश्नकर्ता : अद्वैत में आने के बाद फिर द्वैत है ही कहाँ?

दादाश्री : अब ऐसा उल्टा सिखाते हैं कि 'द्वैत है ही कहाँ?' और संसारी बात आए, कोई ज़रा जेब काट ले, उस घड़ी शोर मचाकर रख देता है। अरे, अब यह सारा द्वैत आया कहाँ से? वापस कहेगा कि, 'पुलिसवाले को बुलाओ, यह चोर है, इसने ही मेरी जेब काटी।' अरे, अभी कह रहा था कि 'द्वैत है ही कहाँ?' तो यह द्वैत कहाँ से आया? आपमें भी निरा द्वैत ही है। इसमें मैं आपको भला-बुरा नहीं कह रहा हूँ, लेकिन यदि सच्ची बात समझनी हो तो अद्वैत ऐसा नहीं है। और तब तक सच्चा सुख, जो खुद के आत्मा का सुख है वह किस तरह से एक घड़ी के लिए भी पा सकेगा? आपकी समझ में आता है न?

अद्वैत, वह निराधारी वस्तु नहीं है। द्वैत के आधार पर अद्वैत है। किसके आधार पर है, इतना आपको समझ में आता है?

प्रश्नकर्ता : द्वैत की अपेक्षा से अद्वैत है।

दादाश्री : हाँ। द्वैत के आधार पर यह अद्वैत है। और जो चीज़ किसीकी अपेक्षा से हैं, वे सभी सापेक्ष कहलाती हैं। और सापेक्ष कभी भी निरपेक्ष नहीं बन सकता। यानी कि इस अद्वैत का अर्थ लोगों ने निरपेक्ष किया है। बात को यदि समझे न तो हल आएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम तो निरपेक्ष में ही मानते हैं।

दादाश्री : निरपेक्ष ही मानना चाहिए, लेकिन निरपेक्ष को समझना तो चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : हम अद्वैत का अर्थ निरपेक्ष जैसा करते हैं।

दादाश्री : हाँ। यह तो सब आपने अपने आप किया, इसका अर्थ तो यह हुआ कि यह सब आपकी मति पर आधारित है, लेकिन पूरी तरह से तो यह एक्सेप्ट नहीं होगा न! मति अनुसार आपको अर्थ करना हो, निरपेक्ष, तो हो सकता है, लेकिन वह नियम से सही नहीं माना जाएगा न! नियमपूर्वक तो मैं कहूँ कि, 'अद्वैत आधारी है या निराधारी?' तब कहते हैं, 'आधारी है।' तो किसके आधार पर है? तो कहे, 'द्वैत के आधार पर।' द्वैत की अपेक्षा से अद्वैत है और अद्वैत, वह सापेक्ष है। उसे ये लोग निरपेक्ष कहते हैं। आपको, आपका आत्मा क़बूल करता है न यह बात? मैं जो बात कह रहा हूँ, आपके आत्मा को उसे क़बूल करना ही चाहिए। क्योंकि मैं यह 'करेक्ट' बात कह रहा हूँ। मैं पक्षपात से बाहर निकला हुआ मनुष्य हूँ। पक्ष में पड़े हुए मनुष्य की बात कभी भी सत्य नहीं हो सकती। पक्षपात से बाहर निकले हुए होने चाहिए, वहीं पर बात सुननी चाहिए।

'अद्वैत-वह सापेक्ष है', आपको ऐसा समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आप जिस अद्वैत को निरपेक्ष मानते थे, वह तो सापेक्ष निकला। यानी कि इसमें अभी तक आपकी कोई भूल हुई है, वह समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मुझे अद्वैतवाले पूछते हैं कि, 'तो आत्मा कैसा है?' तब मैंने कहा, 'आत्मा अद्वैत स्वरूपी है ही नहीं और आत्मा द्वैत भी नहीं है। आत्मा द्वैताद्वैत है!'

द्वैताद्वैत का अर्थ क्या है? कि 'बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट' आत्मा द्वैत है। जब तक यह देह है तब तक 'रिलेटिव व्यू पोइन्ट' होता ही है। संडास नहीं जाना पड़ता? खाना नहीं पड़ता? वह 'रिलेटिव व्यू पोइन्ट' से है, अतः आत्मा द्वैत है। और 'रियल व्यू पोइन्ट' से आत्मा अद्वैत है। और फिर

जब यहाँ से मोक्ष में जाता है, तब वहाँ पर विशेषण होता ही नहीं। जब तक बॉडी है, तभी तक विशेषण है। बॉडी के आधार पर ही ये सब द्वैत के और अद्वैत के विशेषण हैं। वहाँ मोक्ष में जाने के बाद विशेषण नहीं रहता। 'बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट' 'मैं' द्वैत हूँ और 'बाइ रियल व्यू पोइन्ट' 'मैं' अद्वैत हूँ। यानी कि 'मैं' द्वैताद्वैत हूँ। जब तक बॉडी है, तब तक सिर्फ अद्वैत नहीं रह सकता।

यह अद्वैत कहने का भावार्थ क्या है कि 'फॉरिन डिपार्टमेन्ट' में उपयोग मत रखो। ऐसा कहने के लिए यह था, इसके बजाय यह उल्टा हो गया, फॉरिन में उपयोग मत रखना और 'होम' में ही रहो। 'होम', वह अद्वैत है और फॉरिन द्वैत है। अभी आप फॉरिन को ही 'होम' मानते हो। 'मैं ही चंदूभाई हूँ' कहते हो। अभी तक 'होम' को तो देखा ही नहीं। 'होम' को देखो तो चिंता नहीं होगी, अकुलाहट नहीं होगी। *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दुःख) में भी समाधि रहेगी।

द्वैत-अद्वैत, दोनों द्वंद्व!

एक भाई आया था, मुझसे कहता है, 'मैं अद्वैत हो गया हूँ।' मैंने कहा, 'भला यह शब्द वापस कहाँ से लाया? किसे अद्वैत कह रहा है?' तब उसने कहा, 'मैं द्वैत में नहीं रहता।' तब मैंने कहा, 'किसमें रहता है तब?' तब उसने कहा, 'आत्मा में ही रहता हूँ।' अरे, ऐसा कहाँ से हो गया? अद्वैत अकेला रह ही नहीं सकता। अद्वैत तो आधारित है। उसे किसका आधार है? वह द्वैत के आधार पर है। द्वैत का आधार है, नहीं तो अद्वैत गिर जाएगा। यानी अद्वैत, वह द्वैत के आधार पर टिका हुआ है। यह तो आप अद्वैत हो गए ऐसा कहते हो, यानी आप द्वैत पर द्वेष करते हो। उससे क्या होगा? आप दोनों लड़ पड़ोगे। तब कहता है, 'हाँ, ठीक है। लेकिन हम तो अद्वैत को निरपेक्ष मानते थे।' अरे, आधारित वस्तु को निरपेक्ष कह ही कैसे सकते हैं? अद्वैत तो सापेक्ष है।

कुछ शब्द ऐसे हैं कि जो द्वंद्वों से परे हैं। यह 'करुणा' जैसे कुछ-कुछ शब्द हैं, वे द्वंद्वों से परे हैं। जब कि अद्वैत शब्द तो, द्वैत है तो अद्वैत

है, इसलिए इसे द्वंद्व कहते हैं। जैसे फ़ायदा और नुकसान, ये सभी आमने-सामने दो शब्द होते हैं न, वे सभी द्वंद्व कहलाते हैं। यानी कि द्वैत है तो अद्वैत है। अतः वह द्वंद्व से पार नहीं गया है, वह अभी तक द्वंद्व में ही है। अद्वैत भी द्वंद्व कहलाता है, ऐसा आपको समझ में आया? जैसे फ़ायदा-नुकसान ये द्वंद्व कहलाते हैं, अच्छा-बुरा, सुख-दुःख, ये द्वंद्व कहलाते हैं, उसी तरह से यह द्वैत-अद्वैत की जोड़ी भी द्वंद्व कहलाती है। जैसे कि जहाँ पर दया होती है, वहाँ पर निर्दयता अवश्य होती ही है। अतः यदि कोई दयालु व्यक्ति हो तो आपको समझना चाहिए कि ओहोहो! इनके अंदर निर्दयता भी है। इसी तरह से द्वैत और अद्वैत, वे द्वंद्व में है। वह द्वंद्वातीत दशा नहीं है। यानी कि जो 'मैं अद्वैत हूँ' कहते हैं, वे तो अभी तक द्वंद्व में ही हैं। उस द्वंद्व में तो फिर कितनी सारी परेशानी है? अद्वैतवाले को तो रात-दिन द्वैत की ही कल्पना आती रहती है कि 'यह द्वैत, यह द्वैत, यह द्वैत' पूरे दिन ऐसे करता रहता है। जैसे द्वैत उसे काट खानेवाला नहीं हो? यानी कि यह द्वैत और अद्वैत, ये तो द्वंद्व हैं। उससे भी परे जाना है।

द्वैत उसे कहते हैं कि 'मैं और कर्म, दोनों हैं', इसे द्वैत कहते हैं। जब कि अद्वैतवाले क्या कहते हैं कि 'मैं ही हूँ, कर्म जैसी चीज़ है ही नहीं', यानी कि वहाँ पर तो द्वैत या अद्वैत अकेला नहीं हो सकता। क्योंकि आत्मा द्वैताद्वैत है। आत्मा सिर्फ अद्वैत नहीं हो सकता और सिर्फ द्वैत भी नहीं हो सकता। वह संसारी की अपेक्षा से, इस व्यवहार के 'कनेक्शन' में आता है, तब वह द्वैत है और 'खुद' 'मूल स्वरूप' में रहे तो अद्वैत है। अतः जब हम 'खुद' 'अपने' खुद में रहते हैं, तब हम संपूर्ण अद्वैत होते हैं।

अद्वैत की अनुभूति कब?

प्रश्नकर्ता : अद्वैत की अनुभूति होती है? किसे होती है?

दादाश्री : अद्वैत की अनुभूति हो सकती है। द्वैत की अनुभूति होने के बाद फिर अद्वैत की अनुभूति होती है। यह जो संसार है, वह द्वैत स्वभाववाला है। इसकी अनुभूति हो जाने के बाद अद्वैत की अनुभूति होती

है। वाइफ के साथ बहस नहीं होती, पिता के साथ बहस नहीं होती, किसीके साथ टकराव नहीं होता, ऐसी जब अनुभूति होती है, उसके बाद अद्वैत की अनुभूति होती है। और द्वैत की अनुभूति जिसे हो गई, उसे ही अद्वैत की अनुभूति होती है।

अद्वैत का मतलब क्या है? यह उसे जानना चाहिए। यह सब आत्मा जानने के लिए है। आत्मा नहीं जाना तो भटक मरे और जिसे द्वंद्व है वे सभी भटक मरे। जिसे द्वंद्व है, वह अद्वैत नहीं कहलाता। द्वंद्व अर्थात् क्या? कि अच्छा-बुरा, फ़ायदा-नुकसान, जिसे ऐसा द्वंद्व रहता है, वह अद्वैत नहीं कहलाता।

द्वंद्वातीत होने से अद्वैत

अद्वैत उसे कहते हैं कि जो द्वंद्वातीत हो चुका हो। अद्वैत कोई गप्प नहीं है। द्वैत के आधार पर अद्वैत टिका हुआ है। किसके आधार पर टिका है?

प्रश्नकर्ता : द्वैत के आधार पर।

दादाश्री : हाँ, यानी कि वह 'रिलेटिव' वस्तु है और 'रिलेटिव' वस्तु 'रियल' कभी हो ही नहीं सकती। द्वैत के आधार पर अद्वैत टिका है, यह 'रिलेटिव' वस्तु है। और 'रिलेटिव' वस्तु 'रियल' नहीं हो सकती। और आत्मा 'रियल' है। अत: ये जो अद्वैत बोलते हैं, वे सभी बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, लेकिन बात में कोई सार नहीं है। यदि अद्वैत है तो हमें उसे साबित करना चाहिए कि 'भाई, आप द्वंद्वातीत हो या नहीं, यह हमें बताओ।' यदि वह कहे कि, 'हम द्वंद्वातीत हैं।' तब हमें 'करेक्ट' मान लेना चाहिए। द्वंद्वातीत तो हो ही जाना चाहिए। यह द्वंद्व है, नफा-नुकसान, सुख-दु:ख, सभी से परे हो जाना चाहिए, उसका असर ही नहीं होना चाहिए।

यानी अद्वैत किसे कहते हैं? द्वंद्वातीत हो चुका हो उसे। उसे फिर फ़ायदा या नुकसान कुछ भी स्पर्श नहीं करता। उसकी जेब कट जाए फिर भी वैसा ही और उसे फूल चढ़ाए तब भी वैसा ही। गालियाँ दे तब भी वैसा ही, धौल मारे तब भी वैसा ही, तब अद्वैत कहलाएगा।

सत् प्राप्त करवाने के लिए कैसी कारुण्यता

तो आपको अद्वैत को समझना है न? 'एक्ज़ेक्ट' समझना हो तो पद्धतिपूर्वक समझो, और आपकी जो स्थिरता है उसे खो मत देना। पद्धतिपूर्वक यानी कि हम जो बात कर रहे हैं वह त्रिकाल सत्य बात है। उसमें कोई बदलाव नहीं हो सकता। हम अंतिम बात करते हैं कि जिससे लोग सच्ची हक़ीक़त को प्राप्त करें।

इस अद्वैत का बहुत घुस गया है! यह तो कहना पड़ेगा कि "अद्वैत को कोई समझना चाहे, तो यहाँ इन 'दादा' के पास आओ। यह गलत किसलिए पकड़कर बैठे हो?" और शायद कभी कोई विरोध करने आए तो मुझे हर्ज नहीं है। वह गालियाँ दे तो भी मुझे हर्ज नहीं है। उसे भोजन करवा देंगे, इस तरह शांत करके फिर उसे बात समझा दूँगा। वह गालियाँ देगा तो भी मुझे नींद आएगी लेकिन मैं गालियाँ दूँगा तो उसे नींद नहीं आएगी, इसलिए मैं उसे दुःखी नहीं कर सकता और मुझे तो नींद आ जाएगी, यानी कि सीधा तो करना पड़ेगा न? कब तक यह चलेगा। इसमें मुझे करना नहीं है। मैं तो निमित्त हूँ और मुझे ऐसा आदेश मिला है।

प्रश्नकर्ता : किसका आदेश मिला है?

दादाश्री : देशकाल का आदेश मिला है।

प्रश्नकर्ता : यह बात आपकी 'साइन्टिफिक' है?

दादाश्री : हाँ, 'साइन्टिफिक' बात है। क्योंकि कोई बाप भी ऊपरी नहीं है कि मुझे आदेश दे, लेकिन देशकाल का यह आदेश मिला है। 'इस तरह का आदेश है', ऐसा कहते ही किसीको ऐसा लगता है कि इनका कोई ऊपरी है! नहीं, हमारा कोई ऊपरी है ही नहीं। जो हूँ, वह मैं ही हूँ। और व्यवहार में लघुतम हूँ और 'रियली' 'स्पीकिंग' मैं गुरुतम हूँ। फिर झंझट ही कहाँ है? मुझे व्यवहार में गुरुतम नहीं बनना है। क्योंकि व्यवहार में जो गुरुतम बने हैं न, वे सभी दो पैरों में से चार पैरवाले बन गए। वह नियम ही ऐसा है कि जो व्यवहार में गुरुतम हैं वे चार पैरोवाले हो ही गए हैं और व्यवहार में लघुतम भाव से रहे, तभी हल आएगा।

एकांतिक मान्यता से रुका, आतमज्ञान

अब एक कहता है, आत्मा कर्ता नहीं है और दूसरा कहता है कि आत्मा कर्ता है, वे दोनों ही पक्ष में पड़े हुए हैं। वे अद्वैत के पक्ष में पड़े हैं और ये द्वैत के पक्ष में पड़े हैं। आत्मा वैसा नहीं है। आत्मा द्वैताद्वैत है। इस देह की अपेक्षा से द्वैत भी है और खुद की अपेक्षा से अद्वैत भी है। यानी कोई अद्वैत का पक्ष ले तो आत्मा प्रूव नहीं हो सकता। अद्वैतवाले को द्वैत के विकल्प आते रहते हैं। द्वैतवाले को अद्वैत के विकल्प आते रहते हैं। अब विकल्पों से पार जा नहीं सकता। आत्मा को द्वैताद्वैत कहा, तब विकल्पों से पार गया कहलाएगा, निर्विकल्पी कहलाएगा।

यानी कि 'ज्ञानीपुरुष' 'जैसा है वैसा' कहते हैं कि आत्मा द्वैताद्वैत है, द्वैत भी है और अद्वैत भी है। यह द्वैताद्वैत का विशेषण कब तक लागू होता रहेगा? जब तक सांसारिक काम में है, तब तक द्वैत है और खुद के स्व-ध्यान में है, तब अद्वैत है। जब तक यह देह है और केवळज्ञान भी है, तब तक द्वैताद्वैत कहलाता है। लोगों को मनुष्य भी दिखता है और लोगों को केवळज्ञानी भी दिखते हैं। जिसकी जैसी दृष्टि, उस अनुसार उसे वैसा ही दिखता है। यानी कि आत्मा अद्वैत कभी भी बनता ही नहीं। क्योंकि यदि यहाँ से देह छूट जाए और मोक्ष हो जाए तो वहाँ सिद्धगति में जाने के बाद यह विशेषण उस पर लागू ही नहीं होगा। जब तक यह देह है तभी तक विशेषण है, और दोनों कार्य करता है। इसलिए हमें विशेषण को एक्सेप्ट करना चाहिए। यह तो अद्वैत के गड्ढे में गिरे, वह एकांतिक कहलाता है और द्वैत के गड्ढे में गिरे, वह भी एकांतिक कहलाता है और कोई भी एकांतिक मार्ग ग्रहण किया तो मोक्ष हाथ में आएगा नहीं। एकांतिक हुए, आग्रही हुए तो सत्य वस्तु प्राप्त नहीं होगी। सत्य वस्तु प्राप्त हो, उसके लिए निराग्रह तक जाना पड़ेगा। आग्रह ही अहंकार है।

हर एक में सत्य समाया हुआ है ही, लेकिन उसके दृष्टिबिंदु के अनुसार है। हर एक चीज़ उसके अपने दृष्टिबिंदु से सत्य होती ही है। और यह जो व्यावहारिक सत्य है न, वह तो भगवान की भाषा में असत्य ही है। यह आप कहते हो 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं फ़लाने का मामा हूँ' यह सब

भगवान की भाषा में असत्य माना जाता है। यह सापेक्षित है, निरपेक्ष नहीं है!

किसी पक्ष में पड़ना, वह तो गलत ही है, पक्ष का मतलब 'स्टेन्डर्ड' (कक्षा, वर्ग, श्रेणी) है। और 'स्टेन्डर्ड' में रहे तो एकांतिक कहलाएगा, फिर भी लोगों को तो जो नियम हैं न, उतने में ही रहना चाहिए। और आत्यंतिक में नियम नहीं होते, वे तो अनेकांत होते हैं। उसमें किसी भी प्रकार का आग्रह नहीं होता। और वह 'एक्ज़ेक्टनेस' पर चलता रहता है। उससे आत्यंतिक कल्याण होगा। बाकी, ये सारे पक्ष तो 'स्टेन्डर्ड' हैं। निष्पक्षपाती हो जाए, तब काम का है। भगवान निष्पक्षपाती हैं। जब निष्पक्षपाती हो जाएगा, तब 'आउट ऑफ स्टेन्डर्ड' हो जाएगा।

मैं तो जो 'करेक्ट' है, वही सब कहने आया हूँ। और आप ऐसा कहोगे कि 'नहीं, मेरा सच है।' तो मैं आपके साथ बैठा नहीं रहूँगा, मेरे पास ऐसा खाली समय नहीं है। फिर आपके साथ वाद-विवाद में नहीं पड़ूँगा। आपके 'व्यू पोइन्ट' से आप 'करेक्ट' हो ऐसा कहकर हम छोड़ देते हैं। आपको यदि सच समझना हो तो हम समझाएँगे, नहीं तो फिर टाइम बिगड़ेगा, 'वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी!' ऐसा उल्टा ज्ञान तो बहुत लोगों की दृष्टि में 'फ़िट' हो चुका है, मैं कहाँ वापस सबको बदलने जाऊँ? यह तो यदि आपको 'हेल्प' चाहिए तो आप मुझसे पूछो।

यानी कि द्वैत और अद्वैत को समझना चाहिए। इस काल में अद्वैत तो बोला जाता होगा? अद्वैत तो पहले भी नहीं था और अद्वैत तो मैं भी नहीं बोल सकता।

हर एक बात जो है उसे कसौटी पर लिए बगैर एक्सेप्ट करें तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। कसौटी पर लेना नहीं आए तो 'यह ऐसा ही है', ऐसा नहीं कह सकते। फॉरिन के साइन्टिस्ट भी 'यह ऐसा ही है' ऐसा नहीं कहते। वे कहेंगे, 'हमें यह ऐसा लगता है।'

ब्रह्म सत्य है और जगत् भी सत्य है, लेकिन...

यह तो बात ही मूलत: गलत है, ही है सारी। वह बिल्कुल गलत

भी नहीं है। सोते हुए मुँह खुला रह गया हो और ज़रा मिर्ची डालें तो? तो फिर मिथ्या लगता है? ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, कहता है, ऐसे मिथ्या लगता है क्या? यह जगत् 'रिलेटिव करेक्ट' है। और ब्रह्म 'रियल करेक्ट' है। बस, इतना ही फ़र्क़ है, अब अगर दाढ़ दु:ख रही हो, तब 'मिथ्या-मिथ्या' कर तो! कभी आपकी दाढ़ दु:खी है? क्या उस समय आप ऐसा कहते हो कि यह मिथ्या है? ऐसा बोलते हो? यानी कि ब्रह्म भी सत्य है और जगत् भी सत्य है। दाढ़ का इलाज करवाना पड़ता है, नहीं करवाएँगे तो मुश्किल हो जाएगी!

प्रश्नकर्ता : तो यह जगत् सत्य है या मिथ्या है?

दादाश्री : आपको सत्य लगता है या मिथ्या लगता है? कैसा लगता है? आपका अनुभव क्या कहता है?

प्रश्नकर्ता : मिथ्या।

दादाश्री : आपको मिथ्या लगता है? अभी कोई गालियाँ दे तो आप पर असर नहीं होता? अभी धौल मारे तो आपको असर नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : असर होता है।

दादाश्री : तो जगत् को मिथ्या कैसे कह सकते हैं? जो असरवाला है, उसे मिथ्या कैसे कह सकते हैं? असरवाला है, इसलिए यह जगत् मिथ्या नहीं है।

यदि जमाई मर जाए, तो सास रोती है या नहीं रोती? या फिर आप लोगों में रिवाज़ ही नहीं है ऐसा?

प्रश्नकर्ता : रोती है न!

दादाश्री : हाँ, तो इसे मिथ्या कैसे कह सकते है? यानी यह जगत् सत्य है, लेकिन विनाशी सत्य है।

जगत् मिथ्या है ही नहीं। जगत् मिथ्या जैसी वस्तु ही नहीं है। जगत् मिथ्या होता न, तब तो फिर ये लोग तो न जाने कब के छोड़कर चले

गए होते! यह जगत् सत्य है। यदि जगत् मिथ्या होता न तब तो रात को मनुष्य सो गया हो और मुँह ऐसे खुला हुआ हो, तो ऐसे दूर से इतनी मिर्ची मुँह में डाल दो तो शोर मचाएगा या नहीं मचाएगा? उसे नींद में से हमें उठाने जाना पड़ेगा? क्यों? अपने जगाए बिना ही उस पर असर हो जाता है? उसे कैसे पता चलता है? यानी मिथ्या होता न तो ऐसा कुछ होता ही नहीं न, देखो, जगत् भी सत्य है न? लेकिन जगत् रिलेटिव सत्य है, ब्रह्म रियल सत्य है।

प्रश्नकर्ता : ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित है, इसलिए यह जगत् 'रिलेटिव' सत्य है?

दादाश्री : हाँ। उसके प्रकाश से प्रकाशित है, इसलिए यह 'रिलेटिव' सत्य है। और 'रिलेटिव' सत्य इसलिए सत्य तो है ही, लेकिन विनाशी सत्य है और ब्रह्म, वह अविनाशी सत्य है।

यदि जगत् मिथ्या होता न, तो लोग इसमें से आत्मा ले ही लेते। लेकिन क्योंकि यह जगत् भी सत्य है, इसलिए लोग जगत् को छोड़ते ही नहीं। बाहर कोई छोड़ने की बात करता है? ये तो कहेंगे, 'चलो, वहाँ बज़ार में चलो देखते हैं।' हम कहें, 'भाई, चलो, मोक्ष देता हूँ।' तब कहेगा, 'रहने दो न भाई, मुझे मेरा काम करने दो न चुपचाप।' अतः जगत् सत्य है। 'मेरी पत्नी, मेरे बच्चे' ऐसी बात करते हैं न? और स्त्री के पीछे पागल हो जाता है, मर जाता है और आत्महत्या भी कर लेता है! यदि मिथ्या होता तो कोई करता क्या ऐसा? मिथ्या तो, यह खटमल मारने की दवा भी मिथ्या नहीं है। उसे पी जाए न, तो पता चल जाएगा कि मिथ्या है या नहीं? उसे पी लिया हो तो 'हो-हो' करके रख देते हैं न? यानी कि ब्रह्म भी सत्य है और जगत् भी सत्य है? जगत् 'रिलेटिव' सत्य है और ब्रह्म 'रियल' सत्य है।

वास्तविकता समझनी तो पड़ेगी न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर 'जगत् मिथ्या है' ऐसा जो अर्थ बताया, वह गलत ही किया है न?

दादाश्री : जिस काल में इस अर्थ की ज़रूरत रही होगी, उस काल में यह अर्थ किया होगा। लेकिन 'एक्ज़ेक्टली', यह जगत् कभी भी मिथ्या था ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो माया के कारण मिथ्या लगता होगा?

दादाश्री : यह माया नहीं है! यह माया तो किसे कहते हैं कि अभी जादूगरी करे न, और हाथ में रुपये दिखाए, फिर भी आप पर कुछ भी असर नहीं हो, उसे माया कहते हैं। जिसे लोग माया समझते हैं न, ऐसी माया नहीं है यह जगत्।

माया का मतलब क्या है कि 'वस्तु' को यथार्थ रूप में नहीं समझना, उसे माया कहते हैं। यह माया ही 'जैसा है वैसा' यथार्थ रूप से समझने नहीं देती, उसे माया कहते हैं। लोग तो माया को क्या समझते है? कहेंगे, 'ऐसा ही है यह सारा, यह माया ही है' लेकिन ऐसा नहीं है। माया अर्थात् जो 'वस्तु' को यथार्थ रूप से समझने नहीं दे, वही माया है।

बाकी ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या, वह तो त्यागी बनाने के लिए ये सब बोले थे कि 'भाई, यह सब मिथ्या है, इस मिथ्या में से क्या पाना है? अब त्यागी बनकर, त्याग करके कुछ आगे बढ़ो।' इस हेतु से लोगों ने ऐसा कहा था। लेकिन वास्तव में तो यह जगत् 'जैसा है वैसा' ही उसे कहना चाहिए, तभी फिर उस रास्ते पर चलना रास आएगा न! वर्ना सभी तो इसे मिथ्या नहीं मानते हैं न! कुछ ही लोग मिथ्या मानते हैं, ऐसे बोलते ज़रूर हैं, लेकिन कोई मिथ्या मानता नहीं है। इस बच्चे के हाथ में पतंग दे दी, तो उसे क्या वह फेंक देगा? यदि हम कहें कि 'मिथ्या है, इसे फेंक दे।' तो फेंक देगा? वह नहीं फेंकेगा। अतः जगत् 'रिलेटिव' सत्य है। हाँ, उसे कोई ऐसा नहीं कहता कि यह 'रियल' सत्य है। क्योंकि यह पतंग तो तुरन्त फट जाती है न! और उस घड़ी अपने आप ही प्रेम छूट ही जाता है न!! जब कि जहाँ पर अविनाशी तत्व है, वहाँ पर फटने की बात ही नहीं है न!!!

अतः यह जगत् मिथ्या भी नहीं है। जगत् 'रिलेटिव करेक्ट' है और आत्मा

'रियल करेक्ट' है। 'रिलेटिव करेक्ट' यानी विनाशी 'करेक्ट'। वह अमुक कालवर्ती होता है। कोई सौ वर्ष चलता है, कोई पाँच सौ वर्ष चलता है, कोई हज़ार वर्ष चलता है और कोई पाँच हज़ार वर्ष चलता है, तो कोई पाँच वर्ष चलता है और कोई एक वर्ष भी चलता है। जो कुछ काल तक टिके, वह सभी 'रिलेटिव करेक्ट' है और जो त्रिकालवर्ती है वह 'रियल करेक्ट'!

अरे, कुछ लोग तो आकर मुझसे कहते हैं कि, 'नहीं, लेकिन जगत् तो मिथ्या ही है न!' तब मैंने कहा, यदि यह मिथ्या होता न तो क्या किसीने रुपये रास्ते पर बाहर फेंके हैं? यदि रास्ते पर घूमने जाएँ तो पैसे मिलते हैं क्या? लोगों के पैसे खोते ही नहीं होंगे न? पैसे खो जाते हैं, लेकिन पैसे वापस मिलते नहीं। यानी यदि जगत् मिथ्या होता न तो कोई पैसा लेता ही नहीं! यानी कि जगत् मिथ्या नहीं है, यह तो सत्य ही है। लेकिन 'रिलेटिव' सत्य है, विनाशी सत्य है।

ब्रह्म 'रियल करेक्ट' है, और यह बाकी सब जो आँखों से दिखता है, पंचेन्द्रियों से अनुभव में आता है, वह सब 'रिलेटिव करेक्ट' है! गलत तो कोई चीज़ है ही नहीं इस जगत् में, लेकिन जब तक भौतिक सुखों की ज़रूरत है, विनाशी सुखों की ज़रूरत है, तो इस 'रिलेटिव' सत्य में बैठे रहो और तब तक 'रिलेटिव' में भटकते रहो। और इन भौतिक सुखों के पीछे कितनी सारी चिंताएँ, *उपाधि,* निरी मुश्किलें मोल लेनी पड़ती हैं। यह सारी तड़फड़ाहट जब मनुष्य अनुभव करता है, तब समझ में आता है कि किस तरह सहन करता है। और अविनाशी सुख चाहिए तो जहाँ पर त्रिकालवर्ती है, वहाँ पर जा। यह 'रिलेटिव' तो 'फॉरिन डिपार्टमेन्ट' है और 'रियल', वह 'होम डिपार्टमेन्ट' है। इसलिए यदि 'घर' जाना हो तो 'घर' जाओ और फॉरिन में रहना हो तो फॉरिन में रहो। बाकी, फॉरिन को 'होम' मानेगा तो उससे तेरे दिन नहीं बदलेंगे।

'सत्' प्राप्ति के बाद, जो 'सत्य' बचा वह...

सत्य और मिथ्या, दो वस्तुएँ तो हैं ही न? या एक ही वस्तु है? अब सत्य का मतलब क्या है, वह आपको समझाता हूँ। क्या नाम है आपका?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : अब आप क्या वास्तव में चंदूभाई हो?

प्रश्नकर्ता : जी हाँ।

दादाश्री : अत: यह सत्य है। लोग भी कहते हैं, कि ये वास्तव में चंदूभाई हैं। आपके फादर भी कहते हैं कि 'यह वास्तव में चंदूभाई है।' अत: यह सत्य है। लेकिन यह विनाशी सत्य है। इस जगत् का जो सत्य है, उसे ये कोर्ट एक्सेप्ट करेंगे, लेकिन भगवान इसे एक्सेप्ट नहीं करते।

अब, वास्तव में आप चंदूभाई नहीं हो। चंदूभाई तो आपका नाम है न? 'आपका नाम चंदूभाई है' और 'आप खुद चंदूभाई हो'-इन दो बातों में आपको विरोधाभास नहीं लगता या विरोधाभास लगता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी इस जगत् का जो सत्य है न, वह भगवान के वहाँ पर विनाशी सत्य है। यह नाम, रूप, सबकुछ, जिसे सत्य माना जाता है न, वह सभी भगवान के वहाँ पर विनाशी है। और भगवान का जो सत् है न, सच्चिदानंद-उसमें जो सत् है न, वह सत् अविनाशी है। तो हम आपको अविनाशी सत् की ही प्राप्ति करवाते हैं, तब फिर यह सत्य तो खत्म ही हो जाएगा।

सत् अर्थात् क्या कि 'परमानेन्ट'। फिर चित्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन। और 'परमानेन्ट' ज्ञान-दर्शन रहेगा तो हमेशा आनंद ही रहेगा।

अब सत्य और मिथ्या दोनों आपको समझ में आया न, या नहीं समझ में आया? यानी इसमें सत्य भी है और मिथ्या भी है, दोनों हैं। यह, जिसे आप सत्य मानते हो, वह मिथ्या साबित हुआ। लेकिन यह मिथ्या और खरा सत्, ये दोनों अलग हैं न वापस! ये चंदूभाई, यह जो सत्य था, वह अब मिथ्या हो गया।

अब खरा सत् क्या होना चाहिए? ये चंदूभाई 'रिलेटिव करेक्ट' हैं। और 'रियल करेक्ट' कौन है, उसका पता लगाना बाकी है। वह मैं आपको बता देता हूँ, वही खरा सत् है, जो शाश्वत सत् है। आपको सत् संजोग करना है न या नहीं करना? या फिर कभी, या कभी बाद में हो तो हर्ज नहीं। अभी तो बाल काले हैं, जल्दबाज़ी नहीं करनी हो तो मत करना! सफेद बालवालों को चिंता होती है! आपको भी काम निकाल लेना है? ऐसा?

अज्ञान ने आवृत किया ब्रह्म

ये सभी शास्त्र ब्रह्म को जानने के लिए लिखे गए हैं। ब्रह्म प्राप्ति करने के लिए ही ये सब शास्त्र लिखे गए हैं। फिर भी ब्रह्म प्राप्ति नहीं हुई, इसलिए तो अनंत जन्मों से भटक रहा है! जब तक खुद के स्वरूप का अज्ञान जाएगा नहीं, तब तक हल नहीं आएगा। बाकी सभी तो कल्पनाएँ हैं। लोगों ने जो कल्पनाएँ की हैं न, उन कल्पनाओं का तो अंत ही नहीं आए, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : तो ब्रह्म प्राप्ति में बाधक कौन है?

दादाश्री : अज्ञान बाधक है। मल, विक्षेप और अज्ञान, ये तीन चीज़ें बाधक हैं। इसलिए लोग क्या करते हैं कि मल, विक्षेप को निकालते रहते हैं, लेकिन अज्ञान निकालने के प्रयत्न किसी भी जगह पर नहीं हो पाते। अज्ञान निकालने के प्रयत्न नहीं हो पाते, उसका क्या कारण है? क्योंकि ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' होते ही नहीं। किसी ही समय में हज़ारों वर्षों में 'ज्ञानीपुरुष' अवतरित होते हैं! बाकी तो 'ज्ञानीपुरुष' होते ही नहीं। जब 'ज्ञानीपुरुष' होते हैं, तभी अज्ञान जाता है और अज्ञान गया तो सबकुछ गया। यानी सबसे बड़ा बाधक कारण कोई है तो अज्ञान है। वह अज्ञान गया कि 'मैं कौन हूँ', उसका उसे खुद को भान हो जाता है। वह भान होने के बाद फिर उसका लक्ष्य नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : यानी ब्रह्म प्राप्ति में अहंकार ही आवरण है, ऐसा कहा जा सकता है न?

दादाश्री : हाँ, अहंकार आवरण है ज़रूर लेकिन आवरण को अहंकार नहीं कहा गया है। अन्य बहुत सारी चीज़ों का भी आवरण है। सिर्फ अहंकार अकेला ही नहीं है। खुद के स्वरूप का अज्ञान, वही मुख्य आवरण है। एक ही बार 'खुद कौन है', ऐसा हमारे पास से जान जाओ, फिर अज्ञान चला जाएगा। फिर किसी तरह की परेशानी नहीं रहेगी।

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मप्राप्ति का फल क्या है?

दादाश्री : ब्रह्मप्राप्ति का फल निरंतर परमानंद स्थिति! देह होती है, फिर भी जनक विदेही जैसी स्थिति रहती है, ब्रह्ममय स्थिति!! संसार फिर उसे छूता नहीं है, स्पर्श नहीं करता। कोई फूल चढ़ाए तो वह भी स्पर्श नहीं करता और पत्थर मारे तो भी स्पर्श नहीं करता।

भेद, ब्रह्मदर्शन-आत्मदर्शन का

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मदर्शन और आत्मदर्शन में क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : आत्मदर्शन और ब्रह्मदर्शन में बहुत फ़र्क़ है। ब्रह्मदर्शन से भी आगे जाना पड़ेगा। जहाँ पर त्रिकाली भाव हुआ न, उसे ब्रह्मदर्शन कहा है, त्रिकालीभाव। और आत्मा तो परमात्मा ही है, यदि कभी मूल स्वरूप में आ गया तो परमात्मा ही है। और ब्रह्म भी परब्रह्म बन जाता है, क्योंकि त्रिकाली भाव में आ चुका है न। तीनों ही काल में अस्तित्व है!

पहले ब्रह्मनिष्ठ, फिर आत्मनिष्ठ

इस ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान में भी फ़र्क़ है। ब्रह्मज्ञान तो आत्मज्ञान का दरवाज़ा है। वह जब ब्रह्मज्ञान में प्रविष्ट होता है, उसके बाद आत्मज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : इन दोनों के बीच में क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : यह जो किसीको ब्रह्मज्ञान होता है, वह सब तो साधनों के परिणामस्वरूप खुद के स्वरूप पर एकाग्रता होती है। लेकिन स्वरूप का क्या है? वह भान नहीं हो पाता। स्वरूप का भान तो आत्मज्ञान हो

जाए, तभी होता है। अब्रह्म को जाने, तभी से ब्रह्मज्ञान कहलाता है। अब्रह्म को जाने तब फिर कौन-सा ज्ञान बाकी बचा? ब्रह्मज्ञान। यह ब्रह्मज्ञान तो, संसार की निष्ठा उठे उसके बाद ब्रह्म की निष्ठा बैठती है, लोगों को अभी कौन-सी निष्ठा है? सांसारिक सुखों की निष्ठा है, पाँच इन्द्रियों के सुखों की निष्ठा है। जिसकी यह निष्ठा बदल जाए कि ये सुख झूठे हैं, भौतिक और बेकार हैं, आत्मा में ही सुख है, भगवान में ही सुख है, ऐसा पक्का हो जाए तब ब्रह्मनिष्ठा बैठती है। ब्रह्मनिष्ठा बैठे तभी से उसे ब्रह्मज्ञान कहते हैं, उसे ब्रह्मस्वरूप कहते हैं। और फिर आत्मज्ञान हो जाए, तब वह आत्मनिष्ठ पुरुष कहलाता है, भगवान कहलाता है। उसे सकल परमात्मा कहा जाता है।

आत्मनिष्ठ में बुद्धि ही नहीं होती। बुद्धि चली जाए, उसके बाद ही यह प्रकाश होता है। ब्रह्मनिष्ठ में बुद्धि होती है, इसलिए उसे यह प्रकाश नहीं हुआ है।

ब्रह्म तो शब्द से भी परे है

प्रश्नकर्ता : 'शब्दब्रह्म' भी है न!

दादाश्री : लेकिन शब्दब्रह्म का मतलब क्या है कि कान में सुनाई देता है उसमें आपको क्या स्वाद आएगा? यानी कि यथार्थ ब्रह्म की आवश्यकता है। ऐसे ब्रह्म तो बहुत हैं। शब्दब्रह्म, नादब्रह्म! लेकिन यथार्थ आत्मा की आवश्यकता है, जो अगम्य है, शास्त्रों में उतर सके ऐसा है ही नहीं, अवर्णनीय है, अवक्तव्य है! जहाँ पर शब्द भी नहीं पहुँच सकते, जहाँ पर दृष्टि भी नहीं पहुँच सकती, वहाँ पर आत्मा है और वह निर्लेप भाव से है, असंग भाव सहित है। और शब्दनाद वगैरह सभी स्टेशन हैं। वह कोई बहुत बड़ी चीज़ नहीं है। उसे आत्मा की प्राप्ति नहीं कहा जा सकता। आत्मा तो, प्राप्त होने के बाद फिर कभी जाए ही नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं हो, वह आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : नादब्रह्म कभी सुनाई देता है?

दादाश्री : नादब्रह्म तो दूसरा सबकुछ सुनना बंद कर दो, तब सुनाई

देगा। कान से अन्य कुछ भी नहीं सुने तो नादब्रह्म सुनाई देगा, लेकिन दूसरा सब तरह-तरह का सुनने की इच्छाएँ तो बहुत सारी हैं। यह जानना है, वह जानना है, यह सुनना है और वह सुनना है! कोई ऐसे ही बात करने बैठे कि तुरन्त पूछेगा कि 'क्या हुआ? क्यों हुआ?' अब नादब्रह्म तो, ऐसी सभी इच्छाएँ खत्म हो जाएँगी तब नादब्रह्म आसानी से सुनाई देगा। यह तो सहजस्वभाव है। फिर भी नादब्रह्म, आत्मा नहीं है। यह तो एक प्रकार का बाजा बजता है, एकाग्रता करने का साधन है। आत्मा तो इससे भी आगे, बहुत दूर है।

प्रश्नकर्ता : इस नादब्रह्म की कक्षा के साथ आध्यात्मिक विकास का कोई संबंध है क्या?

दादाश्री : हाँ, है न। आध्यात्मिक विकास के लिए एकाग्रता की ज़रूरत है, और इसमें से एकाग्रता उत्पन्न होती है। नादब्रह्म से बहुत अच्छी एकाग्रता उत्पन्न होती है। एकाग्रता उत्पन्न हो जाए तो अध्यात्म शुरू हो जाता है, नहीं तो अध्यात्म शुरू ही नहीं होता न! बाकी, आत्मा तो इससे भी बहुत दूर है!

प्रश्नकर्ता : जो शब्दब्रह्म है, इस शब्द के अंदर ही सब अलग-अलग तरह से बात करते हैं, लेकिन शब्द का स्फोट होना चाहिए।

दादाश्री : स्फोट हो चुका है। उन्हें शब्द का स्फोट हो ही चुका होता है। यदि सही होगा, यदि वे अनुभव करवानेवाले होंगे तो उनमें शब्द का स्फोट हो ही चुका होगा। बाकी, जो शब्द अनुभव नहीं करवाते, वे सभी शब्द गलत है। और जहाँ पर शब्द भी नहीं होता, वह अंतिम बात है, निरालंब। निरालंब, वहाँ पर शब्द भी नहीं होता। लेकिन शब्द स्वरूप प्राप्त होने के बाद मनुष्य निरालंब बनता है।

अहो! अहो उस दृष्टि को

प्रश्नकर्ता : ब्रह्ममय स्थिति हो जाती है तब सभी एक दिखते हैं। स्त्री, स्त्री नहीं दिखती, पुरुष, पुरुष नहीं दिखता, सभी ब्रह्मस्वरूप दिखते हैं।

दादाश्री : सभी शुद्ध ही दिखता है। हमें कैसा दिखता है, वह आपको बताता हूँ। हमारी जागृति कैसी होती है? संपूर्ण जागृति! इन लोगों की जागृति कैसी है? वे तो अभानता में ऐसा सब करते रहते हैं कि, 'मैं इस स्त्री का पति हूँ, मैं इसका ससुर हूँ, मैं इसका मामा हूँ, मैं इस सेठ का नौकर हूँ।' ऐसा नहीं बोलते है? ये सभी भ्रमित के लक्षण हैं। खुद की सत्ता और खुद का भान नहीं है!

हमें तो सबकुछ ब्रह्ममय दिखता है। हमारी जागृति कैसी है कि हमें ये स्त्री-पुरुष पहले 'विज़न' में कैसे दिखते हैं? कपड़े पहने हुए नहीं दिखते, सभी नंगे दिखते हैं। फिर दूसरे 'विज़न' में यह चमड़ी उतार दी हो, ऐसा दिखता है। फिर तीसरे 'विज़न' में हमें क्या दिखता है? अंदर की आँत वगैरह सब, 'एक्ज़ेक्ट' यानी ऐसा 'एक्स-रे' जैसा दिखता है। इसलिए फिर हमें इसमें कुछ भी राग-द्वेष नहीं होते। और अंत में सभी में ब्रह्मस्वरूप दिखता रहता है!

प्रश्नकर्ता : अहंकार और अहम् ब्रह्मास्मि, इन दोनों में क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : अहम् ब्रह्मास्मि, वह खुद अपने आप का अहम् करते हैं। और अहंकार वह है कि जहाँ पर खुद नहीं है, वहाँ पर उसका आरोपण करता है।

स्व-स्वरूप सधे ज्ञानी के सानिध्य में

प्रश्नकर्ता : स्व-स्वरूप में अंतरवृत्ति हो जाए, ऐसा कुछ चाहिए।

दादाश्री : 'स्वरूप को जानते हो', किसे कहा जाता है?

प्रश्नकर्ता : साक्षीभाव को।

दादाश्री : साक्षीभाव, लेकिन वह कैसा है?

प्रश्नकर्ता : उसके प्रकाश में सबकुछ होता रहता है।

दादाश्री : लेकिन उसे पहचानना पड़ेगा। आत्मज्ञान हो जाए तभी

ब्रह्म को पहचाना जा सकेगा। नहीं तो ब्रह्म को किस तरह पहचाना जा सकेगा? आत्मज्ञान हुआ है?

प्रश्नकर्ता : वह मेरी बुद्धि से बाहर की बात है।

दादाश्री : यानी आप साक्षीभाव की बात कर रहे हो, लेकिन 'ज्ञानीपुरुष' के पास आने से यहाँ पर आपको स्व-स्वरूप प्राप्त हो जाएगा।

दृष्टिफेर से दशाफेर बर्ते

प्रश्नकर्ता : ये आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म ये सभी एक ही शब्द हैं या पर्यायवाचक शब्द हैं?

दादाश्री : ये सभी पर्यायवाचक शब्द हैं। पर्याय अर्थात् अवस्था। आत्मा किसी खास अवस्था में आत्मा माना जाता है और किसी अन्य अवस्था में वही का वही आत्मा परमात्मा माना जाता है, और वही का वही आत्मा किसी खास अवस्था में मूढ़ात्मा कहलाता है। मूढ़ात्मा अर्थात् बहिर्मुखी आत्मा, वह भी वही का वही आत्मा। अंतरात्मा कहते हैं, वह भी वही का वही आत्मा है। और परमात्मा कहते हैं, वह भी वही का वही आत्मा है। यानी कि सिर्फ आत्मा की दशा में फ़र्क़ है।

जैसे यहाँ पर एक वकील हो, वह पहले पैसा नहीं कमाता था, दशा टेढ़ी हो तब लोग कहते हैं कि, 'यह वकील कुछ नहीं कमाता, कड़का है।' अब कुछ अच्छा योग बैठा और वही का वही वकील फिर एकदम से कमाने लगा, तब फिर लोग कहेंगे, 'यह वकील बहुत बुद्धिमान है, श्रीमंत है।' फिर उस वकील के पैसे खत्म हो जाएँ तो कहेंगे कि 'यह तो कंगाल है', लेकिन वस्तुस्थिति में वह 'खुद' वही का वही है।

उसी तरह से ये आत्मा की दशाएँ हैं। जब तक 'इसे' संसार के सुखों की इच्छा हैं, तब तक 'वह' मूढ़ात्मा कहलाता है, बहिर्मुखी आत्मा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : और जब आवरण दूर हो जाएँ, तो वही परमात्मा बन जाता है?

दादाश्री : लेकिन आवरण ऐसे ही दूर नहीं हो जाते न! पहले उसकी दृष्टि बदलती है। अभी दृष्टि कैसी है कि आपकी दृष्टि इस 'साइड' में है, इसलिए इस तरफ़ का ही दिखता है। 'मैं चंदूभाई हूँ' वही दृष्टि है न आपकी या कुछ और हूँ, ऐसी दृष्टि है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा भी हूँ न!

दादाश्री : नहीं, लेकिन अभी तो 'चंदूभाई' के नाम की चिठ्ठी 'आप' ही ले लेते हो न? अभी अगर कोई गालियाँ दे तो आप पर असर होगा?

प्रश्नकर्ता : होगा।

दादाश्री : यदि आप आत्मा हैं तो आप पर असर नहीं होना चाहिए, अतः 'आप' 'चंदूभाई' हो। अब 'मैं चंदूभाई हूँ' बोलने में हर्ज नहीं है, वह तो मैं भी क़बूल करता हूँ कि 'मैं ए.एम.पटेल हूँ' लेकिन मुझे 'मैं ए.एम.पटेल हूँ' ऐसी बिलीफ़ नहीं है। और आपको 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसी बिलीफ़ है।

मुझे एक भाई ऐसा कह रहे थे कि, 'जीव और ब्रह्म एक ही हैं, ऐसा तो सिर्फ वेदांत में ही कहा गया है। और कोई यह जानता ही नहीं।' मैंने कहा, 'जीव और ब्रह्म दोनों एक ही हैं, इसे तो सभी जानते हैं।' ये बूढ़े लोग कहते हैं न, 'मैं मर जाऊँगा, मर जाऊँगा डॉक्टर साहब। मुझे बचाइए?' जिसे मन में ऐसा लगता है कि 'मैं मर जाऊँगा', तो वह जीव है। जिसे मरने का भय लगता है, वे सभी जीव हैं। और मरने का भय लगना बंद हो गया तो वही का वही जीव फिर ब्रह्म बन जाता है।

खुद शिव है, लेकिन भ्रांति से जीव है

प्रश्नकर्ता : ब्रह्म को जीव क्यों बनना पड़ा?

दादाश्री : आप तो शिव ही हो लेकिन आपको 'मैं शिव नहीं हूँ' ऐसा यक़ीन हो गया है, भ्रांति हो गई है आपको। 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा आप मानते हो। इन लोगों ने नाम दिया तो क्या हमें मान लेना चाहिए? आप शिव ही हो, लेकिन अगर जीव और शिव का भेद समझोगे तब।

प्रश्नकर्ता : फिर तो अद्वैत हो गया न?

दादाश्री : जीव और शिव का भेद नहीं रहा तो फिर अद्वैत बन जाता है। जब जीव और शिव एक ही रूप में भासित हों, तो वह अद्वैत है। 'जीव अलग और शिव अलग है', वह भ्रांति है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा तो शिव था, वह जीव किस तरह से बन गया?

दादाश्री : इस उल्टी मान्यता से, 'रोंग बिलीफ़' से जीव बन गया है। 'ज्ञानीपुरुष' इस 'रोंग बिलीफ़' को फ्रेक्चर कर देते हैं और फिर 'राइट बिलीफ़' बैठा देते हैं, तब फिर 'खुद' 'आत्मा' ही बन जाता है वापस, शिवस्वरूप बन जाता है।

जीव को शिव बनने में देर ही नहीं लगती। खुद है ही शिव लेकिन उसे यह भ्रांति उत्पन्न हो गई है, यानी कि सारी 'रोंग बिलीफ़' बैठ गई है। वह बिलीफ़ बदल जाए और 'राइट बिलीफ़' बैठे कि पज़ल सोल्व हो जाती है।

जानकार ही जुदा कर सकते हैं

प्रश्नकर्ता : लेकिन भौतिक जगत्, जीव और आत्मा-इन तीनों की परिभाषा में क्या फ़र्क़ है? यह जो भेद है, वह किसलिए है?

दादाश्री : जीव ही भौतिक जगत् है। इसमें भौतिक जगत् को जानने की ज़रूरत ही नहीं है। इसमें फ़र्क़ क्यों किया? आप बताओ।

प्रश्नकर्ता : जीव और अजीव की तरह।

दादाश्री : लेकिन जीव, वही भौतिक है। उसे जीवात्मा क्यों कहते हैं? तब कहे, 'भौतिक की तरफ़ उसकी दृष्टि है और भौतिक में ही उसका मुकाम है, इसलिए उसे जीवात्मा कहा है।' जिसकी भौतिक सुख में ही खुशी है, रमणता है, उसे जीवात्मा कहते हैं। और उसे ही भौतिक जगत् कहते हैं। क्योंकि जब तक भौतिक हो, तब तक भौतिक रमणता ही रहती

है। आपको समझ में आया? आपको यदि जुदा चाहिए, जुदा करना हो तो जुदा कर दूँगा। बाकी यह भौतिक जगत् है, वही जीवात्मा है। जिसमें से यह टेम्परेरी सुख ढूँढता है, 'रिलेटिव' सुख ढूँढता है, वह सब भौतिक जगत् है। जहाँ से ढूँढता है, वह सारा ही भौतिक जगत् है और ढूँढनेवाला भी भौतिक जगत् है। इतना यदि समझ में आ जाए तो काम हो जाए।

प्रश्नकर्ता : शरीर में जीव भी आ गया, शरीर में आत्मा भी आ गया और शरीर में भौतिक जगत् भी आ गया, तीनों का मिश्रण आ गया।

दादाश्री : सबकुछ आ गया। इस शरीर के अंदर तो पूरा ब्रह्मांड आ गया, कुछ भी बाकी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो अब इसे हम जुदा किस तरह से समझें? इसे जुदा रखकर किस तरह से समझें?

दादाश्री : जुदा करने के लिए 'साइन्टिस्ट' बनना पड़ेगा। इस अँगूठी में सोना, तांबा और दूसरी सभी दो-तीन तरह की धातुएँ इकट्ठी हो गई हों, तो उन्हें इस मिश्रण में से अलग करना हो तो किस तरह से जुदा किया जा सकता है? कोई भी आदमी जुदा कर सकता है? जो इसका जानकार होगा, वही इन्हें जुदा कर सकेगा। ऐसे ही, इसमें भी जो जानकार होगा, वही जुदा कर सकेगा। बाकी, अन्य तो कोई जुदा नहीं कर सकेगा न! बाकी अगर खुद इसमें माथाकूट करने जाएगा न, तो अनंत जन्मों की माथाकूट बेकार जाएगी और बल्कि चुपड़ने की दवाई पी जाएगा तो मर जाएगा। चुपड़ने की दवाई पी जाए, तो उसमें भगवान का क्या दोष?

जीव और आत्मा, नहीं हैं भिन्न न ही अभिन्न

प्रश्नकर्ता : यह बताइए कि जीव और आत्मा में क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : जब तक संसारदशा में है, तब तक जीता है, मरता है; तब तक जीव कहलाता है। संसारदशा में यानी कि 'मैं संसारी हूँ' और जब तक संसारदशा को खुद की दशा मानता है, तब तक वह जीता है और मरता है, तभी तक वह जीव कहलाता है। और जीने-मरने का बंद

हुआ, तब से ही शिव कहलाता है, वह शुद्धात्मा कहलाता है। जीव सदा संसारी ही होता है, कर्मसहित होता है और आत्मा कर्मरहित होता है।

प्रश्नकर्ता : तो जीव और आत्मा, ये दोनों अलग ही हुए न?

दादाश्री : जीव और आत्मा? नहीं। वही का वही आत्मा जब कर्मसहित हो, तब जीव कहलाता है और कर्मरहित हो, तब आत्मा कहलाता है। जब कर्मसहित हो तब जीता और मरता है, वही जीव है।

प्रश्नकर्ता : और आत्मा तो अमर ही है न?

दादाश्री : हाँ, वह तो अमर है।

प्रश्नकर्ता : और जीव उससे चिपका हुआ है?

दादाश्री : नहीं, चिपका हुआ नहीं है। ऐसा है, जीवात्मा, आत्मा और परमात्मा, अब इनमें जो जीवात्मा है, वह कर्मसहित अवस्था है और वह अहंकार सहित है। जो देहाध्यासरूपी है, वह जीवात्मा कहलाता है और जिसे अहंकार नहीं होता, जीना और मरना नहीं होता, वह आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : और फिर परमात्मा स्टेज कौन-सी है?

दादाश्री : परमात्मा तो, उसे खुद के स्वरूप का भान हो गया तो आत्मारूप हो गया, और फिर परमात्मापन प्रकट होता ही रहता है। जब 'फुल्ली' प्रकट हो जाता है, तब 'फुल' परमात्मा बन जाता है। यानी जब तेरहवाँ गुणस्थान पूरा हो गया, केवळज्ञान हो गया, फिर तो 'फुल' परमात्मा ही हो गया!

यानी कि यह जो जीव है न वह आत्मा की ही अवस्था है, लेकिन भ्राँत अवस्था है और उसे जीव क्यों कहा? कि जो जीता है और मरता है, उस अवस्था को जीव कहते हैं। और आत्मा शुद्ध चेतनरूप है, वह खुद ही परमात्मा है, लेकिन ऐसा भान होना चाहिए। जब तक भान नहीं हो जाता, तब तक 'मैं आत्मा हूँ' इतनी भी ख़बर नहीं होती। 'मैं तो जीव हूँ' अभी तक ऐसा ही भान है। आत्मा की भ्राँत अवस्था में ही 'मैं हूँ' यानी कि 'मैं जी रहा हूँ, मैं मर जाऊँगा' ऐसा मानता है।

आपको समझ में आया न? जीव और आत्मा, ये दोनों एक वस्तु भी नहीं हैं और अलग भी नहीं हैं। 'अलग' कहेंगे तब तो अलग विभाग हो जाएगा, ऐसा नहीं है। और यदि 'एक हैं' कहेंगे तो आत्मा में अशुद्धि उत्पन्न हो गई, आत्मा को भ्रांति उत्पन्न हुई, ऐसा कहा जाएगा, लेकिन ऐसा भी नहीं हुआ है। क्योंकि खुद आत्मा हुआ ही नहीं है। यह तो आत्मा की भ्रांँत अवस्था उत्पन्न हो गई है और वही जीव है।

यानी जीव और आत्मा एक ही हैं। खाना बनाते समय रसोई पकानेवाली कहलाती है और बाहर नाच करते समय नाचनेवाली कहलाती है, लेकिन स्त्री वही की वही है।

मैं, बावो, मंगलदास

अपने यहाँ पहले कहते थे न, हम पूछें 'कौन आया?' तब कहता है, 'मैं आया हूँ।' तब पूछें, 'मैं, लेकिन कौन? बोल न!' तब कहेगा, 'मैं बावो (साधु)।' तब पूछें कि, 'बावो कौन?' तब कहेगा, 'मैं बावो मंगलदास।' तब वह पहचान पाता है। वर्ना सिर्फ 'मैं' ही कहे तो कोई पहचानेगा नहीं। मैं बावो कहे, तो भी वह कहेगा कि, 'यह बावो आया या वह बावो आया?' यानी कि मैं, बावो, मंगलदास, इस तरह से तीन बोलेगा, तब वह पहचानेगा कि 'हाँ, वह मंगलदास बावो।' उसे ऐसे छवि भी दिखेगी, फिर दरवाज़ा खोलेगा। और फिर अगर मंगलदास दो-तीन हों तो ऐसा कहना पड़ेगा कि, 'मैं बावो मंगलदास, महादेवजीवाला', तब पहचान पाएँगे। यानी मैं बावो मंगलदास। बोलो, अब कितने लोग होंगे? इसमें मैं कौन? बावो कौन? मंगलदास कौन? ऐसा आपने नहीं सुना है? लेकिन आपको काम में नहीं आया। और मैंने तो जैसे ही सुना कि तुरन्त मुझे काम आ गया। एक-एक वाक्य सुनता हूँ और मुझे वाक्य काम में आते हैं। रास्ते पर से मिले तो भी मुझे काम में आ जाता है।

यानी कि 'मैं' कौन है, उसे पहचानना तो पड़ेगा न? और वह उसकी खुद की समझ में फ़िट करना पड़ेगा न, कि 'मैं' कौन है। इसी तरह इसमें 'मैं', वह आत्मा है, इस 'मैं' को पहचान जाए तो हल आ जाए।

....ऐसा भान होने की ही ज़रूरत....

प्रश्नकर्ता : यानी आत्मा से ही परमात्मा बनता है, ऐसा?

दादाश्री : आत्मा खुद ही परमात्मा है। सिर्फ उसे भान हो जाना चाहिए। आपको यदि भान हो जाए, एक मिनट के लिए भी भान हो जाए कि 'मैं परमात्मा हूँ' तब से ही आप परमात्मा बनने लगोगे!

प्रश्नकर्ता : तो 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा हम बोल सकते हैं?

दादाश्री : आप ऐसा कहो कि 'मैं परमात्मा हूँ' तो लोग आपको डाँटेंगे, गालियाँ देंगे, मज़ाक उड़ाएँगे। जब कोई आपका मज़ाक नहीं उड़ाए, आपको गालियाँ नहीं दे, तब 'मैं परमात्मा हूँ', ऐसा कहना। हम बनावटी आम लेकर जाएँ तो रस निकलेगा क्या? नहीं निकलेगा न! ऐसा आपको समझ में आता हैं न? यानी कि आप परमात्मा ही हो, लेकिन आप परमात्मा बन नहीं चुके हो। उस स्वरूप का आपको भान नहीं हुआ है। अभी आपको 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा भान है। 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा भान हो जाना चाहिए। तो अब क्या 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा आपसे ऐसा बोला जा सकता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं कह सकते।

दादाश्री : हाँ, नहीं तो लोग मज़ाक उड़ाएँगे। ये लोग तो, अगर यथार्थ बात हो, सही हो तो उसका भी मज़ाक करें, ऐसे हैं। यह तो दुनिया है। इसका तो अंत नहीं है।

अब 'आप आत्मा हो' इसका विश्वास हो गया है? 'आप आत्मा हो' का आपको क्या अनुभव हुआ? किस तरह से भरोसा हुआ?

प्रश्नकर्ता : इतना भरोसा तो है कि अंदर आत्मा है।

दादाश्री : लेकिन यह भरोसा हुआ कैसे? ऐसा कोई थर्मामीटर नहीं आता कि ऐसे रखें कि तुरन्त हमें पता चल जाए कि अंदर आत्मा है? थर्मामीटर होता है ऐसा?

प्रश्नकर्ता : मनुष्य के मर जाने के बाद उसका हाथ भी काम का नहीं रहता, कुछ भी काम का नहीं रहता।

दादाश्री : वह तो जीवात्मा है, वह मर गया। उससे आपने आपका आत्मा जान लिया? आपको क्या ऐसा अनुभव है कि 'मैं आत्मा हूँ?'

प्रश्नकर्ता : मैं कहता हूँ कि मुझे आत्मा का अनुभव है, आप कहते हैं कि मुझे अनुभव नहीं है। तो मुझे किसका अनुभव है, यह बताइए।

दादाश्री : ऐसा है, आपको अभी जीवात्मा का अनुभव है। लेकिन वह मूल आत्मा नहीं है। मूल आत्मा चेतन है और जीवात्मा निश्चेतन-चेतन है। पूरी दुनिया निश्चेतन-चेतन को चेतन मान बैठी है, इसलिए फँसी है। निश्चेतन-चेतन अर्थात् चेतन जैसे सभी लक्षण दिखते हैं, चलता-फिरता हुआ भी दिखता है लेकिन यह चेतन नहीं है।

आत्मभान होने पर, खुद अमर

प्रश्नकर्ता : फ़लाने मनुष्य में से जीव चला गया इसलिए वह मर गया, ऐसा कहते हैं। तो इसमें जीव और आत्मा, ये दोनों एक हैं या अलग हैं? यदि दोनों एक हैं, तो कौन-सी स्थिति को जीव कहते हैं? कौन-सी स्थिति को आत्मा कहते हैं?

दादाश्री : जो जीता-मरता है, उसे जीव कहते हैं और जो जीता भी नहीं और मरता भी नहीं, वह आत्मा कहलाता है। जीव तो 'टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट' है, वह अवस्था मात्र है।

प्रश्नकर्ता : जीव और आत्मा एक शरीर में से निकलकर दूसरे शरीर में चले जाते हैं, जब तक मोक्ष नहीं हो जाता, तब तक?

दादाश्री : वह तो सिर्फ जीवात्मा अकेला नहीं, बाकी का सभी कुछ साथ में जाता है। कर्म-वर्म सभी जाते हैं। जब तक मुक्ति नहीं होती, कर्मरहित नहीं हो जाता, तब तक सबकुछ साथ-साथ घूमता है। किए हुए कर्म साथ के साथ ही रहते हैं।

सिर्फ 'खुद कौन है?' इतना ही जान लेना है। अगर 'तू' जीव है और जी रहा है तो मर जाएगा और अगर 'तू' आत्मा है तो अमर हो जाएगा। जीवन, वह अवस्था है और जो जीता-मरता है उसे जीव कहते हैं। संसारी अवस्था में जीव कहलाता है। उसमें पाप-पुण्य सबकुछ एक साथ होता है, पौद्‌गलिक वस्तु साथ में होती है, कर्मसहित होता है, उसे जीव कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो मन किसे कहते हैं?

दादाश्री : मन तो, जिसमें विचार आते हैं न उसे मन कहते हैं। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, ये तो अंतःकरण की चीज़ें हैं। और जीव तो, इन सबका जो ऊपरी है, वह खुद ही जीव है, और आत्मा वह अलग चीज़ है। जीव से आत्मा अलग है। यह जो जीता-मरता है, वह जीव है। आत्मा मरता नहीं है। 'आत्मा' तो अमर है और वही 'अपना' स्वरूप है।

प्रश्नकर्ता : तो जीव ही *पुद्‌गल* कहलाता है न?

दादाश्री : हाँ, जीव ही *पुद्‌गल* कहलाता है। लेकिन हमें जीवंत दिखता है। चलता है, फिरता है, बोलता है, सबकुछ करता है। लेकिन है यह *पुद्‌गल*। जीव अर्थात् सिर्फ पुतला खड़ा हो गया है!

भ्रांति टूटने से मिटें भेद

प्रश्नकर्ता : जीव को परमेश्वर किस प्रकार से कह सकते हैं? जीव तो एक आभास है।

दादाश्री : भेदबुद्धि से जीव कहा जाता है। जब तक भेदबुद्धि है कि मैं अलग हूँ और भगवान अलग हैं, तब जीव कहलाता है, और अभेद बुद्धि हो जाए कि 'मैं ही भगवान हूँ' तब शिवबुद्धि हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं आत्मा हूँ' उस दृष्टि से आत्मा में भेद नहीं है?

दादाश्री : 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा भान हो जाए न तो जीव-शिव का भेद खत्म हो जाए!

प्रश्नकर्ता : यह ठीक है। लेकिन जीव और परमेश्वर, इनमें क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : जो जीव है, वह इन विनाशी चीज़ों को भोगना चाहता है और उसे विनाशी चीज़ों में श्रद्धा है। और परमेश्वर को अविनाशी में ही श्रद्धा है और परमेश्वर खुद के अविनाशी पद को ही मानते हैं, विनाशी चीज़ों की उनके लिए कोई क़ीमत नहीं है, फ़र्क़ सिर्फ इतना ही है। 'जीव' यानी कि वह 'खुद' भ्रांति में है, उस भ्रांति के चले जाने के बाद इन विनाशी चीज़ों की सारी मूर्च्छा खत्म हो जाती है, तब 'खुद' ही 'परमेश्वर' बन जाता है!

वीतराग होने के लिए सबसे पहले आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद होना चाहिए। आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो जाएँ तो चिंता होती ही नहीं, संसार में रहने के बावजूद चिंता नहीं होती। चिंता हो तो उसका अर्थ ही क्या है? भगवान महावीर का सिद्धांत इतना सरल है, लेकिन यदि 'ज्ञानी' मिलें तो। और यदि 'ज्ञानी' नहीं मिलें तो करोड़ों उपाय करने से भी भगवान के सिद्धांत का एक अंश भी प्राप्त नहीं हो सकेगा।

'मैं-तू' के भेद से, अनुभूति नहीं होती

यानी कि भगवान की भक्ति करना अच्छा है। उससे हमें भौतिक सुख मिलते हैं, आगे का रास्ता मिलता है। अध्यात्म के रास्ते पर आगे बढ़ता जाता है, अच्छा संग मिलता जाता है, सत्संग भी मिलता जाता है। लेकिन वहाँ पर अनुभूति नहीं है। अनुभूति तो, जीव-शिव की भेदबुद्धि टले तब अनुभूति कहलाती है।

इसमें से आपको एक भी वाक्य पसंद आया, जीव-शिव की भेदबुद्धि का? तभी अनुभूति कहलाएगी न! नहीं तो मानी हुई अनुभूति सारी गलत है न? ऐसी झूठी अनुभूति तो बहुत लोगों ने बहुत रखी हुई हैं और वे बाज़ार में से ले आए होते हैं। दूसरे लोगों द्वारा फेंकी हुई, बेची हुई, उसे ये लोग खरीदकर ले आते हैं! यानी कि जीव-शिव की भेदबुद्धि चली जानी चाहिए। अत: अखा ने यही कहा है न कि,

'जो तू जीव तो कर्ता हरि, जो तू शिव तो वस्तु खरी।'

सही कहता है न अखा? यानी कि जीव-शिव की भेदबुद्धि छूटी तो फिर तू शुद्धात्मा है, तू ही परमात्मा है! जब कि यह तो कहेगा, 'भगवान जुदा और मैं जुदा।' लेकिन जब जीव-शिव की भेदबुद्धि समझ में आ जाएगी कि इनमें कोई भेद है ही नहीं, तब हो जाएगा मुक्त!

बात को एक दिन समझना तो पड़ेगा न? वर्ना, अंत में आत्मा तो जानना पड़ेगा न? आत्मा को जाने न, तो जीव-शिव की भेदबुद्धि टूट जाएगी, और जीव-शिव की भेदबुद्धि टूटी तो भय टूट जाएगा, और फिर वीतरागता रहेगी।

भगवान जुदा और मैं जुदा, कहेंगे तो कब पार आएगा? वह तो अनंत जन्मों से है ही न! वह तो मैं और तू, दो हैं ही न! 'तू ही, तू ही' कितने ही जन्मों से गाता आ रहा है।

आप ही तो इस दुनिया के मालिक हो! लेकिन यह तो पूरा मालिकीपन ही उड़ जाता है! किस तरह का है यह? यानी कि 'मैं ही शिव हूँ' ऐसा भान होना चाहिए, उसीको अनुभूति कहते हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान हो जाए, वही अनुभूति है। 'मैं जीव हूँ', ऐसा भान तो जीवमात्र को है ही।

...लेकिन रास्ता एक ही है

प्रश्नकर्ता : जीव और शिव का भेद मनुष्यदेह के अलावा और किसी देह में तोड़ा जा सकता है या नहीं?

दादाश्री : नहीं। और किसी देह में नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : सूक्ष्मदेह से तापस कर सकता है?

दादाश्री : तापस? यह जानने के लिए? नहीं। इस भेद को तोड़ने के लिए तापस का तो काम ही नहीं है। वह भी नहीं कर सकेगा।

प्रश्नकर्ता : इस भेद को तोड़ने के लिए सूक्ष्म क्रियाएँ होती हैं? इसे सूक्ष्म देह से जाना जा सकता है?

दादाश्री : ऐसा है, सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' खुद अधिक आगे का जानने के लिए सब कर सकते हैं। 'ज्ञानीपुरुष' में जीव-शिव का भेद जा चुका होता है, फिर भी उसके आगे का जानना हो तो दूसरे सूक्ष्म तरीक़ों से आगे का सबकुछ जान सकते हैं। बाकी, तापस तो कुछ भी नहीं जान सकता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सूक्ष्मदेह से भी जीव-शिव का भेद टाल सकते हैं या नहीं?

दादाश्री : नहीं। टाल सकते हैं, लेकिन वह उनकी मान्यता के अनुसार टाला हुआ होता है। साइकोलोजिकल, ऐसा चलेगा नहीं न! यह तो ज्ञान से पद्धतिपूर्वक होना चाहिए, उसके तरीक़े से होना चाहिए। वेदांत कहो या जैन कहो, अन्य कुछ कहो, लेकिन रास्ता एक ही है। उसका ज्ञान एक ही प्रकार का है।

प्रश्नकर्ता : यानी मनुष्य देह में ही यह जीव-शिव का भेद टूट सकता है, ऐसा है?

दादाश्री : मनुष्य देह के अलावा अन्य किसी भी देह में यह हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : देवगति में?

दादाश्री : नहीं। वहाँ भी कुछ नहीं हो सकता। देवगति में नहीं हो सकता। देवगतिवाले इतना ही कर सकते हैं कि वहाँ पर देवगति में रहते हुए दर्शन करने जाना हो तो यहाँ पर आ सकते हैं। यानी कि देवगतिवाले यहाँ पर दर्शन करने आ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : विदेही स्थितिवाला जीव-शिव का भेद मिटा सकता है?

दादाश्री : विदेही? विदेही तो खुद ही शिव हो चुका होता है। जिसमें जीव-शिव का भेद खत्म हो गया है और फिर खुद शिवस्वरूप हो चुका है, वही विदेही कहलाता है। ऐसे अपने यहाँ पर जनकराजा हो चुके हैं।

कर्ता-भोक्ता, यह अवस्था है जीव की

यानी जीव तो उसकी अज्ञान मान्यता है कि मैं मर जाऊँगा, इसलिए जीव तो, जब तक है तब तक जीता है, नहीं तो मर जाता है। जीए-मरे, उस अवस्था को जीव कहते हैं। और अजन्म-अमर, वह आत्मा कहलाता है, शिव कहलाता है। शुद्धात्मा शिव है। 'खुद शिव है' ऐसा समझे तो हो गया कल्याण।

यह 'मैं कर रहा हूँ, मैं भोग रहा हूँ' जब तक ऐसा भान है तब तक जीव है। जीव कर्ता-भोक्ता है, और जब से 'अकर्ता-अभोक्ता हो गया', ऐसा उसकी श्रद्धा में बैठ जाए, तब से ही वह आत्मा हो गया। प्रतीति में बैठा तब से ही आत्मा हो गया। फिर अभी रूपक में आए या न भी आए, वह बात अलग है। क्योंकि रूपक ज़रा देर से आएगा।

प्रश्नकर्ता : कौन-सी अवस्था को जीव की अवस्था कहा है, यह समझ में नहीं आया?

दादाश्री : कर्ता-भोक्ता, वह जीव की अवस्था है। 'यह मैं कर रहा हूँ, यह मैं भोग रहा हूँ', वह जीव की अवस्था है। 'यह मैं कर रहा हूँ। यह मैं भोग रहा हूँ', इसे विनाशी अवस्था कहते हैं। 'मैं मर जाऊँगा' ऐसा बोलता है या नहीं बोलता? और 'मैं तो अभी पंद्रह साल तक जीऊँगा' ऐसा भी बोलता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बोलता है।

दादाश्री : वही जीव है।

प्रश्नकर्ता : जीव खुद ही कर्ता है?

दादाश्री : 'मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ' ऐसा उसे भान है। जो जीने की वांछना करता है और मरने की इच्छा नहीं करता, वह जीव है। आत्मा तो अकर्ता-अभोक्ता है।

आपको जीव-शिव का यह भेद समझ में आया?

विरोधाभासी व्यवहार का अंत कब आएगा?

इसीलिए कहा है कि, '*जो तू जीव तो कर्ता हरि*।' और '*जो तू शिव तो वस्तु खरी*।' तू खुद ही शिवस्वरूप बन गया तो वस्तु फिर कोई है ही नहीं, बाप भी ऊपरी नहीं है। जब तक जीव है, तभी तक यह भौतिक सुख और ये सारे रिश्तेदार अच्छे लगते हैं। 'ये मेरे समधी आए', समधी आए तो उसमें भी खो जाता है। जिसमें भी खो जाता है न, उस स्वरूप हो जाता है। तो समधी आएँ, तो भी समधी में खो जाते हैं, ऐसे लोग हैं।

फिर क्या कहते हैं कि, '*कर्ता मिटे तो छूटे कर्म, ए छे महाभजननो मर्म*।' महाभजन का मर्म कौन-सा? यदि कर्म नहीं छूटे तो कर्म के अधीन कर्ता और कर्ता के अधीन कर्म, कर्म के अधीन कर्ता और कर्ता के अधीन कर्म, कैसा चक्कर है। 'कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़, कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़।' और उसमें ये सभी लोग कर्तापन सिखलाते हैं, कर्ता बनाते हैं। 'ये छोड़ो, अच्छा करो।' अब एक तरफ़ कर्म छोड़ने हैं और एक तरफ़ यह करना है।

प्रश्नकर्ता : विरोधाभास।

दादाश्री : हाँ, इसलिए यह गाड़ी काशी तक पहुँचती नहीं। कितने ही जन्मों से लोगों की गाड़ियाँ पहुँचती ही नहीं। अरे...आराम से न जाने कौन-से गाँव में पड़ी होती है, तो काशी तक किसीकी भी पहुँची ही नहीं। इसलिए मैं आपके लिए काशी का पासपोर्ट बना देता हूँ और वह पासपोर्ट ही आपको काशी तक ले जाएगा। गाड़ी के पहिये नहीं ले जाएँगे, लेकिन यह पासपोर्ट ही ले जाएगा। क्योंकि 'कर्तापन' छूट जाता है। तब फिर रहा ही क्या इस दुनिया में?

उल्टी मान्यताएँ, 'ज्ञानी' ही छुड़वाएँ

प्रश्नकर्ता : मेरा ऐसा मानना है कि जो यह सब करवाता है, वह जीव ही करवाता है।

दादाश्री : लेकिन करनेवाला कौन है? जीव करवाए तो करनेवाला कौन है? वास्तव में तो यह जीव भी नहीं करवाता।

प्रश्नकर्ता : नहीं, जीव ही करवाता है।

दादाश्री : वह तो आपको ऐसा लगता है कि यह जीव करवा रहा है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए ऐसा लगता है कि जीव को पहले कंट्रोल में लो, तो फिर आगे बढ़ा जा सकेगा।

दादाश्री : अरे! जीव करवाता ही नहीं है न बेचारा! जीव में संडास जाने की भी शक्ति नहीं है, वह तो अटके तब पता चलेगा कि यह मेरी शक्ति नहीं है। फिर जब डॉक्टर दवाई दे, तब पेट साफ होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें अंदर से कहता है न कि संडास जाना है तभी संडासे जाते हैं न?

दादाश्री : वह बात तो सही है। प्रेरणा तो अंदर से ही होती है। लेकिन जीव की खुद की संडास जाने की सत्ता नहीं है। जीव दूसरी सत्ता से चलता है। इसमें आत्मा की भी सत्ता नहीं है। जो अंदर से कहता है, वह ठीक है। उसका मतलब क्या कहना चाहते है? अंदर जो प्रेरणा होती है न, वह प्रेरणा जब होती है तब मन तुरन्त ही इन्द्रियों से कह देता है कि ऐसा करना है। तब फिर सभी इन्द्रियाँ तैयार हो जाती हैं। यानी कि अंदर की प्रेरणा-शक्ति से सबकुछ चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जीव को 'कंट्रोल' में लो तभी आगे बढ़ा जा सकता है न?

दादाश्री : इस जीव को 'कंट्रोल' में लेकर तो देखो न! यह तो संडास जाने की भी शक्ति नहीं है। जीने की भी शक्ति नहीं है और मरने की भी शक्ति नहीं है। यदि मरने की शक्ति होती न तो मरता ही नहीं। लेकिन ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : वह शक्ति किसके पास है?

दादाश्री : इसी शक्ति के बारे में मैं आपको बता रहा हूँ और उस शक्ति से ही यह सारा जगत् चल रहा है।

प्रश्नकर्ता : उस शक्ति को हम भगवान कहते हैं।

दादाश्री : हाँ, उसे पूरी दुनिया भगवान कहती है। लेकिन वह शक्ति तो जड़शक्ति है। वह जड़शक्ति है, इसलिए हम उसे भगवान नहीं कहते। जगत् के लोगों में तो समझ नहीं है न, इसलिए उसे ही भगवान मानते हैं, भगवान के अलावा और करेगा ही कौन? लेकिन वह दूसरी शक्ति करती है। वह मैं आपको दिखा दूँगा।

प्रश्नकर्ता : दूसरा मैं ऐसा भी समझता था कि जो सब आवरणवाला है, उसे जीव कहते हैं। और आवरण जैसे-जैसे टूटते जाते हैं, तब जीवात्मा में से आत्मा बनता है।

दादाश्री : ऐसा है, कितने ही लोगों की मान्यता ऐसी होती है कि आवरणसहितवाले को जीव कहो और निरावरण को आत्मा कहो। लेकिन मैं क्या कहना चाहता हूँ कि आवरणसहित होने के बावजूद भी आत्मा प्राप्त होता है, तब फिर यह कोई नई ही चीज़ होगी न?

प्रश्नकर्ता : यह तो नया ही कहलाएगा। वर्ना हमें जो समझाया गया है कि समुद्र में पानी है, उसमें पवन से जब लहरें उठती हैं, तब जो लहर है वह आत्मा है और समुद्र परमात्मा है।

दादाश्री : ये तो सब विकल्प हैं, पागल जैसे विकल्प! हाँ, आवरणवाले को जीव कहना चाहिए और जो निरावरण हो उसे आत्मा कहना चाहिए, इस विकल्प को हम चला सकते हैं। बाकी, अन्य ऐसे विकल्प तो काम के ही नहीं है। आत्मा जाना जा सके, ऐसी वस्तु नहीं है। वर्ल्ड में हज़ारो वर्षों में कभी ही आत्मज्ञानी, कोई एकाध मनुष्य ही होते हैं, अन्य कोई मनुष्य नहीं हो सकता, यह ऐसी बेजोड़ चीज़ है। बेजोड़ यानी जो अद्वितिय हो।

भ्रांति का, कितना अधिक असर

प्रश्नकर्ता : जीव वही शिव है और आत्मा वही परमात्मा है तो फिर ये एक-दूसरे को मार डालते हैं, खून कर डालते हैं, दुःख हो जाए ऐसा करते हैं, ऐसा किसलिए?

दादाश्री : यह तो प्रकृति की लड़ाई है, आत्मा की लड़ाई नहीं है। प्रकृति लड़ती है। जैसे ये पुतले लड़ते हैं, ऐसा है। जब तक यह भ्रांति है तब तक 'यह मेरे बेटे का बेटा मर गया!' लेकिन ओहोहो! आत्मा तो वैसे का वैसा ही रहा, लेकिन पैकिंग मर जाती है और फिर रोना-धोना मचाते हैं कि 'मेरे बेटे का बेटा, इकलौता बेटा था।' जैसे वह खुद कभी मरनेवाला ही नहीं हो, ऐसे रोता है।

'वस्तु' एक, दशाएँ अनेक

अनंत आत्माएँ हैं और उन सभी में भगवान होने की क़ाबिलीयत है लेकिन अभी मूढ़ात्मा दशा में हैं, बहिर्मुखी आत्मा है।

बहिर्मुखी आत्मा का मतलब ही मूढ़ात्मा है। बहिर्मुखी अर्थात् टेम्परेरी वस्तु में सुख ढूँढता है कि 'यह मेरा है, इसमें से सुख मिलेगा, ऐसे सुख मिलेगा' और अनंत जन्मों से भटक रहा है, लेकिन किसी में भी सुख नहीं मिलता, तब फिर उकता जाता है। फिर भी वापस कहेगा, इसमें से सुख मिलेगा। लेकिन ऐसी कितनी चीज़े हैं, बहुत सारी अनंत चीज़े हैं, उनमें से एक को हटाता है और वापस दूसरी ले लेता है। इसे हटाता है और फिर दूसरी। ऐसे करते-करते काल बीत रहा है, लेकिन किसी भी जगह पर सुख नहीं मिलता।

सभी भौतिक सुख विनाशी हैं और ये कल्पित सुख हैं, ये सच्चे सुख नहीं हैं। कल्पित अर्थात् आपको जो खीर भाती है, वही किसी और को खाना अच्छा नहीं लगता, ऐसा होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : जब कि सच्चा सुख तो सभी को अच्छा लगेगा। यदि

वह सनातन सुख, सच्चा सुख हो न तो सभी को अच्छा लगेगा। यह तो कल्पित सुख है। हर एक का अलग-अलग होता है। कुछ जातियों में सिर्फ 'वेजीटेरियन' ही खाते हैं और किसी अन्य जाति को दूसरे ही प्रकार का खाना अच्छा लगता है। यानी कि हर एक की अलग-अलग कल्पित वस्तुएँ हैं। अतः जब तक कल्पित सुख भोगने की इच्छा है, जब तक उसकी तमन्ना है, तब तक जीवात्मा की तरह रहता है। तब तक वह जीवात्मा कहलाता है। फिर जब 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तब अंतरात्मा बन जाता है। यहाँ पर अंतरात्मा बनने के लिए तो संतपुरुष से भी काम नहीं चलेगा। संतपुरुष तो उसे आगे ले जाएँगे। फिर अंतरात्मा बनने पर उसकी इन भौतिक सुखों की इच्छा खत्म हो जाती है और खुद के आत्मा का सुख, सनातन सुख प्राप्त करने की इच्छा हो जाती है। और 'ज्ञानीपुरुष' थोड़ा-बहुत सुख उसे चखा देते हैं, तब फिर वही भौतिक सुख उसे अच्छा नहीं लगता। जैसे आप सुबह चाय पीते हो। लेकिन अगर चाय पीते समय किसीने जलेबी लाकर रखी, तो आप क्या विवेक रखोगे? पहले क्या खाओगे? जलेबी खाओगे या चाय पीओगे?

प्रश्नकर्ता : चाय।

दादाश्री : पहले चाय पीओगे। किसलिए? कि जलेबी खाओगे तो चाय फीकी लगेगी। और फिर उसमें पत्नी की भूल निकालता है कि यह चाय फीकी क्यों बनाई है? अब फीकी लगती है, वह तो जलेबी के कारण है। इसी प्रकार जब आत्मा का सुख चखता है, तब ये भौतिक सुख फीके पड़ जाते हैं, इसीलिए फिर उसे इनमें रुचि नहीं रहती, इसमें अच्छा नहीं लगता, फिर भी वह भोगता ज़रूर है। लेकिन जब यह अच्छा नहीं लगता, तब अंतरात्मदशा हो जाती है।

यानी जब तक उसे भौतिक सुखों की आवश्यकता है तब तक बहिर्मुखी आत्मा है। और जब खुद का स्वरूप जान जाता है कि, 'भाई, यह मैं नहीं हूँ, मैं तो शुद्धात्मा हूँ, मैं तो हमेशा के लिए हूँ और मुझे इस संसार की कोई चीज़ नहीं चाहिए', तब अंतरात्मदशा हो जाती है। अंतरात्मदशा दो काम करती है। एक तो भौतिक संबंधी, व्यवहार के लिए

काम करना पड़ता है, तब उसका 'खुद' का उस तरफ़ का उपयोग है और 'खुद' का काम करना पड़े, तब 'इस' तरफ़ उपयोग रखता है। इस प्रकार दो उपयोग रखता है। उपयोग तो एक ही होता है, लेकिन जिस समय कुछ टाइम मिला, वैसे संयोग मिल गए तो इस तरफ़ उपयोग रखता है और ये संयोग मिल जाते हैं तो इस तरफ़ उपयोग रखता है। अंतरात्मा अर्थात् 'इन्टरिम गवर्नमेन्ट' की स्टेज है। फिर धीरे-धीरे बाहर का, संसार का *निकाल* करता है, वैसे-वैसे अंतरात्मा में से धीरे-धीरे 'फुल गवर्नमेन्ट' बनती जाती है।

अब आपको और क्या पूछना है?

प्रश्नकर्ता : मैं यही कन्फर्म करना चाहता हूँ कि जीवात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा, ये एक ही वस्तु के तीन अलग-अलग नाम हैं?

दादाश्री : एक ही वस्तु के तीन विशेषण हैं। घर पर बेटे का बाप कहलाता है और वहाँ अपनी दुकान पर गया तो सेठ कहलाता है और कोर्ट में वकील कहलाता है। 'अरे, क्यों यही के यही पिता, यही के यही सेठ और यही के यही वकील, ऐसा क्यों बोल रहे हो?' तब कहता है, 'जैसे-जैसे काम हैं, उसके अनुसार उनका विशेषण है।' जैसे संयोग उसे मिलते हैं, दुकान मिली तो सेठ कहलाता है, कोर्ट में वकालत करने गया तो वकील कहलाया, यह सब भी उसी प्रकार का है।

यानी लोग जीवात्मा कहते हैं और आत्मा कहते हैं, ये सब एक ही चीज़ है। जैसे आपको सभी लोग प्रोफेसर कहते हैं, लेकिन घर में बच्चे?

प्रश्नकर्ता : पापा कहते हैं।

दादाश्री : हाँ। और कॉलेज में प्रोफेसर। उसी तरह कौन-कौन से कार्य के अधीन हो आप, उसके अधीन ही ये सभी विशेषण दिए गए हैं। जिस तरह 'आप' वही के वही हैं, लेकिन एक जगह पर पापा हो और एक जगह पर प्रोफेसर हो, उसी तरह इसमें भी काम के अनुसार विशेषण है।

जब तक ऐसा माना है कि *पुद्गल* में ही, विनाशी चीज़ों में ही सुख

है, तब तक वह जीवात्मा है। और यह मान्यता पूरी हुई और सनातन में सुख है ऐसी मान्यता शुरू हुई, तब अंतरात्मा बन गया। और परमात्मा अर्थात् क्या? जो वीतराग हो चुके हैं, किसीके साथ राग-द्वेष नहीं है तो वे परमात्मा कहलाते हैं। तब फिर अंतरात्मा कौन है? तब कहते हैं, वीतराग बनने की जिसे दृष्टि है, वह अंतरात्मा। और इन भौतिक सुखों में जिसे मज़ा आता है और राग-द्वेष ही करता रहता है, वह जीवात्मा है। यह आपको समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : माया के इतने सारे आवरण होते हैं....

दादाश्री : ये सभी माया के ही आवरण हैं न!

प्रश्नकर्ता : इन माया के आवरणों के कारण फिर वह अंतरात्मदशा में जा नहीं पाता अथवा अंतरात्मदशा से आगे उसकी 'प्रोग्रेस' नहीं हो पाती।

दादाश्री : नहीं, वह तो अंतरात्मा हो गया, इसलिए 'प्रोग्रेस' तो हमेशा होती ही रहेगी। लेकिन यदि 'प्रोग्रेस' नहीं हो रही है, तो अंतरात्मा हुआ ही नहीं है। अंतरात्मा, वह 'परतंत्र-स्वतंत्र' बनता है। कुछ अंशों तक स्वतंत्र होता है, तो फिर वह 'प्रोग्रेस' क्यों नहीं कर सकता। सबकुछ कर सकता है। यानी अभी तक अंतरात्मा हुआ ही नहीं न! अभी तक तो जीवात्मा ही है। अभी तक 'जीव और शिव में क्या फ़र्क़ है', उसे जाना ही नहीं।

यह एक ही वस्तु है, जब तक भौतिक सुखों की इच्छा है तब तक जीव है, और खुद के सुख का भान हो जाए और उस तरफ़ मुड़े, तब शिव है। वही का वही जीव और वही का वही शिव है। जब तक कर्म बाँधता है तब तक जीव है और कर्म बँधना रुक जाए, तो वह शिव बन गया।

मुक्त पुरुष को भजे तो मुक्त होता है

प्रश्नकर्ता : अब आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है और जीव पंचक्लेशवाला है, तो यह जीव सच्चिदानंद स्वरूप किस तरह से बन सकेगा?

दादाश्री : जिसे भजता है वैसा बन जाता है। सच्चिदानंद को भजे

तो सच्चिदानंद बन जाता है और लुटेरे को भजे तो लुटेरा बन जाता है। जीव का स्वभाव ऐसा है कि जिसे भजे वैसा बन जाता है। मुक्त पुरुष को भजे तो मुक्त हो जाता है और बंधे हुए को भजे तो बंधनवाला बन जाता है। यानी कि जो सच्चिदानंद स्वरूप हो चुके हैं, यदि उन्हें भजोगे तो आप भी उन जैसे बन जाओगे।

दशा फेर के लक्षण

प्रश्नकर्ता : जीवात्मा में से अंतरात्मदशा की तरफ़ जाता है तब उसमें कौन-से परिवर्तन ध्यान देने योग्य होते हैं?

दादाश्री : जीवात्मा में से अंतरात्मा बनता है, तब कौन-कौन से परिवर्तन ध्यान देने योग्य होते हैं, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसकी वृत्तियाँ बाहर जाने से रुक जाती हैं, जो वृत्तियाँ बाहर जा रही हों कि 'ऐसा करूँ, वैसा करूँ, ऐसा करें, वैसा करें' वे सब वापस लौटती हैं। जैसे कि ये गायें सुबह चरने जाती हैं, और फिर शाम को वापस लौटती हैं न? उसी तरह वृत्तियाँ वापस लौटने लगती है। तब हमें समझना चाहिए कि यह भाई 'शुद्धात्मा' होने लगा है। वृत्तियाँ जो बाहर भटक रही थीं, वे भटकनी बंद हो गई और खुद के घर की तरफ़ वापस लौटने लगीं। आप अपनी वृत्तियों को देखोगे, जाँच करोगे तो आपको भटकती हुई लगेंगी कि यह तो एक इस तरफ़ भटक रही है, और एक इस तरफ़ भटक रही है, बड़े-बड़े नाश्ताहाउस होते हैं न, वहाँ भी भटककर आती है, इस तरह भटकती हैं या नहीं भटकतीं? बड़े-बड़े अच्छे नाश्ताहाउस हों और एक दिन चखकर आ गया हो तो वह वृत्ति वापस वहाँ भटकती है। यानी सभी वृत्तियाँ भटकती रहती हैं और अंतरात्मा हो गया कि वृत्तियाँ वापस लौटने लगती हैं।

प्रश्नकर्ता : अंतरात्मा में से परमात्मा की तरफ़ जब प्रगति होती है तो उस समय कौन-से खास परिवर्तन ध्यान देने योग्य होते हैं?

दादाश्री : ऐसा है, अस्तित्व, वस्तुत्व और पूर्णत्व, ये तीन 'ग्रेडेशन' हैं। तो अस्तित्व तो, जीवमात्र को खुद के अस्तित्व की खबर रहती ही है कि, 'मैं हूँ।' यह 'मैं हूँ' ऐसी खबर रहती है या नहीं? सिर्फ मनुष्यों को ही नहीं, जानवरों को भी 'मैं हूँ' ऐसा भान है। इस पेड़ को भी 'मैं हूँ' ऐसा भान है। यानी कि जीवमात्र को अस्तित्व का भान है। और जब वह अंतरात्मा बन जाता है, तब वस्तुत्व का भान हो जाता है कि 'मैं कौन हूँ' तब फिर पूर्णत्व तो अपने आप सहज ही होता रहता है। अस्तित्व से लेकर वस्तुत्व तक का ही पुरुषार्थ है। फिर वह धीरे–धीरे आगे बढ़ता ही जाता है। इस तरह से यह दृष्टिफेर है।

इस तरफ़ जाना है उसके बजाय दूसरी तरफ़ जाता है, और ऐसा मानकर जाता है कि इसी रास्ते द्वारा मेरी परिपूर्णता है। जब उसे कोई 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाते हैं, तब उसे वापस मोड़ते हैं और उसकी दृष्टि इस तरफ़ बदल देते हैं, तब फिर जीवात्मा की दशा टूटती है और जब मूल स्थान पर आता है तब उसकी अंतरात्मदशा हो जाती है। फिर वृत्तियाँ सब वापस लौटने लगती हैं। जैसे ही 'वह' वापस लौटा, वैसे ही वृत्तियाँ भी वापस लौटती हैं और फिर अपने आप सहज होता जाता है। अंतरात्मा हो जाने तक, 'इन्टरिम गवर्नमेन्ट' तक 'ज्ञानीपुरुष' का आसरा लेना पड़ता है। और 'इन्टरिम गवर्नमेन्ट' का स्थापन हो गया तो 'फुल गवर्नमेन्ट' होती जाती है।

खुद खुद की पूर्णाहुति, ज्ञानी के निमित्त से

प्रश्नकर्ता : आप तो परम आत्मा हैं और हम जीव हैं, इतना 'डिफरन्स' है, हम में और आपमें!

दादाश्री : यह 'डिफरन्स' है। लेकिन यहाँ पर दर्शन करने से, ज्ञान लेने से 'आप' 'अंतरात्मा' बन जाओगे। अंतरात्मा, वह 'परमात्मा' को देख सकता है। और देखने से 'वही' रूप 'खुद का' होता जाता है। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए आपको?

अभी तो कितनी सारी 'रोंग बिलीफ़' बैठी हुई हैं! ये 'रोंग

बिलीफ़' हमें फ्रेक्चर करनी हैं और 'राइट बिलीफ़' बैठानी हैं, यानी फिर आप अंतरात्मा हो जाते हो, फिर पूर्णाहुति अपने आप होती ही रहेगी।

और यह कोई अँधेर राज नहीं है। मैं एक घंटे में मोक्ष देता हूँ, तो यह अँधेर राज से नहीं होता। ऐसा पहले कभी हुआ ही नहीं है, मैं तो निमित्त हूँ। यह तो अपवाद मार्ग है। जहाँ नियम होते हैं न, वहाँ पर अपवाद हुए बगैर रहता ही नहीं। ऐसा ही यह अपवाद मार्ग है और इसका निमित्त मैं बन गया हूँ।

प्रतीति परमात्मा की, प्राप्त करवाए पूर्णत्व

जब मूढ़ दशा में आता है, तब मूढ़ात्मा कहलाता है। 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं कलेक्टर हूँ', इसे क्या कहेंगे? वह मूढ़ात्मा की मूढ़ दशा है, जो नाशवंत चीज़ों में सुख मानता है। खुद अविनाशी है और नाशवंत विनाशी है, इन दोनों का गुणन कभी हो ही नहीं सकता। फिर भी भ्रांति से भौतिक में सुख मानता है, इसीलिए मूढ़ात्मा कहा है।

अब 'ज्ञानीपुरुष' जब उसे परमात्मा की प्रतीति करवाते हैं कि 'यह सारा जगत् तेरा नहीं है, तू खुद ही परमात्मा है', तब 'मैं-पन' परमात्मा के साथ अभेद हो जाता है। शुरूआत में संपूर्ण अभेद नहीं हो पाता, प्रतीतिभाव से अभेद होता है। सबसे पहले प्रतीतिभाव से है, फिर ज्ञानभाव से अभेद होता है। अर्थात् पहले प्रतीति बैठनी चाहिए कि 'मैं परमात्मा हूँ।' अभी तो 'मैं चंदूलाल हूँ', यह रोंग बिलीफ़ बैठी हुई है। 'मैं कलेक्टर हूँ', यह रोंग बिलीफ़ है। ये सभी रोंग बिलीफ़ 'ज्ञानीपुरुष' फ्रेक्चर कर देते हैं और राइट बिलीफ़ बैठा देते हैं, वह 'खुद' इसे एक्सेप्ट करता है, खुद के मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी इसे एक्सेप्ट करते हैं, 'खुद' संशयरहित हो जाता है, निःशंक हो जाता है, तब काम होता है। ये तो अनंत जन्मों के संशय भरे हुए हैं। उन सभीको 'ज्ञानीपुरुष' फ्रेक्चर कर देते हैं, तब 'खुद' संशयरहित हो जाता है, और तब परमात्मा की प्रतीति बैठती है। वह जो श्रद्धा बैठती है, वह राइट बिलीफ़ है।

प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है, सिद्धक्षेत्र में भी

प्रश्नकर्ता : सभी आत्मा अलग-अलग हैं या सभी एक परमात्मा के ही रूप हैं?

दादाश्री : व्यवहार से सभी अलग हैं। नाम रूप देखने जाएँ तो व्यवहार से सब अलग हैं, 'रियली' एक ही है। 'रिलेटिवली' अलग-अलग हैं और 'रियली' एक हैं तो आपको क्या जानना है?

प्रश्नकर्ता : यह ब्रह्म है, इन्हें एक में से अनेक होने की इच्छा क्यों हुई होगी? 'एकोहम् बहुस्याम्' ऐसी इच्छा क्यों हुई उन्हें?

दादाश्री : यह तो ऐसा है न, कि वह खुद एक ही है। अनेक कभी हुआ ही नहीं, एक ही है। लेकिन भ्रांति से अनेक हो गया है, ऐसा दिखता है। यह एक ही स्वभाव का है। इस सोने की चाहे कितनी भी सिल्लियाँ हों और सबको इकट्ठा करें, तो सारा एक ही है न? और इसमें पीतल मिल जाए तो नुकसान है। सभी भगवान ही हैं, भगवान स्वरूप ही हैं। लेकिन यह अलग दिखता है, उसका कारण भ्रांति है।

प्रश्नकर्ता : यानी सभी में जो चेतन तत्व उपस्थित है, वह एक ही है?

दादाश्री : हाँ, एक ही है। लेकिन एक ही यानी कि स्वभाव से एक है।

प्रश्नकर्ता : फिर जब देहोत्सर्ग होता है, तब वह चेतन जो कि चला जाता है, उसका फिर एकीकरण नहीं हो जाएगा? उसका अस्तित्व अलग किस तरह से रह सकेगा?

दादाश्री : इस जगत् में सबकुछ अलग है। यहाँ पर भिन्नता लगती है न, वैसी वहाँ पर भी भिन्नता है। वहाँ पर अलग यानी कि स्वभाव से सब एक ही लगता है, लेकिन अस्तित्व से तो अलग है, खुद का सुख अनुभव करने के लिए वह खुद अलग है।

स्वभाव से एक ही हैं, लेकिन यह तो भेदबुद्धि से जुदाई लगती है। जब तक अपनी बुद्धि है, तभी तक यह दख़ल रहती है। बुद्धि खत्म हुई कि फिर अभेदता महसूस होती है। बुद्धि क्या करती है? भेद डालती है। यानी कि बुद्धि के चले जाने के बाद यह बात समझ जाएगा, ऐसा है।

आप कहते हो उस प्रकार से यदि 'ऊपर' एकीकरण होनेवाला होता तो कोई मोक्ष में जाता ही नहीं न! यदि ऐसा ही होना होता, एक ही दीया हो जानेवाला होता, तो फिर वहाँ हमें क्या फ़ायदा? उसके बजाय यहाँ पर वाइफ डाँटेगी, लेकिन पकौड़े तो बनाकर देगी। यह क्या बुरा है? यानी कि वहाँ पर एक नहीं हो जाना है। वहाँ पर किसी तरह का दु:ख नहीं है। वहाँ पर निरंतर परमानंद में रहना है। और फिर हर एक आत्मा स्वतंत्र है। एक स्वभाव के हैं, लेकिन हैं सभी अलग। यानी कि वहाँ पर यदि एक हो जानेवाला होता तो फिर यहाँ के आत्मा का क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन चेतन एक प्रकार का हो तो उसका अस्तित्व अलग-अलग किस तरह से रह सकता है?

दादाश्री : अलग ही रहता है तो फिर वह एक किस तरह से हो सकेगा? एक हो ही नहीं सकता! ये सोने की सभी सिल्लियाँ अलग-अलग होती हैं, लेकिन कहलाता है सारा सोना ही, इसी तरह से यह कहा जाता है कि आत्मा एक है। लेकिन यों इन सिल्लियों की तरह सब अलग-अलग हैं। उन सभी में अन्य कोई फ़र्क़ नहीं है। यह तो हमें बुद्धि से उल्टे पासे दिखते हैं। बाकी वहाँ पर सिद्ध स्थिति में सभी अपने-अपने सुख में ही रहते हैं।

भेदबुद्धिवाले को यह बात समझने में बहुत दुविधा होती है। अनेक होने के बावजूद एक है, यह बात बहुत समझने जैसी है और बहुत सूक्ष्म बात है। नहीं तो वहाँ पर यदि सभी एक हो जाते, तो उसमें हमें क्या मिला? और ऐसा मैंने भी बचपन में सुना था कि दीये के साथ दीया मिल जाता है। तब उससे मुझे क्या मिला? हमें जो मोक्ष का सुख चाहिए, और यदि हमें किसी में समा जाना हो, तो उससे हमें क्या सुख मिला? भगवान के

साथ अभेद हो गए तो उसमें अपना क्या रहा? और सभी भगवान ही हैं न! ये रामचंद्रजी मोक्ष में गए तो मोक्ष का सुख अभी वे खुद भोग रहे हैं। और हम लोग यहाँ पर हैं, तो हमें यहाँ की परेशानियाँ रहती हैं, वे भोगनी पड़ती हैं।

और संसार में भी, ब्रह्मांड में भी आत्मा एक नहीं है, अनंत जीव हैं, लेकिन हैं सभी एक स्वभाव के। उनके जो गुणधर्म हैं, उनमें कभी भी फ़र्क़ नहीं आता।

बात तो वैज्ञानिक होनी चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मेरा ऐसा मानना है कि परमात्मा तत्व के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है और हम जिसे आत्मा कहते हैं वह अन्य कुछ भी नहीं है, लेकिन वह परमात्मा का आविर्भाव है।

दादाश्री : ऐसा मानना, लेकिन साथ-साथ दुःख का वेदन है या नहीं? यदि आत्मा, वह परमात्मा का आविर्भाव है, तब फिर क्या आपको दुःख का अनुभव होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दुःख का अनुभव होता है।

दादाश्री : दुःख का अनुभव होता है, तो फिर एक से सौ तक के सभी अंक मानने पड़ेंगे। और यदि दुःख का अनुभव नहीं होता तो फिर नहीं मानोगे तो चलेगा। नहीं तो एक से सौ तक के सभी अंक मानने पड़ेंगे। पैंतालीस के बाद छियालीस आना चाहिए और छियालीस के बाद सैंतालीस आना चाहिए, सबकुछ पद्धतिपूर्वक होना चाहिए। इस तरह गप्प ठोकना नहीं चलेगा। बाकी सब में चलेगा, लेकिन विज्ञान में थोड़ी-सी भी गप्प नहीं चलेगी।

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा, परमात्मा से विभक्त हो चुका, एक अलग तत्व है?

दादाश्री : विभक्त नहीं, आत्मा ही परमात्मा है और जीवात्मा ही परमात्मा है। सिर्फ समझ का फ़र्क़ है। वह जब घर पर होता है तब लोग

कहेंगे कि 'यह तो इस स्त्री का पति है।' और दुकान पर जाए तब कहते हैं, 'यह सेठ है।' कोर्ट में जाए तब कहते हैं, 'यह वकील है।' लेकिन वह खुद वही का वही है। यानी कि वही का वही जीवात्मा, वही का वही अंतरात्मा और वही का वही परमात्मा है। और वह जो काम कर रहा है उस काम के आधार पर उसके विशेषण हैं।

नहीं हो सकते आत्मा के विलीनीकरण

प्रश्नकर्ता : तो यह बात तो ठीक है कि आत्मा परमात्मा में विलीन होता ही है, लेकिन वह एक जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में, नहीं तो तीसरे जन्म में?

दादाश्री : नहीं, नहीं। वहाँ पर विलीनीकरण है ही नहीं। आत्मा खुद ही परमात्मा है। 'मैं चंदूभाई हूँ', अभी आपको ऐसा भान है। जब 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा भान हो जाएगा, तब आपको परमात्मा का भान होगा। यह आत्मा ही परमात्मा है। आपका आत्मा, वह भी परमात्मा है, इनका आत्मा भी परमात्मा है। बाकी यह विलीनीकरण तो सारा इन सब लोगों ने लिखा है न, उससे लोगों के दिमाग़ खत्म कर दिए हैं। आत्मा के विलीनीकरण होते होंगे? यही का यही आत्मा, लेकिन उसका भान नहीं हुआ है। अभी आत्मा की अभानता में हो, आत्मा का भान नहीं है। अभी 'आपको' 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा भान है, 'मैं देसाई हूँ' ऐसा भान है, लेकिन 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा भान नहीं है न!

ये सभी (महात्मा) आपके अंदर बैठे हुए आत्मा को देख रहे हैं, और वही परमात्मा है। यदि विलीनीकरण करना हो न, तब तो ये परमात्मा दिखेंगे ही नहीं न! इन्हें तो बकरी में भी परमात्मा दिखते हैं। बकरी में बैठे हुए पूरे ही परमात्मा दिखते हैं, गधे में भी परमात्मा बैठे हुए हैं। यानी कि विलीनीकरण जैसी बात ही नहीं है। यह सबकुछ जो पढ़कर लाए हो न, वह एक तरफ़ रख देना।

जिसे बिलोने पर थोड़ा-सा भी मक्खन नहीं निकले, उसका क्या करना है? फेंक देना, गिरा देना चाहिए। और ऊपर से यह तो की हुई मेहनत

सब बेकार गई और दिमाग़ में अकड़ चढ़ी कि 'मैं कुछ जानता हूँ!' अरे, क्या जानता है तू? ठोकरें खा-खाकर तो दम निकल गया! ठोकरें खाता है तो दम निकल जाता है या नहीं निकल जाता? और मन में न जाने क्या मान बैठता है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा जो कहा है न कि जो प्रत्येक आत्मा है, वह एक ही आत्मा का आविर्भाव है, ब्रह्म का आविर्भाव है और बाद में फिर उसमें मिल जाता है।

दादाश्री : किसने कहा है आपसे ऐसा?

प्रश्नकर्ता : ऐसा पढ़ा है कि हर एक आत्मा जो है, वह ब्रह्म में विलीन हो जाता है। वह जब पूर्णता की प्राप्ति करता है न, तब ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

दादाश्री : तो फिर अपने हिस्से में क्या रहा?

प्रश्नकर्ता : ब्रह्ममय हो जाते हैं न!

दादाश्री : उसमें अपने लिए क्या बचा लेकिन?

प्रश्नकर्ता : हमें अपनापन खोना है और ईश्वरपन प्राप्त करना है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन यह तो अपने को ईश्वर में समाविष्ट हो जाना है, उससे अपने को क्या फ़ायदा मिला? इसके बजाय तो अपना यह स्वतंत्र व्यक्तित्व तो है, तो अभी लड्डू, पकौड़े सबकुछ मिलता है। सिर्फ दो गालियाँ दे देते हैं, उतना ही झंझट है न? और क्या झंझट है? और ये लोग भी क्या कहते हैं कि, 'अगर यहाँ के बजाय वहाँ पर सुख ज़्यादा हो, तभी हम मोक्ष में जाएँगे और वहाँ पर एकाकार हो जाना हो तो हमें नहीं जाना है।'

तेज मिल जाए तेज में, तो खुद का क्या रहा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'अहम् ब्रह्मास्मि' कहनेवाले तेज में मिल जानेवाली बात करते हैं कि मोक्ष अर्थात् तेज में मिल जाना। तो मोक्ष और तेज में मिल जाना, ये दोनों एक ही माने जाते हैं या क्या?

दादाश्री : वे लोग जिसे मोक्ष कहते हैं कि मोक्ष यानी तेज में मिल जाना। वह मोक्ष वाजबी नहीं है। वीतरागों ने मोक्ष के बारे में बताया है न, कि वहाँ सिद्धगति में भी खुद का अलहदा अनुभव है, यह 'करेक्ट' वस्तु है। हमें अलहदा अनुभव नहीं हो पाए और वहाँ पर मोक्ष में सबके साथ एक हो जाना हो, तब तो मोक्ष में जाने का अर्थ ही नहीं है, 'मीनिंगलेस' बात है। यानी कि ये बिना सोची समझी बातें हैं सारी।

सनातन सुख में डूबे रहना, वही मोक्ष

प्रश्नकर्ता : तो आपके हिसाब से मोक्ष किसे माना जाएगा?

दादाश्री : मोक्ष यानी कि 'नो बॉस', 'नो अन्डरहेन्ड' और 'परमानेन्ट' खुद के स्वाभाविक सुख में ही रहे। और वहाँ पर स्वतंत्र, सब अपनी-अपनी तरह से सुख भोगते हैं। हर एक सिद्ध अपनी-अपनी स्थिति में होते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ पर इतने सारे सिद्धात्माएँ अलग-अलग तरह से बरतते हैं?

दादाश्री : अलग-अलग तरह से नहीं। सभी एक ही स्वभाव के हैं, और वे एक ही प्रकार से हैं। उनमें ज्ञान, दर्शन और सुख होता है, चारित्र उनमें नहीं है। यहाँ पर तीर्थंकर भगवान होते हैं, तो वे ज्ञान-दर्शन और चारित्र सहित होते हैं, और देह सहित होते हैं। वहाँ पर सिद्धों में चारित्र नहीं कहलाता। वहाँ पर तो निरंतर खुद के स्वाभाविक सुख में ही रहते हैं।

यानी कि वहाँ पर एकाकार नहीं हो जाना है। वहाँ पर आप अपना सुख स्वतंत्र प्रकार से भोग सकते हो। सिद्धगति में सभी सिद्ध स्वतंत्र रूप से ही हैं। और खुद के सुख का ही अनुभव कर रहे हैं, निरंतर परमानंद का अनुभव कर रहे हैं। उनके एक मिनट का सुख यदि इस दुनिया पर पड़े, शायद कभी टपक पड़े, तो पूरी दुनिया हज़ारों वर्षों तक आनंद में रहेगी, ऐसे सुख को भोग रहे हैं। और ऐसे सुख के लिए ये लोग अधीर हो रहे हैं, और आपका खुद का सुख भी ऐसा ही है। मुझे इस देह का

अंतराय रहने के बावजूद भी जो सुख है, उस पर से समझ में आता है कि इस देह के अंतराय नहीं होंगे तो कैसा सुख होगा! हमारे साथ बैठे हो, तो भी अभी आप सबको सुख मिल रहा है न! उसमें हमारा जो सुख छलकता है न, वही आपको स्वाद देता है!

प्रश्नकर्ता : देह रहित सुख का अनुभव किस तरह से हो सकता है?

दादाश्री : देह रहित सुख के अनुभव का खुद चिंतवन करे तो उसमें भी देह तो है ही साथ में, अतः वह सुख उस सुख जैसा नहीं हो सकता। वह तो इस पर से हमें हिसाब लगाना है कि यहाँ पर यदि इतना अधिक सुख है तो वहाँ कैसा सुख होगा!

सिद्धगति में सुख का अनुभव

प्रश्नकर्ता : जो सिद्धगति में हैं, मोक्ष में गए हैं, वे लोग जिस देह–रहित सुख का अनुभव करते हैं, तो वह सुख कौन अनुभव करता है?

दादाश्री : खुद ही, खुद का अनुभव करता है। खुद, खुद के स्वानुभव सुख को भोगता ही रहता है और वह फिर निरंतर गतिमान है (परिणमन होते रहते हैं)। उन्हें काम ही क्या है? कि ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया, निरंतर चलती ही रहती हैं!

प्रश्नकर्ता : फिर उन्हें क्या ज़रूरत है वहाँ पर, इस ज्ञानक्रिया, दर्शनक्रिया की?

दादाश्री : वह तो स्वभाव है उनका। यह लाइट है, वह निरंतर हमें देखती रहती होगी न? यह लाइट यदि चेतन होती तो हमें निरंतर देखती ही रहती या नहीं देखती रहती? वैसे ही यह चेतन देखता रहता है।

अब वे वहाँ पर रहकर क्या देखते होंगे? अब उनके पास ज्ञान–दर्शन है न, उनके इसी अनंतज्ञान और अनंतदर्शन का उपयोग होता है, इसके परिणाम स्वरूप आनंद रहता है। यानी कि पहले आनंद नहीं होता। आनंद पहले और बाद में ज्ञान और दर्शन, ऐसा नहीं होता। उनके ज्ञान

और दर्शन का उपयोग होता है, उससे आनंद रहता ही है! तो उनमें ज्ञान-दर्शन के अलावा और कुछ है ही नहीं। वह स्वरूप ही पूरा ज्ञान स्वरूप है, दर्शन स्वरूप है। यानी हमने हाथ ऊँचा किया, तो दिखा उन्हें।

तो उन्हें भी वापस क्या होता है कि जो देखना है, उसकी भी फिर हानि-वृद्धि होती रहती है। रात हो जाए तो इस भाग में हानि होती है और दूसरे भाग में वृद्धि होती है, इस तरह से हानि-वृद्धि होती है। और अपने यहाँ सुबह के पाँच बजें, तब से ही ये लोग उन्हें दिखने लगते हैं, लेकिन वास्तव में वृद्धि कब दिखती है? दस, ग्यारह, बारह बजे बहुत कुछ दिखता है, अरे लोग सब घूम रहे होते हैं, ऐसे घूम रहे होते हैं, वैसे घूम रहे होते हैं, सब दिखता है। उन्हें देखना है और जानना है, ये दो ही, और गहराई में नहीं उतरना है कि यह चोरी करने निकला है क्या? उन्हें तो अगर कोई जेब काटते हुए भी दिखे, तो भी उन्हें तो देखना और जानना ही है! विषय नहीं हैं उनमें, विषय अर्थात् 'सब्जेक्ट' नहीं हैं। यह कौन-सा विषय है? तब कहते हैं कि जेब काटने का। यह विषय इन लोगों को जानना है, उन्हें तो कुछ भी नहीं है!

मैंने हाथ ऊँचा किया, तो वह सभी सिद्धों को ज्ञान में दिखता है। वे सिद्ध ज्ञेयों को जानते ही रहते हैं। इस जगत् में ज्ञेय और दृश्य दो ही वस्तुएँ हैं। ज्ञेयों को जानते रहते हैं और दृश्यों को देखते रहते हैं। उसका परिणाम क्या? कि अनहद सुख, सुख का अंत ही नहीं, वह स्वाभाविक सुख है।

स्वभाव से एक समान, लेकिन अस्तित्व से भिन्न

अब लोगों को क्या झंझट है? कि वहाँ पर एक क्यों नहीं है? अरे, एक है, लेकिन वह किस प्रकार से है? कि यहाँ पर पाँच लाख सोने की सिल्लियाँ हों, ढेर लाया हो तो उसे हमें क्या कहना पड़ता है कि यह सोना है? ऐसा नहीं कहते? कहते हैं न?

प्रश्नकर्ता : सोना भी कहा जाता है और सिल्ली भी कहा जाता है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन यह सब सोना ही है ऐसा कह सकते हैं या नहीं कह सकते? भले ही सिल्ली के रूप में हो, लेकिन सोना ही है न सारा? उसी तरह से ये परमात्मा एक ही हैं। आत्मा एक ही है, लेकिन वह सोने के रूप में एक ही है, और सिल्लियों के रूप में अलग-अलग है। उनमें से प्रत्येक खुद के व्यक्तित्व-भाव को छोड़ता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : यानी उसका अर्थ यह हुआ कि पूरा एक ही आत्मा है, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : सोने के रूप में हर एक आत्मा सोना ही है, लेकिन सिल्ली के रूप में प्रत्येक आत्मा खुद के व्यक्तित्व को छोड़ता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रत्येक व्यक्ति का आत्मा अंत में एक ही है?

दादाश्री : एक अर्थात् एक ही स्वभाव का है। आत्मा में कोई फ़र्क़ नहीं है। जिस तरह सिल्लियों में फ़र्क़ नहीं है, अंत में यह सारा सोना ही है, उसी प्रकार इस प्रत्येक आत्मा में फ़र्क़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यदि आत्मा का एक ही गुणधर्म होता तो फिर व्यक्तित्व सारे अलग-अलग क्यों हुए?

दादाश्री : वे जो उनके व्यक्तित्व अलग-अलग हुए हैं, वह तो उनका काल और क्षेत्र बदलने से। हर एक का काल और क्षेत्र अलग-अलग ही होता है। आप जिस क्षेत्र में बैठे हो, तो इनका वह क्षेत्र नहीं हो सकता न? अब उनके यहाँ से उठने के बाद जब आप उस जगह पर बैठते हो, तब वही क्षेत्र प्राप्त होता है, लेकिन तब तक वहाँ पर काल बदल चुका होता है।

यानी कि यह जगत् प्रवाह के रूप में है। यह जगत् स्थिर नहीं है, लेकिन प्रवाह के रूप में, संसार के रूप में है। संसार अर्थात् समसरण, निरंतर परिवर्तन को प्राप्त, एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रहता। जैसे कि कोई दो लाख लोगों की सैना ऐसे जा रही हो, पाँच, दस या पंद्रह की जोड़ी में, लेकिन उनकी लाइन में ही होते हैं न सभी? वे ऐसे जा

रहे हों तो आपको दिखता हैं न सब? उसी तरह ज्ञानियों को यह जगत् बहता हुआ ही दिखता रहता है। जब ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, तब दिखता रहता है कि जगत् प्रवाहमान है। और प्रवाहमान है इसलिए जहाँ पर आप हो वहाँ पर उस क्षेत्र में दूसरा नहीं है और जब आपके क्षेत्र में कोई दूसरा आता है, तब तक काल बदल जाता है। ऐसा आपको समझ में आता है? यानी कि (सभी के) देह, आकार, पुण्य और पाप सबकुछ अलग-अलग होते हैं। लेकिन आत्मस्वरूप से सभी एक ही होते हैं।

वस्तु-स्वरूप के विभाजन नहीं होते

प्रश्नकर्ता : तो सभी आत्मा एक ही आत्मा के अंश हैं, ऐसा कहा जा सकता है क्या?

दादाश्री : नहीं, नहीं। सभी आत्मा एक ही आत्मा के अंश नहीं हो सकते। ऐसा है, हमेशा ही, कोई वस्तु होती है न, उसमें इन रूपी वस्तुओं के अंश होते हैं, लेकिन अरूपी के अंश नहीं होते। अरूपी एक ही वस्तु के रूप में होता है। उसके अंश हो जाएँ, टुकड़े हो जाएँ, विभाजन हो जाएँ तो फिर वह एक नहीं हो पाएगा। यानी कि खुद सर्वांश स्वरूप ही है।

प्रश्नकर्ता : यानी मैं अपने आप में पूर्ण शुद्धात्मा हूँ?

दादाश्री : आप पूर्ण ही हो, सर्वांश ही हो न!

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा का विभाजन नहीं हो सकता?

दादाश्री : आत्मा खुद ही परमात्मा है और वह वस्तु के रूप में है। यानी उसका एक भी टुकड़ा अलग नहीं हो सकता, ऐसी पूर्ण वस्तु है। अगर विभाजन हो जाए तो टुकड़ा हो जाएगा तो वस्तु खत्म हो जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं है। आत्मा का विभाजन नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : अमीबा नामक जीव है, उसकी वंशवृद्धि विभाजन पद्धति से होती है, एक से दो होते हैं, दो से चार होते हैं, इसलिए प्रश्न हुआ कि क्या आत्मा का विभाजन होता है?

दादाश्री : यह ठीक है। लेकिन उसमें आत्मा का विभाजन नहीं होता। इस देह का विभाजन होता है। इस देह में अनंत जीव होते हैं, वे जीव अलग-अलग विभाजित हो जाते हैं। यह जो एक आलू है न, इसमें बहुत सारे जीव हैं। उसके जब टुकड़े करें न, तो इतना छोटा-सा टुकड़ा लगाएँगे तो भी वह उग जाएगा वापस। और दूसरी कितनी ही चीज़ों के टुकड़े करें और लगाएँ तो वे नहीं उगेंगे! जिसके टुकड़े करके लगाएँ और वह उग जाए, उसमें बहुत सारे जीव होते हैं। ये दूधवाले पौधे हैं न, कैक्टस और ऐसे, इन सबका इतना-सा टुकड़ा उगाएँ तो उग जाता है। उनमें अधिक जीव है, उससे वंशवृद्धि होती ही रहती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सूक्ष्मआत्मा और स्थूलआत्मा ऐसा जो कहा जाता है, तो उसमें क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : ऐसा है, सूक्ष्मआत्मा, स्थूलआत्मा, आत्मा के इस तरह के विभाग होते ही नहीं। फिर भी ये लोग स्थूलआत्मा और सूक्ष्मआत्मा ऐसा सब कहते हैं। वह सारा ही विनाशी आत्मा है। और जो मूल दरअसल आत्मा है न, वह तो अविनाशी है। उसका सूक्ष्मभाग भी नहीं होता, स्थूलभाग भी नहीं होता।

मैं जिसे आत्मा कहता हूँ उसमें, जिसका सूक्ष्म विभाग नहीं है, स्थूल विभाग नहीं है, अविभागी-अविभाज्य, ऐसा वह परमात्मा है। और आप, जिसका विभाजन हो सकता है, ऐसे स्थूल और सूक्ष्म आत्मा की बात कर रहे हो। यह स्थूल, सूक्ष्म, वह सब विनाशी है। वह 'मिकेनिकल आत्मा' है। और अगर हवा जाने दें, तभी वह 'मिकेनिकल आत्मा' चलेगा, नहीं तो अगर हवा बंद कर दें तो वह खत्म हो जाएगा। जब कि मूल आत्मा तो मरता ही नहीं।

यानी आत्मा यदि परमात्मा का अंश होता न तो वह कभी भी सर्वांश नहीं हो पाता। और जो सर्वांश नहीं हो सके, वह आत्मा ही नहीं है। 'आप' सर्वांश हो लेकिन उसका आपको भान नहीं है। आपको अंश भान है। आप तो पूर्ण परमात्मा हो, लेकिन आपको कम भान है। अंश परमात्मा कभी भी होता ही नहीं है। परमात्मा के टुकड़े नहीं हो सकते।

क्या रुपया कभी पैसा बना है?

आपको समझ में आया न कि भगवान तो सर्वांश स्वरूप से ही हैं? आप ऐसा समझते थे कि भगवान अंश स्वरूप हैं? तब इन लोगों ने जो ऐसा बोले हैं कि भगवान अंश स्वरूप से हैं, वह कोई गप्प तो नहीं होगी न? क्या वह गप्प है? वह गप्प नहीं है, लेकिन लोग चुपड़ने की दवाई को पी जाएँ तो क्या होगा? अंशस्वरूप क्या है? कि 'आप' में 'भगवान' तो सर्वांश है, लेकिन जितना आवरण टूटा, 'आपको' उतना आंशिक ज्ञान प्राप्त हुआ है। लेकिन अंदर 'भगवान' सर्वांश हैं। और इस जन्म में 'आपमें' सर्वांश ज्ञान प्रकट हो सकता है। वह हिन्दुस्तान का मनुष्य होना चाहिए। क्योंकि यहाँ का, हिन्दुस्तान का मनुष्य 'फुल डेवलप' हो चुका है। फॉरिनवालों के लिए यह ज्ञान काम का ही नहीं है। क्योंकि जो पुनर्जन्म को नहीं समझते हैं, उनके लिए यह ज्ञान काम का ही नहीं है। जिन्हें पुनर्जन्म समझ में आता है, उन्हें ही भगवान का सर्वांश स्वरूप समझ में आ सकता है।

यानी ऐसा विज्ञान यदि सुनने में आए तो हिन्दुस्तान के लोगों की सभी शक्तियाँ जाग उठेंगी। वर्ना ये लोग मन में क्या मानते हैं कि, 'हम तो क्या कर सकते हैं? हम तो भगवान के अंश हैं।' लोगों ने ऐसा सिखाया कि 'हम तो भगवान के अंश हैं', ऐसा कहना! अब लोगों को जो ज्ञान दिया जाता है, जो समझ दी जाती है, और जिस ज्ञान के आधार पर लोग जीते हैं, वह ज्ञान ही, आधार-ज्ञान ही यदि ऐसा हो कि 'मैं भगवान का अंश हूँ', तो फिर सर्वांश कब हो पाएगा? यानी इसका कुछ अंत नहीं आएगा। तू भगवान का अंश नहीं है। तुम संपूर्ण, सर्वांश भगवान ही हो। अंश कभी भी सर्वांश नहीं बन सकता। जो अंश है न, उसमें सर्वांश बनने की शक्ति ही नहीं है। अंश हमेशा अंश के रूप में ही रहता है। और सर्वांश कभी भी अंश स्वरूप नहीं बन सकता, सर्वांश तो हमेशा ही सर्वांश रहता है। तब फिर ऐसा सारा अज्ञान क्यों फैल गया? भगवान का ऐसा स्वरूप क्यों मानते हैं? तब 'ज्ञानीपुरुष' समझाते हैं कि भगवान तो सर्वांश हैं, लेकिन उनका अंश रूपी आवरण ही खुला है, उतना उसको लाभ मिलता है, बाकी खुद तो सर्वांश ही है।

आपको समझ में आया न? इस तरह से 'मैं अंश स्वरूप हूँ' कहेंगे तो कब पूरा होगा? मुझे ऐसे अंश स्वरूप कहनेवाले मिले तब मुझे ऐसा लगा कि 'यह किस प्रकार का है?' मैं छोटा था तब मुझे कहनेवाले मिले थे कि, 'हम सब तो अंश स्वरूप है।' तब मुझे ऐसे गुस्सा आया कि तू अंश स्वरूप होगा, मैं कैसा अंश स्वरूप? अंश स्वरूप, वह और एक पैसा कभी भी रुपया नहीं बन सकता और रुपया कभी भी पैसा नहीं बन सकता। पैसा लाख वर्षों तक पड़ा रहे तो रुपया बन जाएगा? यानी कि बात को समझने की ज़रूरत है।

सही समझ, सर्वव्यापक की

प्रश्नकर्ता : आत्मा सर्वांश है, उसी प्रकार आत्मा सर्वव्यापी भी है न?

दादाश्री : नहीं। आत्मा सर्वव्यापी है, वह सापेक्ष बात है, वह हमेशा के लिए सर्वव्यापी नहीं है। जिसे सर्वव्यापी कहते हो, वह निरपेक्ष बात कर रहे हो या सापेक्ष बात कर रहे हो?

प्रश्नकर्ता : निरपेक्ष की।

दादाश्री : यह लाइट जो है, यह पूरे रूम में सब और व्याप्त है या नहीं है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, व्याप्त है।

दादाश्री : इस लाइट पर ऐसे काग़ज़ या कुछ डाल दें तो?

प्रश्नकर्ता : तो अँधेरा लगेगा।

दादाश्री : तो फिर यहाँ पर उसकी लाइट नहीं दिखेगी न?

प्रश्नकर्ता : नहीं दिखेगी।

दादाश्री : तो उस समय वह सर्वव्यापी है?

प्रश्नकर्ता : उस समय हमें भ्रांति होती है, लेकिन वह लाइट यों तो सर्वव्यापी है न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। इस सर्वव्यापी का अर्थ लोगों ने समझे बगैर कुछ उल्टा ही निकाल दिया। 'आत्मा सर्वव्यापी है' ऐसा कहते हो, लेकिन वह आपकी समझ की भूल है। सर्वव्यापी का अर्थ मैं आपको समझाता हूँ।

जब अंतिम अवतार होता है, चरम देह होती है, तब आत्मा संपूर्ण निरावृत हो जाता है। उस घड़ी वह आत्मा पूरे ब्रह्मांड में सर्वव्यापी हो जाता है। लेकिन ऐसा सभी आत्माओं में नहीं होता, लेकिन जो आत्मा मोक्ष में जानेवाला होता है, संपूर्ण निरावृत हो चुका होता है, सिर्फ वही आत्मा सर्वव्यापी हो जाता है। बाकी ये सभी दूसरे आत्मा नहीं, आपको समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : यानी आत्मा खुद चेतन के रूप में सर्वव्यापी है?

दादाश्री : नहीं। चेतन के रूप में सर्वव्यापी नहीं है, उसका स्वभाव सर्वव्यापी है। अंतिम अवतार में चरम शरीरी होते हैं, तब उनका लाइट पूरे ब्रह्मांड में सब और फैलता है। अर्थात् वह सापेक्ष वस्तु है। हर एक को ऐसा नहीं होता। यों तो ये सभी लोग मरते ही हैं न! रोज़-रोज़ स्मशान में जाते ही हैं न!

अत: आत्मा सर्वव्यापक है ऐसा कहा जाता है, लेकिन वह उसकी खुद की लाइट से सर्वव्यापक है, उसके प्रकाश से सर्वव्यापक है, इन सभी जगहों पर वह खुद नहीं है।

यानी कि आत्मा का प्रकाश सर्वव्यापक है, यह प्रकाश दूसरी चीज़ों को दिखाता है। इस जगत् में ज्ञेय और ज्ञाता दोनों हैं या नहीं? या फिर सिर्फ ज्ञाता ही है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हैं।

दादाश्री : तो फिर आपने स्वीकार किया न? उसी तरह दृश्य और दृष्टा, दो हैं न? सभी जगह सिर्फ आत्मा ही है, ऐसा नहीं है न? ज्ञेय और ज्ञाता, तथा दृश्य और दृष्टा दोनों ही हैं। आत्मा के अलावा बाकी का सबकुछ

दृश्य है और ज्ञेय है। अब आत्मा का प्रकाश ऐसा है न, कि जहाँ पर ज्ञेय हैं और दृश्य हैं, वहीं तक प्रकाश जाता है।

जिस प्रकार इस घड़े में एक लाइट रखी हुई हो, उसके ऊपर एक ढक्कन लगा दें, तो उजाला बाहर नहीं आएगा, सिर्फ उस घड़े को ही लाइट मिलेगी। फिर घड़े को फोड़ दें, तो वह लाइट कहाँ तक जाएगी? जितने भाजन में रखा हुआ होगा, जितने बड़े रूम में रखा हुआ हो उतने रूम में प्रकाश फैलेगा।

उसी प्रकार आत्मा यदि निरावृत हो जाए न, तो पूरे लोकालोक में फैल जाए, ऐसा है। लेकिन आत्मा सिर्फ इस लोक जितना ही प्रकाश देता है। अलोक में ज्ञेय नहीं हैं, इसलिए आत्मा का, ज्ञाता का प्रकाश वहाँ पर जाता ही नहीं। लोक है और लोक के कारण दूसरे भाग को अलोक कहा है। अलोक में बिल्कुल भी ज्ञेय नहीं हैं, सिर्फ आकाश ही है। अब ज्ञेय नहीं हैं, इसलिए वहाँ पर आत्मा प्रकाश नहीं कर सकता अर्थात् आत्मा ऐसा है कि पूरे लोक को प्रकाशमान कर सके, और वह भी हर एक आत्मा, लेकिन यदि आवरण टूटें तो।

जिस प्रकार घड़े में लाइट रखी हो, फिर उस घड़े में जितने छेद करें, उतना उजाला थोड़ा-थोड़ा करके बाहर आता जाता है। उसी तरह इन पाँच इन्द्रियों से यह उजाला बाहर आता है। अब पूर्ण दशा में यदि कभी यह देह छूट जाए तो यह उजाला पूरे जगत् में व्याप्त हो जाएगा, ऐसा उसका स्वभाव है।

अभी तो देह में ही है। अर्थात् पहले स्वरूप के ज्ञान को जानना, उसे ज्ञानावरण का टूटना कहा जाता है। फिर तो अपने आप ही जैसे-जैसे सभी कर्म हटते जाते हैं, वैसे-वैसे हल आता जाता है। आत्मा के अनंत प्रदेशों पर कर्म के आवरण हैं। जैसे-जैसे कर्मों के *निकाल* होते जाते हैं, वैसे-वैसे आवरण टूटते जाते हैं।

प्रमेय के अनुसार प्रमाता-आत्मा

अतः सर्वव्यापक का अर्थ अलग है। जैसा ये लोग जानते हैं, वैसा

नहीं है। सर्वव्यापक का अर्थ ऐसा है कि यह लाइट का बल्ब है, यही एक बल्ब है, इस रूम में सब तरफ़ कहीं बल्ब नहीं है, रूम में तो उसका प्रकाश ही है। उसी प्रकार पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशमान कर सके, एक अकेले आत्मा में उतनी शक्ति है। शुद्धात्मा हो जाने के बाद में, बाकी बचे हुए कर्म जब पूरी तरह से डिस्चार्ज हो जाते हैं और जब कर्म रहित हो जाता है, तब पूरे ब्रह्मांड में प्रकाश हो सके, आत्मा की उतनी शक्ति है।

लेकिन इसे इन लोगों ने इस तरह से समझा कि इन सभी में आत्मा है, इसमें आत्मा है, इसमें आत्मा है, उल्टा समझे। चुपड़ने की दवाई पी जाए तो क्या होगा? ऐसा हो गया है यह सारा। उसके कारण न तो बाहर का रोग मिटा, न ही अंदर का रोग मिटा।

यानी जब ऐसा कहते हैं कि 'यह लाइट सब और है', उसका अर्थ हमें ऐसा समझना है कि बल्ब तो वहीं के वहीं हैं, लेकिन उसकी लाइट पूरे रूम में है। हम यहाँ से इस बल्ब को एक घड़े में रख दें और उस पर कुछ ढक दें, तो फिर उसकी लाइट सब और दिखेगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं दिखेगी।

दादाश्री : यानी जैसा प्रमेय होगा, उसीके अनुसार प्रमाता होगा। यह प्रमेय इतना ही है, घड़े में बल्ब को रख दें तो घड़े जितना ही प्रकाश फैलेगा, फिर बाहर अन्य कहीं उसका प्रकाश नहीं होगा।

प्रमेय ब्रह्मांड, प्रमाता परमात्मा

प्रश्नकर्ता : एक जगह पर ऐसा वाक्य पढ़ा है कि ''ज्ञानीपुरुष' के पास बहुत समय तक सत्संग करके प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय का स्वरूप समझ लेना चाहिए'', तो आप यह समझाइए।

दादाश्री : हाँ। प्रमेय अर्थात्, यह शरीर प्रमेय कहलाता है और यह ब्रह्मांड भी प्रमेय कहलाता है। आत्मा खुद प्रमाता है। अभी आत्मा इस देह में है, तो अभी आत्मा की लाइट कितनी होगी? उसका प्रमाण कितना

होगा? कि इस देह जितना ही। अब संपूर्ण ज्ञान हो और शरीर छूट जाए, तो उस लाइट का प्रमाण कितना हो जाएगा? पूरे प्रमेय में, पूरे ब्रह्मांड में वह लाइट फैल जाएगी। प्रमाता प्रमेय के अनुपात में फैल जाता है। जैसा भाजन हो, उस अनुसार लाइट फैल जाती है! अर्थात् केवळज्ञान होने के बाद यदि देह छूट जाए तो यह जो प्रमाता है, वह पूरे प्रमेय में फैल जाएगा, खुद का लाइट पूरे ब्रह्मांड में फैल जाएगा। अभी प्रमाण कितना है? तब कहे, 'इस देह जितना ही है।'

घड़े में लाइट रखी हो तब वह तीव्र होती है, और जब वह घड़ा फूट जाता है तो रूम में लाइट फैल जाती है, फिर वह लाइट हल्की हो जाती है। यानी यह लाइट जितनी अधिक फैलती है, उतनी अधिक हल्की होती जाती है। क्योंकि यह तो पौद्गलिक प्रकाश है। और आत्मा की लाइट हल्की नहीं होती, वह लाइट तो चाहे जितनी भी फैले, पूरे ब्रह्मांड में फैल जाए, तब भी वैसी की वैसी ही रहती है।

सापेक्ष दृष्टि से सर्वव्यापक

यानी 'आत्मा सर्वव्यापक है' ऐसे सभी सापेक्ष वाक्य हैं, उन्हें लोग निरपेक्ष मानकर उल्टा ही अर्थ निकालते हैं और चुपड़ने की दवाई पी जाते हैं। यह सापेक्ष है, इसका क्या मतलब है? कि सभी मनुष्य मरते हैं तब आत्मा सर्वव्यापक नहीं हो जाता। जब केवळी (केवळज्ञान प्राप्त व्यक्ति) या तीर्थंकरों का निर्वाण होता है, तब उनका जो आत्मा बाहर निकलता है वह पूरे ब्रह्मांड में प्रकाशमान हो जाता है, सर्वव्यापक हो जाता है। उस दृष्टि से, सापेक्ष दृष्टि से आत्मा सर्वव्यापक है। हमेशा के लिए सर्वव्यापक नहीं है। जब कि लोग तो उसे सर्वव्यापक, सर्वव्यापक, सर्वव्यापक करके गाते ही रहते हैं। बाकी, इस मनुष्य में जब तक अज्ञान है, तब तक उसका उजाला बाहर नहीं आता। वह तो जब 'फुल' ज्ञान हो जाए तब वह पूरे ब्रह्मांड में प्रकाशमान होता है। और आपमें भी आत्मा तो वैसा ही है, लेकिन वह बिल्कुल आवृत ही है।

जब आत्मा मोक्ष में जाता है, तब पूरा प्रकाश सभी ओर ब्रह्मांड में

फैल जाता है। सर्वव्यापक प्रकाश सभी ओर ब्रह्मांड में फैल जाता है। उस दृष्टि से सर्वव्यापक है। और ऐसे जो भगवान दिखते हैं वे तो दिव्यचक्षु से दिखते हैं, और वह भी सामने कोई क्रीचर हो तो दिखता है, वर्ना अगर क्रियेशन हो तो नहीं दिखता। यह तो 'गॉड इज़ इन एवरी क्रीचर वेदर विज़िबल ओर इन्विज़िबल, नॉट इन क्रियेशन।' इस मशीन के अंदर भगवान नहीं है। जब कि अपने लोगों ने 'भगवान हर एक जगह पर हैं' ऐसा घुसा दिया।

जगत् में सभी ओर आत्मा ही?

पूरा ब्रह्मांड क्रीचर से, जीवों से ही ठसाठस भरा हुआ है और उन जीवों के अंदर चेतन बिराजमान है। हाँ, यानी कि जीवों में जड़ और चेतन, दो भाग हैं। और चेतन, वह शुद्ध चेतन है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : यानी सभी ओर आत्मा के अलावा और कुछ है ही नहीं?

दादाश्री : नहीं। सिर्फ आत्मा नहीं, हर एक जीव में अनात्मा भी है और आत्मा भी है। और सर्वव्यापी का अर्थ तो अलग है, लेकिन ये लोग तो बिना समझे ही सबकुछ उल्टा ले बैठे हैं। लेकिन यदि ऐसा सर्वव्यापी होता न तो संडास करने कहाँ जाएँ? घर में संडास और रसोई दोनों अलग रखते हैं न? सभी में भगवान रहते हैं, तो हम कहाँ पर लकड़ी जलाने जाएँ और कहाँ पर लकड़ी नहीं जलाएँ? यानी ज़रा सद्विवेक को समझना तो पड़ेगा न? कृष्ण भगवान ने जड़ और चेतन, आत्मा और अनात्मा इस प्रकार से दो चीज़ें बताई हैं।

यह जड़ और चेतन, ये दोनों दो अलग-अलग चीज़ें हैं। जो जड़ है, उसका आप उपयोग कर सकते हो, लेकिन चेतन को आप मारोगे तो आपको पाप लगेगा। पेड़ है, उसमें चेतन है। उसे काटोगे, जलाओगे तो पाप लगेगा। और यहाँ पर अगर कोई भी लकड़ी पड़ी हो उसे आप जला डालो तो हर्ज नहीं है। क्योंकि उसमें चेतन नहीं है।

तादृश, दृष्टांत में, 'मौलिक स्पष्टीकरण'

कृष्ण भगवान ने बताया था न कि आत्मा और अनात्मा दो वस्तुएँ हैं। इस जड़ को ही यदि आत्मा मानें तो आत्मा की क्या दशा होगी? यदि सभी गेहूँ ही हैं तो बीनने को क्या रहा? गेहूँ और कंकड़ मिले हुए हों और कोई कहे कि ये सिर्फ गेहूँ ही हैं तो फिर बीनने को रहा ही क्या?

बज़ार में से आप गेहूँ लेने जाते हो, तब आप व्यापारी से क्या कहते हो? कंकड़ दो, ऐसा कहते हो या गेहूँ दो, ऐसा कहते हो? क्या कहते हो?

प्रश्नकर्ता : गेहूँ दो ऐसा ही कहना पड़ता है।

दादाश्री : कहाँ के गेहूँ ऐसा नहीं कहना पड़ता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ग्वालियर के गेहूँ।

दादाश्री : हाँ, फिर आप कहते हो कि मुझे ज़रा बताओ कि गेहूँ कैसे हैं। तो वह तुरन्त बोरी में सुई डालकर थोड़े गेहूँ निकालेगा, 'देखो पूरी बोरी ऐसे ही गेहूँ की है।' फिर व्यापारी उसे गेहूँ की बोरी कहता है। लोग भी उसे गेहूँ की बोरी ही कहते हैं। और घर पर ले जाए, तब पत्नी क्या कहती है? 'ये बीनने पड़ेंगे।' 'अरे, मैं तो ये गेहूँ ही लाया हूँ, इसमें बीनने का क्या है? मैं गेहूँ ही लाया हूँ न!' आप ऐसा कहोगे तब पत्नी कहेगी, 'आपमें अक़्ल नहीं है, गेहूँ और कंकड़ साथ में ही होते हैं। इसी को गेहूँ कहते हैं।' तब आप कहोगे, 'लेकिन बज़ार में इसे सब गेहूँ ही कहते थे न!' यानी व्यवहार में ऐसा ही कहा जाता है। व्यवहार में उसे गेहूँ ही कहा जाता है, लेकिन वे कंकड़ सहित होते हैं। इसलिए घर पर लाकर गेहूँ बीनने पड़ते हैं। व्यवहार ऐसा है। व्यवहार ऐसा कहता है कि यह गेहूँ की बोरी है। हम कहें कि, 'लेकिन भाई, अंदर कंकड़ हैं न!' तब कहेगा, 'नहीं, ऐसा नहीं कहते, यह बोरी गेहूँ की ही है।' व्यवहार इसे कहते हैं। हमें व्यवहार को समझना पड़ेगा न?

मैं आपके यहाँ आया और सुबह ब्रश करने का समय हो और मैं कहूँ कि, 'दातुन लाओ।' तो आप क्या-क्या चीज़ लाकर रख दोगे?

प्रश्नकर्ता : ब्रश, टूथपेस्ट सबकुछ रखना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, लोटा, स्टूल, सबकुछ लाओगे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : लेकिन मैंने तो आपको सिर्फ दातुन लाने को कहा तब भी आप इतनी सारी चीज़ें क्यों ले आए? हाँ, यानी कि व्यवहार ऐसा है। बोलते इतना ही हैं, लेकिन आपको सबकुछ समझ लेना चाहिए। यानी व्यवहार को समझना चाहिए। हम सिर्फ ब्रश लेकर कहें 'लीजिए यह ब्रश।' तो फिर कोई क्या कहेगा, कि 'टूथपेस्ट लाओ, पानी लाओ, फ़लाना लाओ।' उससे फिर गड़बड़ होगी सारी। उसके बजाय तो हम व्यवहार को समझ लें।

यानी व्यवहार में गेहूँ ज़रूर कहते हैं, लेकिन उनमें कंकड़ भी होते हैं। इसी तरह इस व्यवहार में 'सभी आत्मा हैं' ऐसा जो कहा है न, वह इसी तरह कहा है। गेहूँ हैं और कंकड़ उसके साथ में हैं। उसी तरह आत्मा है और अनात्मा भी साथ में है। सब ओर आत्मा है, वास्तव में यह ऐसा नहीं है। लेकिन यह सारी बात समझनी पड़ेगी तो ठिकाना पड़ेगा।

अत: इसका अर्थ लोग उल्टा समझे कि सब जगह आत्मा है, यानी खंभे में भी आत्मा है, दीवार में भी आत्मा है। यानी कि यह सारा उल्टा ही समझे। यानी कि गेहूँ और कंकड़ कुछ भी देखने का ही नहीं रहा। सभी 'गेहूँ ही हैं' ऐसा कहेंगे, तो उसके लिए हम मना नहीं करते। लेकिन इन व्यापरियों के लिए तो गेहूँ ही हैं। लेकिन खानेवाले के लिए तो गेहूँ और कंकड़ दोनों इकट्ठे ही हैं न? व्यापारियों के लिए क्या है?

प्रश्नकर्ता : गेहूँ ही हैं।

दादाश्री : हाँ, तो ये जितने व्यापारी हैं न, उनके लिए ऐसा है। लेकिन खानेवाले को तो समझना ही चाहिए न! वर्ना यदि सभी ओर भगवान हैं, तो फिर सच्चे भगवान कब मिलेंगे?

लोग ऐसा समझे कि सभी में आत्मा है, उसका अर्थ ही नहीं न

कोई। 'सभी गेहूँ हैं' वह तो व्यापारी ऐसा बोलते हैं। व्यापारी क्या ऐसा कहता है कि 'गेहूँ और कंकड़ दोनों हैं?' तब तो हम ऐसा कहेंगे कि, 'कंकड़ को कम कर डालो।' लेकिन व्यापारी ऐसा कहता है, 'सभी गेहूँ हैं।' लेकिन जिसे खाने हैं उसके लिए गेहूँ और कंकड़ दोनों हैं।

यानी या तो कंकड़ को पहचान या फिर गेहूँ को पहचान, दोनों में से एक को पहचानेगा तो चलेगा। ये गेहूँ और कंकड़ बीनने हों, तो उनमें अगर सिर्फ कंकड़ को ही पहचान लेगा तो चलेगा या नहीं चलेगा?

प्रश्नकर्ता : कंकड़ को पहचान लें तो बाकी जो बचे वे गेहूँ हैं।

दादाश्री : यानी कि 'एक को जान लोगे तो दोनों को जान लोगे' कहते हैं। इसलिए हम आपको 'शुद्धात्मा' की पहचान करवा देते हैं। तो बाकी का सब भी जान गए।

ये लोग क्या कहते हैं? 'अरे बहन, गेहूँ बीन लिए क्या?' और बीन रही होती है कंकड़। यानी अपनी इस भाषा को तो देखो। हम वहाँ पर जाएँ, और कहें कि 'आप तो कह रहे थे न कि गेहूँ बीन रही हूँ लेकिन आप तो कंकड़ बीन रहे हो।' तब वे कहेगी, 'नहीं, गेहूँ ही बीन रही हूँ न?' लेकिन देखो कंकड़ बीनती है न! क्यों ऐसा बोलते होंगे लोग?

प्रश्नकर्ता : सच्ची समझ नहीं है न!

दादाश्री : यह संसार भ्रांति स्वरूप है न, इसलिए सभी बातें भी उल्टी ही होती हैं।

आत्मा निर्गुण है या अनंत गुणधाम?

कृष्ण भगवान ने जो समझाया है, उस बात को ही यदि समझ जाएगा तो भी सच्चा भक्त बन जाएगा। कृष्ण भगवान ने तो पूरा साइन्स बता दिया है और उन्होंने कहा है कि चारों वेद त्रिगुणात्मक हैं। ये चार वेद तो लोगों के लिए हैं। लेकिन जिन्हें मोक्ष में जाना है, उन्हें इन चार वेदों से आगे आना है, गीता में आना है।

प्रश्नकर्ता : आपने त्रिगुणात्मक की बात की, लेकिन कहा जाता है कि आत्मा तो निर्गुण है न?

दादाश्री : यह जो मान्यता है न कि, आत्मा निर्गुण है, वह भूल से भरी हुई मान्यता है। इस दुनिया में पत्थर भी गुण रहित नहीं होता। वह पत्थर भी काम में आता है न?

यानी आत्मा तो परमात्मा है। उसके अंदर अनंत गुण हैं। इस निर्गुण के बारे में आपको समझाता हूँ। शास्त्रकारों ने निर्गुण कहा है, लेकिन लोग खुद की भाषा में समझ गए। खुद की भाषा में समझेंगे तो फल मिलेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : ये क्या कहना चाहते हैं? कि प्रकृति के गुणों से आत्मा निर्गुण है। प्रकृति का एक भी गुण आत्मा में नहीं है। और खुद के जो स्वाभाविक गुण हैं, उनसे वह भरपूर है। आपको यह समझ में आया? प्रकृति का एक भी गुण आत्मा में नहीं है, इसलिए उसे निर्गुण कहा है।

नहीं है निर्गुण जगत् में कोई

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहा है कि निराकार, निर्गुण ब्रह्म की आप जिस प्रकार से भजना करोगे, उसी प्रकार से आपके सामने साक्षात् हाज़िर हो जाएगा। अतः साकार स्वरूप से वैसा ही दर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

दादाश्री : ऐसा है न, इन लोगों को जो ब्रह्म दिया था न, वह भ्रमवाला ब्रह्म था। ब्रह्म निर्गुण है ही नहीं। यह तो भ्रमवाला है, यह तो लोग नासमझी से खुद की भाषा में कुछ भी कहते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन, 'ब्रह्म है क्या' वह बताइए न!

दादाश्री : वह मूल वस्तु है। वह अविनाशी है। उसके कितने ही, अनंत गुण हैं। अब इसे निर्गुण, निर्गुण करके सबके दिमाग़ में डाल दिया

है और इसीलिए हर कोई ऐसा कहता है। तब मुझे कहना पड़ता है, कठोर शब्दों में कहना पड़ता है कि 'अरे, पत्थर में भी गुण होते हैं।' पत्थर भी चटनी पीसने के काम में आता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, आता है।

दादाश्री : और भाई, सिर्फ आत्मा ही निर्गुण है? इसलिए कठोर शब्दों में ज़रा समझाना पड़ता है न कि ऐसा आप कब तक मानोगे? और ऐसा मानोगे तो आत्मा कब प्राप्त होगा?

यानी वस्तुस्थिति में पत्थर में भी गुण हैं। लेकिन आत्मा को इन लोगों ने निर्गुण कहा है, ऐसा सभी लोगों ने कहा है इसलिए पूरी बात ही उल्टी हो गई है। इसलिए फिर मुझे ऐसा कहना पड़ता है कि आत्मा निर्गुण है, यह बात सच है, लेकिन आप अपनी भाषा में ले गए। यानी कि प्रकृति के गुणों से निर्गुण है। प्रकृति का एक भी गुण आत्मा में नहीं है और खुद के गुणों से भरपूर है।

अभी वापस यहाँ तक आया है कि आत्मा को निर्गुण आत्मा कहते हैं। अरे, यह पत्थर भी निर्गुण नहीं है इस दुनिया में और आत्मा को निर्गुण कहते हो? लाखों जन्मों के बाद भी आप किस तरह से मूल वस्तु के ठिकाने की तरफ़ मुड़ोगे? पत्थर भी निर्गुण नहीं है। भैंस गोबर करती है न, वह भी निर्गुण नहीं है, वह भी काम में आता है न? लीपने के काम में नहीं आता? यानी कि हर एक वस्तु गुणवाली है। गुण काम करता है न? धूल भी काम की है या नहीं?

अब अनादि काल से इसी तरह की भूलें चली आ रही हैं और उससे लोगों को मार पड़ती है न! धर्म में भूल चलेगी ही नहीं। धर्म में भूल होनी ही नहीं चाहिए। और भूल होगी तो क्या होगा? और यह तो विज्ञान है। इसमें ज़रा-सी भी भूल हो जाए तो हो चुका, प्रमाण (अनेक धर्मों द्वारा वस्तु का अनेक रूपों से निश्चय किया जाए तो वह प्रमाण कहलाता है) ही बदल जाएगा। आपको निर्गुण समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी कि मूल आत्मा खुद सगुण ही है, अनंत गुणों का धाम है। स्वाभाविक गुण जो हैं वे बहुत सारे हैं, लेकिन प्रकृति के जो गुण हैं, उनमें से एक भी गुण आत्मा में नहीं है, इसलिए निर्गुण है। इन लोगों ने स्वीकार किया है कि ये गुण आत्मा में नहीं हैं, इसलिए आत्मा निर्गुण है। इसके बजाय लोग क्या समझ बैठे कि आत्मा निर्गुण ही है। अरे, जगत् में पत्थर भी निर्गुण नहीं है। कोई भी वस्तु बगैर गुण की नहीं है। अच्छे या ख़राब, लेकिन बगैर गुण की कोई भी वस्तु नहीं है। हर एक में गुण तो हैं ही, तो आत्मा निर्गुण कैसे हो सकता है?

अंत में तो प्राकृत गुणों को ही पोषण मिला

प्रश्नकर्ता : ये सत्व, रजस्, और तमस् ये तीन गुण हैं, उनमें और तत्व में क्या संबंध है?

दादाश्री : इन सत्व, रजस् और तमस् गुणों का क्या करना है? ये तो विनाशी गुण हैं, प्रकृति के गुण हैं। और तत्व अविनाशी वस्तु है।

ये जो सत्व, रज और तमो गुण हैं न, उन गुणों के अधिष्ठाता देव हैं। तो जिन्हें इन गुणों की ज़रूरत हो वे ब्रह्मा, विष्णु या महेश की आराधना करें। उसीके लिए हैं वे। और कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : यानी उनकी गिनती देवताओं में होगी?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उनमें जो गुण हैं न, उन गुणों के वे अधिष्ठाता देव हैं। तमोगुणवाले शिव हैं और रजोगुणवाले विष्णु कहलाते हैं और सात्विक गुणवाले ब्रह्मा कहलाते हैं। उन देवों का पूजन करो तो अच्छा है, वे गुण बढ़ेंगे। लेकिन अंत में तो आत्मा को जानना ही पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शास्त्रों में वर्णन आता है न ब्रह्मा, विष्णु और महेश का, तो वह सब क्या है?

दादाश्री : यह तो प्रकृति मज़बूत करने के लिए इन मूर्तियों को

रखा है। विष्णु रजोगुण है, महेश तमोगुण है और ब्रह्मा सत्वगुण है। इन तीन गुणों को मज़बूत करने के लिए लोगों ने मूर्तियों की स्थापना की है। यानी कि इनकी पूजा करने से ये गुण मज़बूत होंगे। लेकिन उन गुणों का भी धीरे-धीरे नाश हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश को पूजने का कोई अर्थ ही नहीं है न?

दादाश्री : अर्थ है न! मनुष्य को प्रकृति तो मज़बूत करनी ही चाहिए न! प्रकृति मज़बूत करेगा तो आगे बढ़ सकेगा।

रूपक, लौकिक और अलौकिक दृष्टि से

प्रश्नकर्ता : शिवालय में अष्टांगयोग के, यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा और समाधि, इन आठों अंगों के वहाँ पर प्रतीक रखे हैं। कछुआ प्रत्याहार का प्रतीक है, नंदीश्वर आसन कहलाते हैं, पार्वतीजी धारणा है, शंकर महादेव वे समाधि....

दादाश्री : ये सब रूपक हैं। इनमें जितना गहरे घुस चुके हैं न, तो घुसने के बाद हो सके उतना जल्दी अपने घर की तरफ़ निकल जाना है। ये सभी रूपक तो सामनेवाले के फ़ायदे के लिए दिए गए हैं। लेकिन फ़ायदा होगा तो होगा, नहीं तो ऐसे ही रूपक तो रूपक ही रहेंगे। लेकिन इन रूपकों को लोग सत्य मानने लगे हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। यह तो सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के रूपक दिए गए हैं।

प्रश्नकर्ता : क्रिएटर, प्रिर्ज़वर और डेस्ट्रोयर।

दादाश्री : हाँ, और तीर्थंकरों की भाषा में यह क्या है, वह आप जानते हो क्या?

उत्पाद, व्यय और ध्रौव, यह तीर्थंकरों की भाषा है। ये तीनों शब्द उन सब रूपकों में उलझ गए और रूपकों को तो उस समय के लोग समझे थे। लेकिन काल बदला कि सबकुछ उलझ गया। जो युग होता है

न, उस युग में समझ जाते हैं, लेकिन युग बदलता है तो सबकुछ उलझ जाता है।

इन लोगों ने तो सबकुछ उलझा दिया। अब ब्रह्मा को ढूँढने जाएँ तो कहाँ मिलेंगे? दुनिया में किसी जगह पर मिलेंगे? और विष्णु को ढूँढने जाएँ, तो विष्णु मिलेंगे? और महेश्वर?

हम पूछें, 'क्या काम धंधा है इनका? व्यापार क्या है?' तब कहते हैं, 'ब्रह्मा सर्जन करते हैं, विष्णु इन सबका चलाते हैं, पोषण करते हैं। और महेश्वर, वे मारते हैं, संहार करते हैं।' अरे, संहार करनेवाले के पैर छूते हो?

ऐसा है, इस जगत् की हक़ीक़त जाननी हो, तो इस जगत् के छह तत्व निरंतर समसरण करते ही रहते हैं और छहों तत्व इटर्नल है। इटर्नल अर्थात् कोई बनानेवाला होगा? बनानेवाले की ज़रूरत पड़ेगी क्या? इटर्नल वस्तु किसीके बनाए बगैर बनेगी ही नहीं, ऐसा कहें तो गलत बात है न? यानी इसे बनानेवाला कोई है ही नहीं।

फिर भी लोग पूछते हैं, 'कोई तो बनानेवाला चाहिए न?' अरे, तू इटर्नल शब्द समझ जा न! ये छह इटर्नल वस्तुएँ हैं, उनका स्वभाव क्या है? वे उनके गुणधर्म सहित हैं। क्योंकि इटर्नल वस्तु किसे कहते हैं कि जो गुणधर्मसहित हो। खुद के गुण भी होते हैं और धर्म भी होते हैं। धर्म अर्थात् अवस्थाएँ, पर्याय! तो ये छह वस्तुएँ खुद के, गुण, पर्याय सहित हैं। और वे पद्धतिपूर्वक परिवर्तित होती हैं, एक-दूसरे के आमने-सामने सभी। जिस प्रकार कि इन चंद्र, पृथ्वी और सूर्य के परिवर्तित होने से ग्रहण होता है, उसी तरह इन तत्वों के एक-दूसरे के साथ में परिवर्तन होने से सभी अवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अब जो गुण हैं, वे निरंतर साथ में रहते हैं। इसलिए उनमें कमी या बढ़ौतरी नहीं होती, जब कि पर्याय, अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। उसे क्या कहा है? कि पर्याय उत्पन्न होते हैं, फिर उनका विनाश हो जाता है, उत्पन्न-विनाश होते ही रहते हैं, लेकिन (तत्व) ध्रुवता नहीं छोड़ता। उत्पन्न-विनाश है, वह अवस्था से है और ध्रौवता स्वभाव से है ही।

यानी ये इटर्नल वस्तुएँ खुद के गुण और पर्याय सहित हैं, अब ये पर्याय कैसे हैं? तब कहे, 'उत्पन्न होना, विनाश होना। उत्पन्न होना, विनाश होना।' और वस्तु 'परमानेन्ट' रहती है। 'खुद' जीवित रहता है, हमेशा रहता है, और अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं और उनका विनाश होता है, इसलिए उत्पाद, ध्रौवऔर व्यय कहा है। इन तीनों को इन लोगों ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहा है। वह भी लोगों के फ़ायदे के लिए, जब कि लोग समझे अलग और चुपड़ने की जो दवाई थी उसे पी गए। चुपड़ने की पी जाएँगे तो क्या फ़ायदा होगा?

यानी आपको समझ में आया न, ब्रह्मा, विष्णु और महेशा, ये क्या हैं?

प्रश्नकर्ता : तीन तत्व हैं।

दादाश्री : नहीं, ये तीनों तत्व भी नहीं है, वस्तुस्थिति में!

यानी कि 'उत्पाद' को इन लोगों ने ब्रह्मा कहा है। 'व्यय' को संहारक कहा है, महेश कहा है और 'ध्रौवता' को विष्णु कहा है। उनके इन लोगों ने रूपक स्थापित किए। उसे खोज मानो न! अच्छा करने गए, लेकिन फिर बहुत समय के बाद में उल्टा हो ही जाता है न या नहीं हो जाता? इसलिए फिर लोगों ने ब्रह्मा की मूर्तियाँ स्थापित की।

और इन लोगों ने तो गीता की भी मूर्ति बना दी, गायत्री माता की भी मूर्ति बना दी। कुछ बाकी ही नहीं रखा न! अरे, लेकिन गायत्री माता की मूर्ति मत बनाना। वह तो मंत्र है, बहुत उत्तम मंत्र है। और इस मंत्र को मंत्र की तरह ही बोलना है, मूर्ति की तरह नहीं भजना है। गीता है, उसे पढ़ना है, समझना है, उसके बजाय गीता की मूर्ति बना दी और उसके पैर छुए! गीता की मूर्ति के पैर छूने गए, इसलिए कृष्ण भगवान को भूल गए। कृष्ण भगवान एक और रह गए और यह मूर्ति आ गई! इस तरह लोगों ने उल्टा कर दिया!

यानी कि इसके पीछे जो सारा रहस्य था, वह सारा रहस्य मारा गया!

लोगों को अच्छे रास्ते पर ले जाने के लिए कहा गया था, लेकिन जब उसे उल्टा हो जाए तो उसे खोदकर निकाल नहीं देना चाहिए? नये फाउन्डेशन नहीं डालने चाहिए?

वे ऐसे रूपक रखने गए तो यह प्रजा फँस गई, इसके बजाय साइन्टिफिक तरीक़े से उसे 'ज्यों का त्यों' रहने देते तो क्या बुरा था? गलत है इसमें? कि बीच में इन ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को लाए!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, वह कल्पना भी ऐसी बनाकर रख दी है, कि कितने ही वर्षों से यह कल्पना चली आ रही है।

दादाश्री : और मूल वस्तु मिलती नहीं। उसे फिर मैंने खोजकर अब इन लोगों के सामने रखना शुरू किया है।

यानी इन तत्वों की जो अवस्थाएँ हैं न, उनके ये रूपक रखे हैं। लोग इन्हें भूल न जाएँ इसीलिए। जब कि लोगों ने जाना कि यही लोग सब चलानेवाले हैं। विष्णु चलाते हैं, फ़लाने चलाते हैं, तो कितने सारे ऊपरी हो गए अपने?

प्रश्नकर्ता : तीन।

दादाश्री : नहीं, नहीं, तीन नहीं, कितने ही। फिर यमराज भी ऊपरी है! जगह-जगह पर ऊपरी!! फिर मनुष्य बेचारा घबरा ही जाएगा न? फिर मनुष्य घबराया हुआ नहीं दिखेगा?

इसीलिए मैंने कहा है न कि कोई बाप भी ऊपरी नहीं है। परेशानी छोड़ो चुपचाप। आपकी भूलें और आपके 'ब्लंडर्स' ही आपके ऊपरी हैं! यह आप नहीं समझे, उसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर क्या करेंगे?

यानी वस्तुओं का स्वभाव है-उत्पाद, व्यय और ध्रौव! वहाँ पर सिद्धक्षेत्र में सिद्ध भगवानों के लिए यह पूरा जगत् उत्पाद, व्यय और ध्रौव से दिखता रहता है। मूल गुणों से नहीं दिखता। उत्पाद, व्यय और ध्रौव से दिखता है।

अब ये अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए उत्पाद, व्यय और ध्रौव लिखा है। उसे फिर दूसरे शब्दों में लिखा है, उत्पन्नेवा, विघ्नेवा और ध्रुवेवा।

बाकी इस दुनिया में ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये सभी रूपक हैं। तो कुछ समय तक इन रूपकों से बहुत फ़ायदा हुआ। और वही रूपक अभी नुकसानदेह हो गए हैं। इसलिए हम ये रूपक निकाल देना चाहते हैं कि भाई, ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसा कोई है ही नहीं। तू है और भगवान हैं, दो ही हैं। और कोई है ही नहीं। और यमराज जैसा कोई है ही नहीं। ये सारी बेकार की बातें तेरे मन में से निकाल दे। यह मैं 'जैसा है वैसा' कहना चाहता हूँ क्योंकि अभी रूपकों की क्या ज़रूरत हैं? रूपकों की तो कब ज़रूरत थी? कि जब गाय रखी और दूध खाकर वापस ध्यान में बैठ जाते थे! लेकिन उनकी बुद्धि 'कल्चर्ड' नहीं थी। वह काल अच्छा था इसलिए इच्छित वस्तु अपने आप ही घर बैठे मिल जाती थी। तब फिर लोगों की बुद्धि 'कल्चर्ड' हो सकती थी क्या? और अभी तो चीनी नहीं मिलती, घी अच्छा नहीं मिलता, फ़लाना नहीं मिलता, देखो बुद्धि 'कल्चर्ड' हो गई है अभी तो! ऐसी 'कल्चर्ड' बुद्धि तो किसी भी काल में नहीं थी। लेकिन यह बुद्धि विपरीत है। इसे सम्यक् करनेवाले चाहिए। इसी विपरीत बुद्धि को ज्ञानी सम्यक् कर देते हैं। प्रकाश है, लेकिन उसका उपयोग उल्टे रास्ते पर करते हैं। उसका सही रास्ते पर उपयोग करे, ऐसा कर देनेवाला चाहिए। बाकी, अभी तो लोग विचारशील हो गए हैं। पहले तो ऐसे सब विचारशील थे ही नहीं। और सत्युग में विचार करने का समय ही नहीं था। सत्युग में तो हर एक वस्तु घर बैठे आ जाती है, तब किसका विचार करने को रहा? यानी कि कलियुग में ही असल में विचार करना पड़ता है।

यह सब बनावट है। इस जगत् में कोई ऐसा मनुष्य पैदा नहीं हुआ है कि जिसे संडास जाने की स्वतंत्र शक्ति हो। ये तो सभी रूपक रखे गए हैं। यानी कि ये जो कुछ भी लिखी गई हैं, वे सभी गलत बातें हैं। जो बुद्धि से समझ में नहीं आए, तो समझना कि वह गलत है। लोगों को बुद्धि में किसलिए समझ में आता है? तब कहते हैं, 'अपने लोग ढीठ (मैली बुद्धिवाले) हो गए हैं।' फॉरिन के साइन्टिस्टों को पूछो न, तो उनकी

बुद्धि चोखी होती है। और अपने लोगों की बुद्धि कैसी है? ढीठ। ये फॉरिनवाले कहते हैं, उसके अनुसार ऐसा हो ही नहीं सकता। मेरी बुद्धि शुरू से ही ढीठ नहीं थी, इसलिए मैं समझ गया कि यह गलत हंगामा खड़ा कर बैठे हैं। बाकी मैं तो, अगर सही हो तो उसे तुरन्त सही कह देता हूँ। और मैं जिस पद पर बैठा हूँ अभी, वहाँ पर मुझे क्या कहना चाहिए? कि जो 'है' उसे 'हाँ' कहना चाहिए और 'नहीं' है उसे 'ना' कहना चाहिए। अगर 'ना' नहीं कहेंगे तो लोग उल्टे रास्ते पर चलेंगे। नहीं पूछेंगे तो मुझे कोई हर्ज नहीं है। लेकिन पूछेंगे तो मुझे बोलना चाहिए कि यह 'करेक्ट' है या नहीं।

देखो न, यमराज को बीच में डाल दिया है न? इस नाम का कोई भी नहीं है, यमराज नाम का कोई जीव था ही नहीं। वे तो नियमराज थे। अब ऐसा सब घुसा दिया है।

जो–जो राजमहल हमने बनाए थे न, वे सभी अब पुराने हो गए हैं, इसलिए उल्टा फल दे रहे हैं, इसलिए इनका 'डिमोलिशन' (धाराशयी) करो। क्योंकि अच्छा फल कब तक देते हैं? नये–नये हों, तभी तक। फिर मध्यम प्रकार का, फिर उससे अर्ध मध्यम प्रकार का और फिर बुरा फल देते हैं। तो अभी ये बुरा फल दे रहे हैं। इसलिए इसे 'डिमोलिश' कर दो।

जब तक, जैसे कि जब नया मकान हो तब तक, थोड़े समय तक, 'हेल्पफुल' रहता है। लेकिन जब पुराना हो जाता है तब सिर पर गिरता है या नहीं? यहाँ से खंभे और यहाँ से छत गिर जाती है, यहाँ से फर्श उखड़ चुका होता है। ऐसी स्थिति अभी हो गई है। यानी कि 'हेल्पफुल' बनना तो न जाने कहाँ गया, कितने ही वर्षों से ये 'हेल्प' नहीं कर रहे हैं। लेकिन लोगों को उलझन में डाल दिया है। और इनमें है कुछ भी नहीं।

अब अगर हम पूछें कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर क्या हैं? वे कहेंगे, 'भाई, ये देव ही हैं न।' यह नहीं समझेंगे। यह तो, 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा

इसे कोई स्पष्ट नहीं कर सकता। जब बुद्धिजन्य ज्ञान से परे हो जाएँगे, तभी ये बातें स्पष्ट हो सकेंगी। वर्ना बुद्धिजन्य ज्ञान से इसकी स्पष्टता नहीं हो सकती, और जगत् तो बुद्धिजन्य ज्ञान में फँसा हुआ है।

यानी कि इन सारी बातों को नहीं समझने से भ्रम घुस गया है।

प्रश्नकर्ता : मेरा भ्रम निकल गया।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। और कुछ पूछना हो तो पूछना। यहाँ पर सबकुछ पूछा जा सकता है।

मोक्ष अर्थात् स्व-गुणधर्म में प्रवृत्त

प्रश्नकर्ता : जिसे मोक्ष कहते हैं, वह मोक्ष क्या चीज़ है, वह आप समझाइए।

दादाश्री : मोक्ष अर्थात् खुद अपने गुणधर्म में आ जाना, अपने स्वभाव में आ जाना। और स्व-स्वरूप में रहकर निरंतर सनातन सुख में रहना, वही मोक्ष कहलाता है!

करेक्टनेस समझना, 'ज्ञानी' से

प्रश्नकर्ता : कुछ मतावलंबी ऐसा भी कहते हैं कि वहाँ मोक्ष में आपको क्यों जाना है? वहाँ आपको स्वतंत्र सुख नहीं है। ऐसे ताने मारते हैं।

दादाश्री : वह तो, वे चरम स्थिति पर धूल उड़ा रहे हैं। वे लोग उनकी खुद की दुकान चलाने के लिए ऐसी सब धूल उड़ा रहे हैं। मैंने खोज की है कि 'करेक्टनेस' क्या है! मैं खोज करते-करते आया हूँ और सारी खोज करके लाया हूँ।

यानी ऐसे बोलनेवाले यदि कभी यहाँ पर आ जाएँगे न, तब वे ही कहेंगे, 'साहब, मुझे मोक्ष दीजिए', क्योंकि इनका मत बदलने में देर ही नहीं लगेगी न! मत तो सैद्धांतिक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यह तो आपका प्रताप है न!

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। लेकिन इसमें गलत होगा तो नहीं चलेगा। सच्चा होगा न, तो सभी को क़बूल करना ही पड़ेगा। जो सच्चा होगा, वह किसीसे भी रोका नहीं जा सकेगा। उनका गलत है इसलिए छोड़ देना पड़ेगा न!

फिर भी यह दुनिया है, अत: ये लोग जो कुछ भी कहते हैं, वह उनका डेवलपमेन्ट वैसा है। और इतने तक अगर डेवलपमेन्ट नहीं होगा न तो यह क्रियाकांड और यह सब नहीं होगा और बुद्धि बढ़ेगी नहीं। बुद्धि के बढ़ने के बाद जलन बढ़ती जाती है और जलन बढ़ने के बाद ही उसे मोक्ष की ज़रूरत पड़ती है।

मनुष्य की बुद्धि जितनी बढ़ती है, उसके 'काउन्टर वेट' में जलन उतनी ही बढ़ती जाती है। हाँ, वेदांत वगैरह सब बुद्धि बढ़ाने के साधन हैं। वे बुद्धि को 'डेवलप' करते रहते हैं, और जब बुद्धि बढ़ती है तब फिर जलन उत्पन्न होती है। तब कहता है, 'अब मैं कहाँ जाऊँ?' तब कहते हैं, 'वीतराग के पास जा।' लेकिन भगवान ने दोनों को एक्सेप्ट किया है। वेदांतमार्ग से और जैनमार्ग से, दोनों मार्गों से समकित होता है। दोनों मार्गों द्वारा, उनके खुद के स्वतंत्र मार्ग में रहकर समकित हो सकता है।

आत्मा को बंधन...

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा खुद स्वतंत्र और मुक्त है, सच्चिदानंद है?

दादाश्री : स्वतंत्र नहीं है। यह वापस आपको किसने कहा कि आत्मा स्वतंत्र है?

प्रश्नकर्ता : शास्त्र ऐसा कहते हैं कि आत्मा स्वतंत्र है।

दादाश्री : नहीं, सच्चिदानंद स्वरूप है, लेकिन स्वतंत्र नहीं है। इसलिए तो यह हाल हुआ है। स्वतंत्र होता तब तो अभी मुक्ति ही हो जाती न! देर ही क्या लगती? यह तो ऐसा बँधा हुआ है, कि अगर लोहे की मोटी ज़ंजीर होती न, उससे बँधा हुआ होता तो हम 'गेस कटिंग' करके

काट देते। लेकिन यह तो ऐसे बँधा हुआ है कि जो टूट ही नहीं सकतीं। वे ज़ंजीरे भी किस तरह की हैं? कवि ने क्या लिखा है? '*अधातु सांकळीए परमात्मा बंदीवान*।' अधातु ज़ंजीरों से यानी कि इस प्रकृति की ज़ंजीरों में बँधा हुआ है।

'स्वतंत्र' किसमें से पढ़कर लाए हो? ऐसी जो पुस्तकें पढ़ते हो, वे 'सर्टिफाइड' की हुई पुस्तकें पढ़ते हो या दूसरी 'अन्सर्टिफाइड' पुस्तकें पढ़ते हो?

प्रश्नकर्ता : लेकिन शास्त्र तो ऐसा ही कहते हैं कि आत्मा स्वतंत्र और मुक्त है।

दादाश्री : कोई नहीं कहता। स्वतंत्र होता तो मोक्ष का, मुक्ति का मार्ग ही कहाँ रहा फिर? उन शास्त्रों से कहें, 'आप किसलिए पुस्तकें बने? आपकी क्या ज़रूरत थी यहाँ पर? आत्मा स्वतंत्र नहीं है, इसलिए बंधन में से छुड़वाने के लिए आप सभी ने जन्म लिया है।' यदि स्वतंत्र होता तो फिर शास्त्र की ज़रूरत होती क्या?

जो ऐसा कहता है कि, 'आत्मा को बंधन नहीं है', उसके लिए 'मोक्ष भी नहीं है' ऐसा कहा जा सकता है और जो ऐसा कहते हैं कि 'आत्मा को बंधन है', उनके लिए 'मोक्ष भी है' ऐसा कहना पड़ेगा। यह विरोधाभास जैसी वस्तु नहीं है। आपको समझ में आया न? जो ऐसा मानते हैं कि आत्मा को बंधन नहीं है, तो फिर उसे मोक्ष की ज़रूरत भी नहीं है। क्योंकि आत्मा मोक्ष में ही है। लेकिन मोक्ष स्वरूप क्या है, उसे समझना चाहिए।

कुछ तो ऐसा कहते हैं कि, 'आत्मा को बंधन ही नहीं है।' यह बात तो सच है। लेकिन यदि आत्मा को बंधन नहीं है, तो फिर मंदिर में क्यों जाते हो? शास्त्र क्यों पढ़ते हो? चिंता किसे होती है? यह सारा फिर विरोधाभास हुआ न? 'आत्मा को बंधन नहीं है' यह बात तो सौ प्रतिशत सच है, लेकिन किस अपेक्षा से बोलना है? यह तो निरपेक्ष बात है। आत्मा को ज्ञानभाव से बंधन नहीं है, अज्ञानभाव से बंधन है। अगर आपको ज्ञानभाव हो गया कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो 'आपको' बंधन नहीं है।

और जब तक ऐसा भाव है कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ' तब तक ही बंधन है।

जो-जो आपको दु:खदायी लगता है, वह बंधन ही कहलाता है। वर्ना दुनिया के लोगों को तो बंधन का भी भान नहीं हुआ है कि 'मैं बंधन में हूँ।'

किसी जीव को बंधन पसंद ही नहीं है। आपको बंधन पसंद है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : फिर भी रहना किसमें पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : बंधन में।

दादाश्री : पूरे दिन बंधन में ही रहना पड़ता है। जीवमात्र, सभी बंधन में ही पड़े हुए हैं। हमारे जैसे 'ज्ञानीपुरुष' मुक्त होते हैं, लेकिन वे किसी ही काल में वर्ल्ड में एकाध होते हैं। वर्ना जगत् में 'ज्ञानी' होते ही नहीं हैं न! 'ज्ञानीपुरुष' मुक्त होते हैं, यानी कि वे खुद किसी भी चीज़ से बँधे हुए नहीं होते हैं। इसलिए उन्हें बोझ नहीं लगता, भय नहीं लगता, कुछ भी, कोई भी चीज़ उन्हें स्पर्श नहीं करती। और जीव को 'खुद' ऐसा ही बनने की ज़रूरत है। लेकिन वह तो जब, 'ज्ञानीपुरुष' हों, तब उनके पास जाकर ही ऐसा हो सकता है। 'ज्ञानीपुरुष' तो हज़ारों वर्षों तक अवतरित नहीं होते। 'ज्ञानीपुरुष' तो कभी ही अवतरित होते हैं, तब मुक्त हुआ जा सकता है।

मोक्षदाता मिलने से, मिले मोक्ष

प्रश्नकर्ता : मोक्ष, वह आशा की निष्पत्ति है, ऐसा कहा जा सकता है?

दादाश्री : नहीं, मोक्ष तो खुद का स्वभाव ही है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कितने ही लोगों ने बार-बार मोक्ष की प्राप्ति के रास्ते ही क्यों बताए हैं?

दादाश्री : वास्तव में तो ऐसा है न, वे उनकी भाषा का मोक्ष कहते हैं। बाकी मोक्ष की तो किसीको पड़ी ही नहीं है। सभीको यही चाहिए कि 'हमकु क्या, हम कौन?' ऐसा ही चाहिए। और यदि कोई सच्चा ज्ञानीपुरुष निकले न, तो उसे यह मोक्ष का मार्ग मिले बिना रहेगा ही नहीं। यह तो कुछ न कुछ दानत खोरी है और मान-तान में और 'हम' में पड़े हुए हैं, उसमें कुछ भी प्राप्ति नहीं की है।

'हम' अर्थात् अहंकार, जब यह अहंकार खत्म हो जाएगा न, तो भगवान बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष माँगने से मिल जाता है क्या?

दादाश्री : माँगने से सभीकुछ मिल जाता है, लेकिन मोक्षदाता हों, तब। मोक्षदाता होने चाहिए, वे खुद मोक्ष में रहते हों तब, बाकी बाहर तो किसीसे मोक्ष की बात करनी ही नहीं चाहिए। वहाँ पर तो धर्म की बात करना, वे आपको अच्छे धर्म की तरफ़ ले जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : मोक्षदाता कहाँ पर ढूँढें?

दादाश्री : यहाँ पर 'ये' ही अकेले हैं। जब आना हो तब आना। वर्ना आपके दोस्त को मोक्ष मिल जाए तब आना। उसे स्वाद आए तब उससे पूछकर आना।

मोक्ष प्राप्ति का भाव किसका?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष तो जीव का करना है न?

दादाश्री : जो बँधा हुआ है, उसका मोक्ष करना है।

प्रश्नकर्ता : जो बँधा हुआ है, वह कौन है?

दादाश्री : जो भोगता है वह, जो बंधन अवस्था भोगता है, वह बँधा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : 'पर्टीक्युलरली' उसका नाम क्या है?

दादाश्री : बंधन अवस्था कौन भोगता है?

प्रश्नकर्ता : जीव ही भोगता है न?

दादाश्री : आप नहीं भोगते हैं?

प्रश्नकर्ता : आप मतलब कौन?

दादाश्री : तब कौन भोगता है? जीव? और आप देखते रहते हो? मुँह से तो ऐसा कहते हो न कि 'मैं भोगता हूँ।'

प्रश्नकर्ता : मैं अर्थात् कौन, यह सवाल है।

दादाश्री : वही, अहंकार।

प्रश्नकर्ता : अहंकार, वह जीव का स्वरूप ही है न?

दादाश्री : जीव को तो एक तरफ़ रखो। जीव को क्या लेना-देना? जीव तो वस्तु नहीं है न! वह तो आत्मा का विशेषण है, कि भाई, ऐसा अहंकार है तब तक जीवात्मा है। अहंकार खत्म हुआ तो आत्मा मुक्त है। लेकिन अहंकार कम हो जाए और खुद के स्वरूप का भान हो जाए तो अंतरात्मा हो गया और अंतरात्मा होने के बाद में फिर परमात्मा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो मोक्ष प्राप्ति का भाव, वह किसका भाव कहलाता है?

दादाश्री : मोक्ष प्राप्ति का भाव, वह बँधे हुए का है। जो बँधा हुआ है, उसे मुक्त होने की इच्छा है। यानी कि यह अहंकार का भाव है। आत्मा को वैसा भाव नहीं है। आत्मा तो मुक्त ही है न!

प्रश्नकर्ता : आत्मा भोक्ता नहीं है, तो वह किससे छूटना चाहता है?

दादाश्री : छूटने का भाव उसका नहीं है। वह मुक्त ही है। यह जो बँधा हुआ है उसे छूटना है। जो बँधा हुआ है वह भोक्ता है और वही कर्ता भी है। जो कर्ता है, वही भोक्ता है, वही छूटना चाहता है!

ऐसा है, यह बंधन भी अहंकार ने ही खड़ा किया है और यह मुक्ति भी अहंकार ढूँढ रहा है। क्योंकि अहंकार को अब यह पुसाता नहीं है। यह तो 'उसने' ऐसा समझा कि इसमें कोई स्वाद आएगा, लेकिन कोई स्वाद नहीं आया, इसलिए फिर मुक्ति ढूँढ रहा है। बाकी आत्मा मुक्त ही है, स्वभाव से ही मुक्त है। 'आत्मा स्वभाव से ही मुक्त है' इतना ही यदि 'उसे' समझ में आ जाए तो बस, काम हो गया।

... और आवागमन भी अहंकार का ही

प्रश्नकर्ता : और आत्मा तो अजन्म ही है न?

दादाश्री : हाँ, 'आत्मा' स्वभाव से ही अजन्म है और 'खुद' भी अजन्म ही है। लेकिन जब 'खुद' 'आत्मारूप' हो जाएगा तो 'खुद' अजन्म हो जाएगा। बाकी 'खुद' तो 'चंदूलाल' हो गए, इसलिए यह 'टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट' मिला है। बॉडी का मालिक बना और माना कि 'मैं चंदूलाल हूँ' और यह बॉडी भी 'मैं ही हूँ', तो जब 'यह' मरती है उसके साथ 'हमें' भी मरना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा अजन्म-अमर है, तो आवागमन किसका है?

दादाश्री : आत्मा अजन्म-अमर है ही और शुद्ध ही है। सिर्फ उस पर इन पाँच तत्वों का असर हो गया है और उस असर से मुक्त हो जाए तो आत्मा मुक्त ही है। वह अजन्म-अमर ही है। जब खुद का स्वरूप जान जाएगा तो आवागमन के सब चक्कर बंद हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आवागमन का चक्कर किसे है?

दादाश्री : जो अहंकार है न, उसका आवागमन है। आत्मा तो जैसा था उसी दशा में है। फिर जब अहंकार बंद हो जाता है, तब उसके चक्कर (फेरे) बंद हो जाते हैं।

यानी कि ये जन्म-मरण आत्मा के नहीं हैं। आत्मा 'परमानेन्ट' वस्तु है। ये जन्म-मरण 'इगोइज़म' के हैं। 'इगोइज़म', वह खुद जन्म लेता है और वापस डॉक्टर साहब से कहेगा, 'साहब, मुझे बचाइए, बचाइए।' अरे,

तू 'परमानेन्ट' नहीं है? तब कहता है, 'नहीं, मैं तो टेम्परेरी हूँ।' यानी कि यह सब 'इगोइज़म' का ही हंगामा है। इस 'इगोइज़म' को सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' ही निकाल सकते हैं। 'इगोइज़म', वह अज्ञान का परिणाम है और उससे यह संसार खड़ा है। हममें 'इगोइज़म' बिल्कुल खत्म हो चुका है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार और आत्मा यह सब इकट्ठा कैसे हो गया, यह अभी भी समझ में नहीं आता।

दादाश्री : यह विशेष परिणाम ही है सिर्फ।

दु:ख, आत्मा स्वरूप को है ही नहीं

प्रश्नकर्ता : अब मनुष्य स्वर्ग में जाए या नर्क में जाए, परन्तु वहाँ पर भी आत्मा तो सुख या दु:ख से तो अलग ही रहेगा न?

दादाश्री : आत्मा तो अलग ही रहता है, लेकिन उससे हमें क्या फ़ायदा? जब तक अहंकार है तब तक सुख और दु:ख भोगता है और दु:ख उसे पसंद नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को तो कुछ नहीं होता न, मेरा ऐसा पूछना था।

दादाश्री : ऐसा है न, आपके पास सोने की गिन्नी हो, तो उसे आप भले कहीं भी रख दो, फिर भी उस पर ज़ंग नहीं लगेगा, लेकिन यदि वह गिन्नी खो जाए तो गिन्नी को दु:ख नहीं होता, लेकिन आपको दु:ख होता है या नहीं होता? उसी प्रकार आत्मा को कोई दु:ख है ही नहीं। यह जो अहंकार है न उसे दु:ख होता है। यह अहंकार चला जाए तो आत्मा हो गया और अहंकार है तब तक वह आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इस उदाहरण में गिन्नी और मैं, दोनों अलग-अलग हैं न, लेकिन क्या इसमें भी ऐसे अलग-अलग ही होते होंगे?

दादाश्री : ये भी अलग ही हैं। लेकिन वह आपको दिखता नहीं है। इस गिन्नी का जिस तरह से अलग है न, उसी तरह हमें भी 'आत्मा' अलग दिखता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आत्मा देह में रहे फिर भी मोक्ष में है, ऐसा कह सकते हैं क्या?

दादाश्री : हाँ, वह मुक्त ही होता है। लेकिन जब यह 'ज्ञान' देते हैं न, उससे 'उसे' खुद की मुक्तता का भान होता है। बाकी अंदर आत्मा खुद मुक्त ही है, उसे कुछ दुःख है ही नहीं। लेकिन यह दुःख तो किसे है? अहंकार को। वह चला गया यानी कि दुःख चला गया। अहंकार ने ही यह सब खड़ा किया है, भगवान से जुदा हो गया है, भेद डाला है। यह अहंकार गया तो फिर दुःख नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा का स्थान कहाँ पर होता है?

दादाश्री : आत्मा खुद ही मोक्षस्वरूप है। उसका स्थान कहीं और नहीं है। उसका खुद का स्वभाव ही मोक्ष है। विभाव दशा को लेकर यह सब उत्पन्न हो गया है।

जैसे इस सोने का स्वभाव होता है, तो इसे लाख वर्षों तक रखे रहो तो भी उसके स्वभाव में फ़र्क़ नहीं आता। जब कि सोना और तांबा दोनों इकट्ठे हों, मिक्सचर हो गया हो तो बदल जाता है।

प्रश्नकर्ता : 'मोक्ष प्राप्त किया', इसका अर्थ क्या है? आत्मा का कार्य यहाँ पर पूरा हो गया?

दादाश्री : आत्मा का कार्य तो पूरा ही है। जो बँधा हुआ था न, वह मुक्त हुआ। जिस पर दुःख पड़ रहा था वह, जो बँधा हुआ था उसका दुःख गया, वह खुद मुक्त हो गया।

जो जुदा हो गया था न आत्मा से, अहंकार, वही अहंकार खुद के स्वरूप में विलीन हो गया, तब काम हो गया। जुदा हो गया था इसलिए दुःख भोग रहा था। नासमझी से जुदाई कर रखी थी, भेद हो गया था। इन लोगों ने नाम दिया कि 'चंदू', तो उस नाम में 'खुद' तन्मयाकार हो गया। इसलिए 'उसका' काम तमाम हो गया। 'आत्मा' तो अविनाशी है। उसका काम तो हो ही चुका है। लेकिन वह

यहाँ से कब मुक्त होगा? जब यह भेदबुद्धि टूट जाएगी तो मुक्त हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मुक्त होने के बाद वह क्या करता है?

दादाश्री : फिर सिद्धगति हो गई। वहाँ पर निरंतर परमानंद में रहेगा। यह देह है तब तक बोझा रहा करता है। इस देह का भी बोझा है। जिस देह से सुख नहीं भोगना है, वह देह ज्ञानियों के लिए बोझ समान होती है। लेकिन और कोई चारा ही नहीं है न! जब तक उसकी 'डिस्चार्ज लिमिट' रहती है, तब तक छुटकारा ही नहीं हो सकता न!

द्वंद्वों ने दिए बंधन

प्रश्नकर्ता : आत्मा मोक्ष में चला जाता है, उसके बाद वह देहधारण नहीं करता है, लेकिन हर एक आत्मा मोक्ष में ही है न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। अनंत आत्मा इस तरह संजोगों में फँसे हुए हैं। वे मोक्ष में जाने के लिए, खुद के स्वभाव में आने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन यह जो अनात्मा है, वह उसे स्वभाव में आने ही नहीं देता। और अनात्मा भी पहले से ऐसे का ऐसा ही है। यानी ये सभी आत्मा कहीं मोक्ष में नहीं पहुँच गए हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी आत्मा ने अभी तक मोक्ष देखा ही नहीं है?

दादाश्री : देखा ही नहीं है। बाकी, खुद का स्वभाव ही मोक्ष है। लेकिन ये संयोग कैसे हैं? द्वंद्व रूपी हैं। यह जो जड़ विभाग है, अनात्म विभाग है, वह द्वंद्व रूपी में है। द्वंद्व अर्थात् फ़ायदा-नुकसान, सुख-दुःख, राग- द्वेष, यानी इन सभी द्वंद्वों के स्वभाव का खुद अपने आप में आरोपण कर देता है, इसलिए उसे बंधन रहता है। इन संयोगों का दबाव कम हो जाए तो फिर 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाते हैं, निमित्त मिल जाएँ, तब मोक्ष होता है। वर्ना यों ही तो मोक्ष नहीं हो जाता। फिर भी सभी आत्मा मोक्ष की तरफ़ ही जा रहे हैं। लेकिन फिर जैसे निमित्त मिलें, वैसे ही वह चक्कर लगाता है फिर। यहाँ पर मनुष्यों में ही चक्कर लगाने हैं फिर से, या फिर जहाँ पर भी चक्कर

लगाए, वह ठीक है। उसे कोई ऐसा टेढ़ा निमित्त मिल जाए, तो नर्कगति में भी ले जा सकता है या पशुयोनि में भी ले जा सकता है।

लेकिन मोक्ष साधे तो काम का

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्त करने के लिए इस देह की साधन के रूप में ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : मनुष्य देह ही मोक्ष प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन है। मोक्ष तो देवगति में भी नहीं हो सकता, जानवरगति में भी नहीं हो सकता, अन्य किसी योनि में नहीं हो सकता। सिर्फ मनुष्य जन्म ही ऐसा है कि उसमें पाँचों गतियाँ खुली हुई हैं।

क्या सर्वात्मा का मोक्ष संभव है?

प्रश्नकर्ता : सभी आत्मा पूर्ण कक्षा में कब पहुँचेंगे?

दादाश्री : सभी आत्मा मोक्ष में चले जाएँगे तो फिर यहाँ पर संसार रहेगा ही नहीं। तो संसार का नाश करने की इच्छा है आपकी? आपकी इच्छा क्या है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा में तो ज्ञान है, तो धीरे-धीरे वह कक्षा तो आएगी न कि वे मोक्ष में जा सकें?

दादाश्री : हाँ, कक्षा आती है। उस कक्षा में आते ही हैं, और मोक्ष में जा ही रहे हैं, लेकिन आप यह बताओ कि पूरे जगत् के सभी आत्मा अगर मोक्ष में चले जाएँ तो इस संसार के नाश की आपने भावना की है कि यह संसार नहीं रहे और यह संसार तो आत्मा के डेवलपमेन्ट की चीज़ है। मूल आत्मा तो 'डेलवप्ड' ही है, 'आत्मा' खुद पूर्ण ही है, लेकिन अभी 'सबकी' ऐसी श्रेणी उत्पन्न हो गई है, कि ये पौद्‌गलिक मान्यता में रूढ़ हो गए हैं। वे मान्यताएँ हटते-हटते-हटते-हटते मूल चैतन्य स्वरूप की भावना उत्पन्न होगी, तब पूर्णाहुति होगी।

प्रश्नकर्ता : यानी कि कोई आत्मा मोक्ष में पहुँच ही नहीं सकता?

दादाश्री : अरे, मोक्ष में तो बहुत सारे पहुँच सकते हैं न? मैं अभी भी मोक्ष में ही हूँ न!

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं हो सकता कि सभी आत्मा मोक्ष में चले जाएँ? 'पोसिबल' है क्या?

दादाश्री : माँ और बेटा दोनों एक-सी उम्र के हो पाएँगे क्या कभी? जिस दिन बेटा और माँ एक-सी उम्र के हो जाएँगे, उस दिन पूरा जगत् मोक्ष में चला जाएगा।

ऐसा है 'पूरा जगत् मोक्ष में जाए' ऐसी भावना करने के अधिकारी हैं। लेकिन वह रूपक में कभी भी आएगा नहीं। वह रूपक में कब आएगा कि जब माँ और बेटा एक ही उम्र के होंगे तब।

एक व्यक्ति ने मुझे कहा, 'पूरे जगत् को मोक्ष में ले जाइए न!' मैंने कहा, ''आपको समझाता हूँ। इस पूरे जगत् के जीव 'वॉरीयर्स' (योद्धा) बन जाएँ तो किस पर 'अटैक' करेंगे? पूरे जगत् के सभी जीव डॉक्टर ही बन जाएँ तो किसका इलाज करेंगे? पूरे जगत् के सभी जीव नाई बन जाएँ तो किसके बाल काटेंगे? और सभी सुथार बन जाएँ तो किसका काम करेंगे?'' तब उसने कहा, 'समझ गया, समझ गया, अब फिर से ऐसा नहीं बोलूँगा।'

कुदरत का प्रबंधन है, इसलिए हम ऐसा नहीं कहते कि बहुत सारे लोग इकट्ठे हो जाओ। यह तो उसका प्रबंधन ही है कि 'व्यवस्थित' रूप से सब आते हैं। नहीं तो हम चिट्ठियाँ नहीं लिखवाते? लेकिन नहीं, ये सब हिसाब अपनी जगह पर सेट ही हैं। इसलिए हमें यह *उपाधि* नहीं करनी है। यह तो हम यहाँ पर आते हैं और जाते हैं।

आपको समझ में आया यह? यह संसार खुद ही प्रवाह के रूप में है और अनादि से यह प्रवाह बह ही रहा है। इसमें सभी जीवों का मोक्ष तो होगा ही, जल्दी या देर से, वह उसका क्रम ही है। क्रम अर्थात् एक समय में एक सौ आठ जीव मोक्ष में जाते ही रहते हैं, प्रवाह के रूप में!

प्रश्नकर्ता : एक समय में एक सौ आठ जीव मोक्ष में जाते हैं, वह कहाँ से है?

दादाश्री : सभी पंद्रह क्षेत्रों में से मिलाकर एक सौ आठ जीव मोक्ष में जाते हैं।

जैसे अपने यहाँ पुलिसवाले की पार्टी जाती है न, वह चार की जोड़ी एक के पीछे एक ऐसे चलती ही रहती है, जैसे प्रवाह जा रहा हो उस तरह से चलता ही रहता है, उसी तरह यह एक सौ आठ जीवों का प्रवाह इस तरफ़ से व्यवहार में से मोक्ष में जाता है, सिद्धक्षेत्र में जाता है। तब उतने ही दूसरे जीव अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में आ जाते हैं, यानी कि व्यवहार में एक भी जीव कम-ज़्यादा नहीं होता, एक भी जीव बढ़ता नहीं है, घटता नहीं है। व्यवहारवाले जीव किसे कहते हैं? जिनका नाम पड़ चुका है, वे सभी व्यवहार जीव हैं, जिसका नाम नहीं दिया गया, वह जीव व्यवहार में नहीं आया है। और जिसका नाम गया, वह सिद्धक्षेत्र में चला गया।

नमो सिद्धाणं, की भजना ध्येय स्वरूप से

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न कि ऊपर कोई बाप भी नहीं है, लेकिन ऊपर सिद्धलोक तो है न?

दादाश्री : वह तो सिद्धलोक है, सिद्धक्षेत्र है, और वे लोग जो मोक्ष में चले गए हैं न, वे तो मुक्त हो चुके हैं, वे अपनी सुनते भी नहीं और किसीका कुछ कहते भी नहीं, किसीके लिए *लागणी* भी नहीं और कुछ भी नहीं। वे तो उनके खुद के सुख में मस्त! वे हमारे किसी भी काम में नहीं आते। वे अपने ध्येय के रूप में हैं। 'नमो सिद्धाणं' कहा, वह सिर्फ ध्येय की तरह है कि 'भाई, हमें यह दशा चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : हम लोग कहते हैं न कि 'नमो सिद्धाणं', तो वह नमस्कार उन्हें पहुँचते हैं क्या?

दादाश्री : उन्हें नहीं पहुँचे फिर भी अपने अंदर सिद्ध बैठे हैं, उन्हें तो पहुँच गया। अंदर जो बैठे हैं न, वह आत्मा सिद्ध ही है न! हमें तो

काम से काम है न! हमें नमस्कार पहुँचाने चाहिए वहाँ पर। और अपनी ज़िम्मेदारी पहुँचाने की है, कि साहब को चिट्ठी लिख दी।

सिद्ध की नहीं है प्रवृत्ति, फिर भी क्रिया

प्रश्नकर्ता : जो सिद्ध हो चुके हैं, ईश्वर उन्हें यहाँ पर काम करने के लिए भेजते हैं?

दादाश्री : कोई नहीं भेजता। भेजनेवाला कोई है ही नहीं। यहाँ पर भेजनेवाली किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं है। किसीकी भी ज़रूरत नहीं पड़े, ऐसा यह जगत् है। आपका ऊपरी कोई है ही नहीं। इस दुनिया में किसी जीव का कोई ऊपरी है ही नहीं। खुद की भूल और 'ब्लंडर्स' ही ऊपरी हैं।

प्रश्नकर्ता : तो सिद्धक्षेत्र में उन सिद्ध भगवंतो की प्रवृत्ति क्या है?

दादाश्री : जिसकी प्रवृत्ति होती है, उसे 'मिकेनिकल' कहते हैं। वे मिकेनिकल नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन मोक्ष में जाने के बाद वहाँ पर प्रवृत्ति है या निवृत्ति?

दादाश्री : वहाँ निवृत्ति भी नहीं होती, प्रवृत्ति भी नहीं होती, फिर भी 'ज्ञानक्रिया' और 'दर्शनक्रिया' है। निवृत्ति भी है और ये क्रियाएँ भी हैं। प्रवृत्ति में नहीं कहलाते, फिर भी क्रिया है।

सिद्धक्षेत्र की कैसी अद्‌भुतता

प्रश्नकर्ता : तो सिद्धक्षेत्र में जो सभी आत्माएँ हैं, वे सभी खुद अपने आप में ही हैं?

दादाश्री : हाँ, उन्हें किसी और के साथ कोई लेना-देना ही नहीं है। ऐसा है न, इस जगत् में किसीका किसीसे भी लेना-देना है ही नहीं। और जो कुछ है वह निमित्त मात्र है। यह मैं भी निमित्त ही हूँ।

प्रश्नकर्ता : सिद्धक्षेत्र में जब हम जाएँगो, तो वहाँ पर सिर्फ बैठे रहना है? और देखते ही रहना है?

दादाश्री : वह आपकी भाषावाला 'बैठे रहना' नहीं है। वहाँ खड़े भी नहीं रहना है और बैठे भी नहीं रहना है, वहाँ पर लेटना भी नहीं है। वहाँ पर नई ही तरह का है।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ देखते ही रहना है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह कल्पना की वस्तु नहीं है। आप कल्पना से देखना चाहते हो, ऐसी वस्तु नहीं है वह।

प्रश्नकर्ता : सिद्धशिला कैसी होती है?

दादाश्री : सिद्धशिला तो, जहाँ पर खुद कर्म को चिपकना हो, फिर भी चिपक नहीं सके, ऐसी जगह है और यहाँ तो अपनी इच्छा नहीं हो फिर भी कर्म चिपक जाते हैं। ये कर्म के परमाणु निरंतर सभी जगह पर होते हैं। यहाँ तो परमाणु तैयार ही रहते हैं और वहाँ उन पर कुछ असर ही नहीं होता। भगवान! हमेशा के लिए वही पद!

प्रश्नकर्ता : वहाँ सिद्धक्षेत्र में परमाणु नहीं हैं?

दादाश्री : वहाँ पर कुछ भी नहीं है। वे सिद्ध भगवंत यहाँ के सभी ज्ञेयों को खुद देख सकते हैं। लेकिन वहाँ उनकी जगह में ज्ञेय नहीं होते। वह सिद्धक्षेत्र तो, सभी सिद्धों के रहने का स्थल है एक प्रकार का, उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : सिद्धक्षेत्र ब्रह्मांड में है या ब्रह्मांड के बाहर है?

दादाश्री : ब्रह्मांड की सीमा रेखा पर है, अंतिम सीमा पर है। आप अपनी भाषा में समझ जाओ, हर कोई अपनी-अपनी भाषा में ले जाता है फिर। लेकिन सिद्धक्षेत्र ब्रह्मांड के बाहर भी नहीं है, लेकिन अंतिम सीमारेखा पर होता है।

ग़ज़ब का सिद्धपद, वही अंतिम लक्ष्य

प्रश्नकर्ता : सिद्धक्षेत्र में जो सिद्धात्मा सिद्ध हो चुके हैं, उन्हें फिर

'इन्डीविज्युअली आइडेन्टिफाय' (हर एक की अलग पहचान) किया जा सकता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा 'इन्डीविज्युअल' नहीं होता। उन्हें तो खुद का अस्तित्व, वस्तुत्व और पूर्णत्व का भान रहता है कि 'मैं हूँ', इतना ही। वहाँ पर 'वे हैं' ऐसा कुछ भी नहीं है। 'मैं हूँ' उतना ही भान हर एक को रहता है, स्वतंत्र भान में, और किसी अन्य की कोई बात ही नहीं, झंझट ही नहीं। वहाँ पर व्यक्तिभेद नहीं है, वहाँ पर परस्पर संबंध नहीं हैं। यह तो यहीं पर सारे परस्पर संबंध हैं, 'रिलेटिव' है। और वहाँ पर तो 'रियल' है, 'एब्सोल्यूट' है, उसमें कोई परस्पर है ही नहीं। वहाँ पर तो खुद के अस्तित्व का भान रहता है, वस्तुत्व का भान रहता है और पूर्णत्व का भान रहता है।

प्रश्नकर्ता : सभी को सुख ही है न वहाँ पर?

दादाश्री : सभी को एक ही समान सुख है। वस्तुत्व के भान में तो अत्यंत परमानंद रहता है।

प्रश्नकर्ता : जैसे सिनेमा थियेटर में हाउसफुल हो जाता है, वैसे ही सिद्धक्षेत्र में भी हाउसफुल हो जाता है क्या?

दादाश्री : यह अपनी कल्पना है। वहाँ पर तो इतनी अधिक विशालता है कि वहाँ पर अनंत सिद्ध होने के बावजूद, अभी भी वहाँ पर अनंत सिद्ध जाते रहेंगे। सबकुछ अनंत है वहाँ पर तो।

प्रश्नकर्ता : इस दुनिया में जड़ तत्व होगा, तभी आत्मा रह सकता है न, नहीं तो अकेला आत्मा नहीं रह सकता न?

दादाश्री : यह ठीक कहा। आत्मा अकेला इस जगत् में रह ही नहीं सकता। वह तो केवल सिद्धगति में ही सारे अकेले आत्मा हैं।

प्रश्नकर्ता : सिद्धगति के अलावा की जो परिस्थिति है, वहाँ पर सिर्फ आत्मा ही नहीं रह सकते?

दादाश्री : हाँ, यह सही बात है।

प्रश्नकर्ता : यह तो फिर ऐसा भी हो सकता है न कि मोक्ष में जाने के बाद फिर से यह सबकुछ मिल जाएगा?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं होता। इसका कारण यह है कि यहाँ पर जो ऐसा हो गया है न, वह तो यहाँ के सब संयोग हैं। इस लोक में ऐसे संयोग हैं, इसलिए ऐसा हो ही जाता है। लेकिन वहाँ पर ऐसे कोई संयोग नहीं हैं। इसलिए ऐसा होगा ही नहीं। फिर से ऐसा कुछ मिलेगा ही नहीं।

दो वस्तुएँ जब साथ में होती हैं, तब अपने-अपने गुणधर्म का त्याग किए बिना, विशेष गुणधर्म वहाँ पर उत्पन्न होते हैं। वे विशेष गुणधर्म, वही यह संसार है। अब अगर सिद्धक्षेत्र में भी *पुद्गल* होता न, तो वहाँ पर भी यह विशेष भाव उत्पन्न हो जाता। लेकिन वहाँ पर *पुद्गल* नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सिद्धक्षेत्र में आत्मा की अवगाहना पड़ती है (जितनी जगह आत्मा फैला हुआ है), उससे बाहर भी *पुद्गल* परमाणु हैं न?

दादाश्री : लेकिन वह सिद्धक्षेत्र से बाहर है, यानी कि सिर्फ नीचे के भाग में ही है। और वह सिद्धों पर असर नहीं करता ऐसी स्थिति में है। वह सिद्धक्षेत्र लोकालोक के बीच में है।

प्रश्नकर्ता : सिद्धक्षेत्र में जो परिस्थिति है, उसका असर दूसरे लोकों में पड़ता है क्या?

दादाश्री : बिल्कुल भी नहीं। असर का क्या लेना-देना? कोई लेना-देना ही नहीं है। और उन्हें, सिद्धों पर कोई असर ही नहीं होता न, किसी भी प्रकार का।

प्रश्नकर्ता : उन्हें असर नहीं होता, लेकिन उनका असर बाहर आता है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, उनके असर का यहाँ पर कुछ नहीं होता, फिर भी ऐसा है न, कि वह अपना लक्ष्यस्थान है कि हमें वहाँ पर जाना है।

खंड : २

'मैं कौन हूँ?' जानें किस तरह?

अब, फेरे टलें किस तरह?

प्रश्नकर्ता : अब ज़रा यह पूछना था कि जन्म-मरण के फेरे टालने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अब पाँचवे *आरे* में बोले? चौथे *आरे* में फेरे टल सकते थे ऐसा था, तब वहाँ पर किया नहीं और उस घड़ी चटनी खाने को पड़े रहे। सिर्फ चटनी ही, सिर्फ चटनी का ही शौक़, इसीलिए पड़े रहे। जब वहाँ पर आराम से जन्म-मरण के फेरे टल सकते थे, तब वहाँ पर कुछ किया नहीं, अब अभी यहाँ पर आए हो तो उपाय नहीं रहा, यह चटनी तो मिली, लेकिन उपाय नहीं रहा। अब चटनी छूटेगी, ऐसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : शायद छूट भी जाए।

दादाश्री : हाँ, जन्म-मरण के फेरे टालने के लिए 'खुद कौन है' इसका ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। समकित प्राप्त होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जब तक इस जीवन का हेतु जानेंगे नहीं, तब तक सभी बातें अर्थहीन हैं। वह हेतु ही जानना है। वहाँ पर ही मूल प्रश्न की बात आती है।

दादाश्री : हाँ। यह मूल प्रश्न की बात सही है। ऐसा है न, मानो कि एक सेठ हैं, बहुत ही सुखी इन्सान हैं, मिल के मालिक हैं। जब बातें करें न, तो मिल के दो हज़ार लोग हों न, लेकिन वे सब लोग भी खुश हो जाएँ ऐसी बातें होती हैं उनकी, ऐसी समझदारी होती है। विनय बहुत

सुंदर होता है। लेकिन शाम को ज़रा थक गए हों, और बोतल पीएँ, फिर कैसे हो जाते हैं? तब फिर ब्रान्डी का नशा चढ़ता रहता है, इसलिए खुद की अवस्था भूलते जाते हैं। खुद की जागृति डिम होती जाती है, फिर अंधापन खड़ा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : शराब के नशे में सब भान भूल जाता है, उसी तरह अध्यात्म में लोग किस तरह भान भूल जाते हैं?

दादाश्री : अध्यात्म में, यह मोह का नशा चढ़ा हुआ है, वह उतरता नहीं है। उस नशे में लोग बोल रहे हैं। आप जो ये सभी बात-चीत कर रहे हो न, वह मोह की शराब पीकर बोल रहे हो। इन सभी 'महात्माओं' का नशा उतार दिया है, लेकिन आपका तो नहीं उतारा है और नशे में ही बोल रहे हो। यानी कि जब वह नशा उतर जाएगा, तब 'इस जीवन का हेतु क्या है' वह सब समझ में आ जाएगा, तुरन्त पता चल जाएगा। जैसे सेठ का नशा उतर जाने के बाद सेठ जैसे थे वैसे ही हो जाते हैं न! वापस कैसी सुंदर बाते करते हैं फिर से। यानी कि इसमें ब्रान्डी का नशा चढ़ा हुआ है, और जगत् को मोह का नशा चढ़ा हुआ है, ब्रान्डीवाले पर तो दो-तीन घड़े ठंडा पानी डाल दें न, तो नशा उतर जाता है। और इसमें तो, मोह का नशा तो उतरता ही नहीं है न और फिर हिमालय में जाओ या कहीं भी जाओ, लेकिन जहाँ देखो वहाँ पर (मोहरूपी) शराब पीए हुए लोग ही होते हैं। घर-पत्नी-बच्चे सबकुछ छोड़ देता है, लेकिन 'हम' नहीं छूटता। वह 'हम, हम, हम' में ही रहता है। जब 'हम' चला जाए, तब परमात्मा बन जाता है। 'आप' खुद ही 'परमात्मा' हो, लेकिन उसका 'आपको' भान नहीं है, जागृति नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : हम मूल बात पर आ जाएँ कि, दुनिया में मनुष्यों को किसलिए जीना चाहिए?

दादाश्री : मोक्ष के लिए जीना चाहिए। लेकिन फिर भी समझ नहीं हो तो फिर ये सभी लोग स्त्री के लिए जीते हैं, पैसों के लिए जीते हैं, और किसी चीज़ के लिए जीते हैं, लेकिन यह नासमझी से है सारा। हेतु

जानते नहीं और कुछ भी हेतु बना देते हैं। और अगर हेतु जानते कि यह मनुष्यजन्म, हिन्दुस्तान का मनुष्यजन्म मोक्ष के लिए ही है... लेकिन यह मोक्षमार्ग नहीं जानने के कारण कुछ भी हेतु बना देते हैं, हेतु बदल जाता है।

पूरे जगत् के लोग जो-जो करते हैं, वह पूरा संसार ही है, भले ही कुछ भी कर रहे हों, फिर भी संसार ही है, एक बार भी संसार से बाहर नहीं जाते। इसे पर-रमणता कहते हैं। यानी कि हेतु ही देखा जाता है। हेतु की ही क़ीमत है कि किस हेतु से कर रहे हैं! आत्महेतु के लिए कोई भी क्रिया की जाए फिर भी उसमें हेतु ही जमा होता है, फिर क्रिया नहीं देखी जाती।

आपका सिर्फ मोक्ष का ही हेतु है और आपका वह हेतु मज़बूत होगा, तो आप ज़रूर उस मार्ग को प्राप्त करोगे। बाकी औरों के तो तरह-तरह के हेतु हैं अंदर। मुँह पर बोलते हैं कि मोक्ष का हेतु है लेकिन अंदर में हेतु तो सभी संसार के हैं।

इतने सारे *आरे* चले गए, यह पाँचवा *आरा* आया फिर भी आपको क्यों उकताहट नहीं होती भला? योग्य जीव तो उकता जाता है। ज़रा ऐसा मोही जीव हो तो उसे बहुत मज़ा आता है, टेस्ट आ जाता है। जिसे उकताहट हो, वह तो मोक्ष का मार्ग जल्दी ढूँढ निकालता है और जिसे उकताहट नहीं होती वह तो बाज़ार में घूमता ही रहता है, अपने आप। अभी तो कितने ही जन्मों तक भटकेगा, उसका कोई ठिकाना ही नहीं है न! यह तो संसार है।

टेम्परेरी को देखनेवाला ही परमानेन्ट

'यह जगत् किस तरह से चल रहा है? कौन चला रहा है? किसलिए चल रहा है? हम कौन हैं?' जब तक यह सारा ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक मनुष्य के ये सभी 'पज़ल सोल्व' नहीं होते। देखो न, ये कितने तरह के पज़ल खड़े हो जाते हैं?

प्रश्नकर्ता : मानें तो पज़ल है, नहीं तो नहीं।

दादाश्री : 'मानें तो' यह शब्द ऐसा है न, यह रुढ़ीगत शब्द है, यह कुछ 'एक्ज़ेक्ट' नहीं है। क्योंकि हम मान लें कि यह पज़ल नहीं है, इसके बावजूद भी यदि अनुभव में आए तो पज़ल हो जाता है। माना हुआ बहुत दिनों तक रहता नहीं है न! हम अगर मानें की मेरे पास बैंक में दो लाख रुपये हैं, और उस वजह से चेक लिख दें तो वह वापस आएगा। माना हुआ 'करेक्ट' चीज़ नहीं है। माना हुआ थोड़े समय तक रहता है। उसका कोई अर्थ नहीं है, और किसी-किसी चीज़ में ही वह माना हुआ रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : एक आत्मा के अलावा बाकी सबकुछ थोड़े ही समय तक रहता है न?

दादाश्री : हाँ, यानी कि यह सब माना हुआ ही है न! ये सब 'रोंग बिलीफ़' ही हैं, और सभी 'टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट' हैं। 'ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट' और सिर्फ 'आत्मा' ही 'परमानेन्ट' है।

जो पूरा ही टेम्परेरी है, लोगों ने उसे ही 'परमानेन्ट' मानकर उनके साथ व्यापार चलाया। ये सभी वस्तुएँ टेम्परेरी हैं, आपको थोड़ा बहुत ऐसा अनुभव हुआ है?

प्रश्नकर्ता : पूरी दुनिया टेम्परेरी ही है न!

दादाश्री : हाँ, वही मैं कहना चाहता हूँ। 'ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट।' और 'आप' खुद 'परमानेन्ट' हो। अब 'आप' खुद 'परमानेन्ट' और ये 'एडजस्टमेन्ट' सभी टेम्परेरी, तो मेल किस तरह से खाएगा? आप भी परमानेन्ट नहीं हो?

प्रश्नकर्ता : वह मैं कैसे कह सकता हूँ?

दादाश्री : आपका पुनर्जन्म रहा होगा या नहीं होगा? आपका पिछला जन्म रहा होगा या नहीं? वह भी यक़ीन नहीं है न? लेकिन पुनर्जन्म को माना, यानी कि खुद 'परमानेन्ट' हो गया।

कोई भी टेम्परेरी वस्तु दूसरी टेम्परेरी वस्तु को समझ नहीं सकती, 'परमानेन्ट' वस्तु ही टेम्परेरी को टेम्परेरी समझ सकती हैं। 'आप' समझ

सकते हो न कि यह काँच टूट जाएगा? यह चश्मा टूट जाएगा? इसलिए आप 'परमानेन्ट' हो। और यह चश्मा, यह टेम्परेरी वस्तु है। 'परमानेन्ट' वस्तु ही टेम्परेरी को टेम्परेरी समझ सकती है। वर्ना एक टेम्परेरी वस्तु दूसरी टेम्परेरी वस्तु को नहीं समझ सकती। टेम्परेरी, टेम्परेरी को किस तरह से समझ सकेगा? यानी कि यदि वह 'परमानेन्ट' होगा तभी टेम्परेरी को टेम्परेरी समझ सकेगा। दुनिया में अगर 'परमानेन्ट' वस्तु ही नहीं होती न तो फिर टेम्परेरी को टेम्परेरी कहने का अर्थ ही कहाँ रहा? उसे टेम्परेरी क्यों कहना पड़ता है? कोई 'परमानेन्ट' वस्तु है, इसलिए हम टेम्परेरी कहते हैं। वर्ना अगर सभी टेम्परेरी होता तो? यानी आपकी बुद्धि में यह बात पहुँच रही है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, 'परमानेन्ट' वस्तु है, इसलिए टेम्परेरी वस्तु भी है।

दादाश्री : हाँ, 'परमानेन्ट' वस्तु यहाँ पर है, उसके आधार पर ये दूसरी वस्तुएँ टेम्परेरी कहलाती हैं, उसे समझ में आता है कि 'यह टेम्परेरी है, वह टेम्परेरी है, काँच का प्याला टेम्परेरी है।' ऐसा समझ में आता है न? यह तांबे का लोटा है, वह आपके हाथ में से गिर जाए तो आपको बहुत भय नहीं लगेगा, लेकिन काँच का प्याला गिर जाए तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : प्याला टूट जाने का डर रहेगा।

दादाश्री : हाँ, वह काँच का पूरा प्याला फूट जाएगा न और तांबे का प्याला तो बहुत हुआ तो थोड़ा पिचक जाएगा, तो उसे ठीक कर देंगे, तब था वैसे का वैसा बन जाएगा, लेकिन वह सब टेम्परेरी है। कोई पच्चीस वर्ष चलता है, कोई पंद्रह वर्ष चलता है। यह देह है, वह पौने सौ साल तक चलता है। यह सब टेम्परेरी है। आप खुद 'परमानेन्ट' हो। लेकिन अपने आप को 'आप' टेम्परेरी मान बैठे हो। 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं देह हूँ, मैं इनका बेटा हूँ', ये सभी भूलें निकालना चाहता हूँ। आपको भूल निकालनी है न?

ये लोग सभीको टेम्परेरी कहते हैं न, दूसरों को टेम्परेरी कहनेवाला

वह 'खुद' 'परमानेन्ट' है! नहीं तो टेम्परेरी शब्द ही नहीं होता। यानी कि यह इटसेल्फ ही 'प्रूव' कर देता हैं कि जो दूसरे को टेम्परेरी कहता है, तो वह 'खुद' 'परमानेन्ट' है। लेकिन उसे 'खुद का' भान नहीं है। फिर भी लोग टेम्परेरी बोलते हैं न! इसलिए हमें पता लगाना चाहिए कि, भले ही उसे इसका भान नहीं है, फिर भी टेम्परेरी कहता है, इसलिए वह 'खुद' 'परमानेन्ट' है। लेकिन यह बात अलग है कि उससे खुद से भूल होती है।

खुद के गुण कौन से? उसमें भी भूल

यह ज्ञान खो नहीं गया है, लेकिन ऐसे 'प्लस-माइनस' करे तो यह पूरा ज्ञान वापस से मिल आएगा, लेकिन 'ज्ञानीपुरुष' रास्ता दिखाएँ तब। वर्ना खुद की कल्पना में आएगा नहीं, खुद की मति उस तरफ़ जाएगी नहीं। यह तो, किस तरह से कमाऊँ, किस तरह से ऐसा करूँ, इन विषयों में और पैसों में, इसीमें सारी मति रुक गई है। यानी कि 'खुद' है 'परमानेन्ट', लेकिन उसका उसे 'खुद' को भान नहीं है। खुद जो है उसका तो भान होना चाहिए या नहीं होना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : वह तो खुद को ख़बर होती है न कि उसके खुद के गुण कैसे हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसी किसीको भी ख़बर नहीं होती। ऐसा एक भी मनुष्य नहीं है कि जिसे खुद के गुणों की ख़बर हो। जिन्हें वह खुद के गुण कहता है, वे किसी अन्य के गुण हैं। आपके जितने भी गुण अभी आपको दिखते हैं, वे सभी आपके गुण नहीं हैं, वे आरोपित गुण हैं, फिर भी आप कहते हो कि ये मेरे गुण हैं।

प्रश्नकर्ता : मेरे थोड़े अच्छे गुण भी हैं और थोड़े ख़राब गुण भी हैं।

दादाश्री : नहीं। ये दोनों ही आरोपित गुण हैं। और अच्छे गुण, ख़राब गुण, ये दोनों गलत बात है। दोनों कल्चर्ड गुण है और कल्चर्ड बात है। ये अच्छे-ख़राब, ये आपके गुण नहीं है। आपके गुण तो और ही प्रकार के हैं। वह एक भी गुण आपने देखा नहीं है, जाना नहीं है। लोगों ने भी

खुद के गुण जाने नहीं हैं। खुद के गुण जानने के लिए ये सभी लोग 'यहाँ' पर आते हैं। क्योंकि उन्हें एन्डलेस (अंतहीन) सुख चाहिए। यह टेम्परेरी सुख नहीं चाहिए।

अभी जो गुण हैं न, ये 'चंदूभाई' के गुण हैं, ये 'आपके' गुण नहीं हैं। 'चंदूभाई' और 'आप' दोनों अलग हो। इस शरीर में 'आप' भी अलग हो और 'चंदूभाई' भी अलग हैं। हमें दोनों अलग दिखते हैं, चंदूभाई भी दिखते हैं और आप भी दिखते हो। यानी कि "वास्तव में 'रियली स्पीकिंग' आप कौन हो" इसका डिसीज़न लेना चाहिए। इस शरीर में आपका क्षेत्र अलग है। आप अपने क्षेत्र में रहो तो आप क्षेत्रज्ञ हो। और अगर क्षेत्र में नहीं रहो तो क्षेत्राकार हो जाते हो। क्षेत्रज्ञ रहकर यह सब जानना है कि इस क्षेत्र में क्या हो रहा है। क्षेत्रज्ञ का अर्थ क्या है? क्षेत्र को जाननेवाला। यानी कि आपको निरंतर जानते ही रहना है कि 'क्या हो रहा है, कौन बोल रहा है' यह सब आपको अपने क्षेत्र में रहकर जानना ही है सिर्फ।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा निर्णय होना, वही आत्मा का अनुभव है। और ऐसा आत्मअनुभव होना, वह क्या कोई ऐसी-वैसी बात है?

वह गुप्तस्वरूप, अद्‌भुत! अद्‌भुत

इस दुनिया में जानने जैसा क्या है? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : स्व-स्वरूप।

दादाश्री : बस! उसके अलावा दुनिया में जानने जैसी अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। सिर्फ स्व-स्वरूप को ही जानने जैसा है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह अद्‌भुत दर्शन क्या होगा?

दादाश्री : अद्‌भुत, वह तो गुप्तस्वरूप है। जो जगत् से पूर्ण रूप से गुप्त है, गुप्त स्वरूप है। पूरा जगत् ही जिसे नहीं जानता, वह गुप्त स्वरूप, वह अद्‌भुत ही है। उससे अधिक अद्‌भुत वस्तु इस दुनिया में अन्य कोई

है ही नहीं। और अद्भुत तो इस दुनिया में कोई वस्तु है ही नहीं न। सभी चीज़ें मिल सकती हैं, लेकिन जो गुप्त स्वरूप है न, सिर्फ वही अद्भुत है, इस दुनिया में! अत: शास्त्रकारों ने इसे अद्भुत, अद्भुत, अद्भुत कहकर लाखों बार अद्भुत कहा है।

मान्यता की ही मूल भूल...

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें भ्रांति तो है ही न!

दादाश्री : किसकी भ्रांति है?

प्रश्नकर्ता : स्व-स्वरूप की भ्रांति ही है न?

दादाश्री : लेकिन भ्रांतिवाला स्वरूप कौन-सा है और 'आपका' भ्रांतिरहित स्वरूप कौन-सा है? कितना भाग भ्रांतिरहित है और कितना भाग भ्रांतिवाला है, ऐसी ख़बर ही नहीं है। कुछ ऐसे भाग ही नहीं किए हैं। 'डिवीज़न' ही नहीं डाले न?

प्रश्नकर्ता : आप भ्रांति की क्या परिभाषा देते हैं? किसे भ्रांतिरहित मान सकते हैं?

दादाश्री : खुद अविनाशी, खुद की मालिकी की चीज़ें भी अविनाशी, और फिर भी विनाशी चीज़ों को खुद का मानना, वही भ्रांति।

प्रश्नकर्ता : यानी यह एक प्रकार का अज्ञान हुआ न?

दादाश्री : भारी अज्ञान! 'फॉरिन डिपार्टमेन्ट' को होम डिपार्टमेन्ट मानना, इतनी अधिक अज्ञानता है। एक 'फॉरिन डिपार्टमेन्ट' है, यदि उसे ही 'होम डिपार्टमेन्ट' माने तो 'होम' को क्या समझेगा? यानी 'होम' को वह जानता ही नहीं है। और यदि 'फॉरिन डिपार्टमेन्ट' को 'होम डिपार्टमेन्ट' माने तो भी क्या लाभ होगा?

प्रश्नकर्ता : कोई लाभ नहीं होगा।

दादाश्री : तो क्या नुकसान होगा?

प्रश्नकर्ता : अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जाने तो सारा नुकसान ही है।

दादाश्री : नुकसान ही है न! खुद का स्वरूप, वह 'होम डिपार्टमेन्ट' है और 'फॉरिन डिपार्टमेन्ट' में 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं प्रोफेसर हूँ, मैं इस स्त्री का पति हूँ, इनका चाचा हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं पतला हूँ।' ऐसा सब गाता रहता है, वही भ्रांति कहलाती है। बोलने में हर्ज़ नहीं है, लेकिन यह तो जो बोलते हैं न, उसी पर आपको श्रद्धा है। आप तो व्यवहार और निश्चय, फॉरिन और 'होम'-दोनों को इकट्ठा करके बोलते हो कि 'मैं चंदूभाई ही हूँ।' ओहोहो! बड़े आए चंदूभाई!! बिल्कुल ऐसा टेढ़ा ही पकड़ लिया है! यह सब पुसाएगा क्या? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं पुसाएगा।

दादाश्री : तो इसका कुछ अंत आए ऐसा ज्ञान चाहिए। इस संसार समुद्र में किसी जगह पर किनारा नहीं दिखता। घड़ीभर में कहेगा, 'उत्तर में चलो।' उत्तर में जाने के बाद सामने एक आदमी मिला, तो वह कहने लगेगा, 'इस तरफ़ चलो।' अरे, इस तरफ़ से तो आया हूँ। तब कहेगा, 'नहीं, लेकिन वापस उस तरफ़ चलो।' यानी कि ऐसे भटकता, और भटकता ही रहता है। लेकिन कोई अंत या किनारा नहीं दिखता।

...यह भ्रांति कौन मिटाए?

थोड़े समय में जो खत्म हो जाए, वह भ्रांति कहलाती है। और इस सारी भ्रांति को तो हम रोज़-रोज़ मज़बूत करते हैं। 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई हूँ' करते हैं, अत: रोज़ नई-नई भ्रांति डालते जाते हैं और पुरानी भ्रांति मिटती जाती है। यदि नई भ्रांति नहीं डालें, तो पुरानी भ्रांति खत्म हो जाएगी। सबकुछ वियोगी स्वभाववाला है। भ्रांति भी वियोगी स्वभाववाली है।

आपका जो 'आत्मा' है न, वह 'आप' खुद ही हो, लेकिन अभी 'आपको' भ्रांति हो गई है। इसलिए जहाँ पर 'आप' नहीं हो, वहाँ पर 'आप' आरोप करते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ।'

विनाशी और अविनाशी का भेद क्या है?

मनुष्य जब मरता है, तब विनाशी चीज़ें अलग हो जाती हैं और अविनाशी चीज़ें अलग हो जाती है। इसमें जो अविनाशी वस्तु है, वह 'रियल' यानी कि सनातन वस्तु है। और 'रिलेटिव' सारा विनाशी है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, कि 'रिलेटिव' सारा विनाशी है, नाशवंत है। अब वैज्ञानिक और भारतीय दर्शन भी ऐसा कहता है, कि इस दुनिया में कोई भी तत्व विनाशी नहीं है। तो आप इस नाशवंत के लिए क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस दुनिया में कोई भी तत्व विनाशी नहीं है। और वह तत्व, तत्व की दृष्टि से है। उस तत्व को आपने देखा ही नहीं। ये आपके अनुभव में सब अविनाशी चीज़ें आती हैं या विनाशी चीज़ें आती हैं?

प्रश्नकर्ता : अविनाशी भी नहीं आता और विनाशी भी नहीं आता।

दादाश्री : लेकिन ये कप-प्लेट टूट जाएँ तो इन कप-प्लेट को आप विनाशी कहते हो या अविनाशी?

प्रश्नकर्ता : मैं इन्हें कुछ भी नहीं कहता। वह एक जैसी ही चीज़ है।

दादाश्री : एक जैसी ही? लेकिन यह इन दूसरे सभी लोगों को एक सरीखा नहीं लगता। इन सभी लोगों के लिए तो, कप-प्लेट टूट जाएँ तो वे लोग कप-प्लेट को विनाशी ही कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन विनाशी के बारे में आपका अभिप्राय क्या है?

दादाश्री : विनाशी अर्थात् जब ये कप-प्लेट जब टूट जाते हैं, तब हमें अंदर दु:ख होता है, ये कपड़े जल जाएँ तो हमें अंदर दु:ख होता है। अत: ये सभी विनाशी चीज़ें हैं। यह शरीर अविनाशी है या विनाशी है?

प्रश्नकर्ता : शरीर भी विनाशी नहीं है।

दादाश्री : विनाशी नहीं है? लेकिन आपके जैसा ज्ञान इन सबको नहीं है। इन सबको अलग तरह का ज्ञान है। ये लोग तो ऐसा कहते हैं कि शरीर विनाशी है और आप तो 'शरीर विनाशी नहीं है', ऐसा कहते हो। आपके घर पर कप-प्लेट टूट जाएँ तो आपको कुछ होता नहीं है?

प्रश्नकर्ता : विनाशी के अर्थ के लिए मैं वैज्ञानिक दृष्टि से बात पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : नहीं। यहाँ पर वैज्ञानिक दृष्टि की ज़रूरत ही नहीं है। हमें व्यवहार की दृष्टि की ज़रूरत है। यहाँ व्यवहार में व्यवहार की दृष्टि चाहिए।

वैज्ञानिक दृष्टि से तो क्या है, वह भी आपको बता दूँ! वैज्ञानिक दृष्टि तो क्या कहती है कि, 'इस दुनिया में एक भी परमाणु कम नहीं होता। भले ही कितना भी नाश होता रहे, तब भी एक भी परमाणु कम नहीं होता, इसी तरह एक भी परमाणु बढ़ता नहीं है।' लेकिन लोगों के घर में कप-प्लेट टूट जाते हैं तो कलह होती है या नहीं होती? कपड़े जल गए तो कलह होती है न? यह घर जल गया, तब भी दुःख होता है या नहीं होता? इसलिए इन्हें विनाशी कहा है। इसमें कहीं आत्मा नहीं जलता है।

प्रश्नकर्ता : विनाशी अर्थात् 'वेदर इट इज़ ओन्ली चेन्ज ऑफ स्टेट'?

दादाश्री : विनाशी अर्थात् अवस्थाओं का विनाश होता है। वस्तु विनाशी नहीं है, तत्व विनाशी नहीं है। लेकिन ये अवस्थाएँ जो उत्पन्न होती हैं, उन अवस्थाओं का नाश होता है। जगत् के लोग भी अवस्थाओं में ही उलझे हुए हैं, इसलिए इन्हें विनाशी ही कहना पड़ेगा।

ये लोग यदि डॉक्टर के पास जाएँ, और कहें कि डॉक्टर साहब, 'मुझे बुख़ार आया है', अब वहाँ पर डॉक्टर कहेगा, 'अविनाशी है' तो, हो चुका! उस बेचारे को तो घबराहट हो जाती है। इसलिए हम कहते हैं, 'बुख़ार विनाशी है, चला जाएगा!' आपको समझ में आया मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, अब समझ में आया!

दादाश्री : अवस्था मात्र विनाशी है। पूरा जगत् इन अवस्थाओं में ही एकाकार रहता है। इन अवस्थाओं में रहने से अस्वस्थ हो जाता है। अवस्था में 'खुद' का मुकाम करने से अस्वस्थ हो जाता है। और खुद के स्वरूप में, 'परमानेन्ट' में रहने से स्वस्थ हो जाता है।

यानी वस्तु की अवस्थाएँ विनाशी हैं और मूल वस्तु अविनाशी है। वह तो 'ज्ञानीपुरुष' ही मूल तत्व की बात जानते हैं। लेकिन लोग तो अवस्थाओं में ही पड़े हुए हैं।

विनाशी धर्म में, अविनाशी की भ्रांति

अब जब तक मनुष्य को भ्रांति है, तब तक विनाशी और अविनाशी एक रूप से बरतते हैं। एक रूप से बरतते हैं तब क्या करते हैं? 'यह जानता हूँ मैं और यह करता हूँ मैं' ऐसा बोलता है। यानी कि दोनों के धर्मों को एक साथ बोलता है, विनाशी के धर्मों और अविनाशी के धर्मों को, दोनों एक साथ बोलता है और एक साथ बोले, उसका नाम ही भ्रांति। फिर 'मैं ही चंदूभाई हूँ' ऐसा बोलता है। 'खुद' अविनाशी होने के बावजूद भी 'खुद' 'मैं ही चंदूभाई हूँ', ऐसा अभानता के कारण बोलता है। उसका कारण क्या है? कि अविनाशी और विनाशी दोनों एकत्र हो गए हैं, एकाकार हो गए हैं। इसलिए एकाकार से यह भ्रांति उत्पन्न हुई है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह भ्रांति अविनाशी की ही बनाई हुई है न?

दादाश्री : बनाई किसीने भी नहीं है, अविनाशी नहीं बनाता है इसे। यह भ्रांति तो वैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न हो गई है। बाकी भ्रांति कोई बनाता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : व्यक्ति में विनाशी और अविनाशी दोनों साथ में होते हैं, तो वे जो वर्तन करते हैं, वह तो अविनाशी का ही होता है न? क्योंकि अविनाशी का ही साम्राज्य चलता है न?

दादाश्री : साम्राज्य अविनाशी का है ही नहीं बिल्कुल भी! वर्तन भी अविनाशी का नहीं है। यह तो साम्राज्य ही पूरा विनाशी का है। इसलिए हम विनाशी और अविनाशी, ऐसे दो भाग अलग कर देते हैं। जब पाप भस्मीभूत करते हैं, तब ये दोनों भाग जुदा पड़ जाते हैं, तो फिर दोनों अलग हो जाते हैं। फिर आत्मा ज्ञाता-दृष्टा रहता है। यानी कि अविनाशी अपने मूल स्वभाव में आ जाता है और विनाशी जो है, वह इस क्रिया में रहता है। इस विनाशी का स्वभाव, जानने का नहीं है। *लागणी* का या ऐसा कोई स्वभाव इस विनाशी में नहीं है। फिर जो विनाशी है, वह इन क्रियाओं में रहता है और अविनाशी ज्ञाता-दृष्टा रहता है, दोनों अपने-अपने स्वभाव में रहते हैं। और इस भ्रांति में तो क्या करता है? 'जानता हूँ मैं और करता हूँ मैं', इसलिए फिर ये क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह सारी कमज़ोरियाँ उत्पन्न हो गई हैं।

परमात्मा पहुँचाएँ प्रकाश और परमानंद

प्रश्नकर्ता : तो अविनाशी का कार्य क्या है, विनाशी के साथ रहकर?

दादाश्री : वह सिर्फ प्रकाश देता है, और कुछ नहीं करता। उसके खुद के पास असीम प्रकाश है, वही (अविनाशी) प्रकाश देता है। और दूसरा, वह आनंद देता है, लेकिन आनंद अपने पास पहुँचता नहीं है, उसका तिरोभाव हो जाता है। और उस आनंद का हम क्या उपयोग करते हैं? वह आनंद 'खुद' में से ही आ रहा है, ऐसा मानते नहीं हैं, अतः हम कहते हैं कि इस जलेबी में से आनंद आया। ऐसे तिरोभाव करते हैं, इसलिए हमें ऐसा लगता है कि आनंद जलेबी में से आ रहा है, लेकिन जलेबी में से आनंद नहीं आता, खुद में से ही आनंद का आरोपण होता है।

यानी कि किसी वस्तु में आनंद होता ही नहीं है, सोने में या किसी में भी आनंद नहीं होता। यदि सोने में आनंद होता तो सोने का बिस्तर बनाते तो नींद अच्छी आती न?

प्रश्नकर्ता : नहीं आती है।

दादाश्री : यानी कि सोने में आनंद नहीं है। तो यह आनंद कल्पना से खड़ा करते हैं कि इसमें आनंद है और इसमें मज़ा है, उससे फिर ऐसा भासित होता है। जिससे मूल सच्चा आनंद मारा जाता है। मुझे वह 'डायरेक्ट' सच्चा आनंद आता है। हम निरंतर सच्चे आनंद में रहते हैं, और वह स्वाभाविक आनंद आता है, नेचरल, जो खुद का है और यह सारा आनंद तो कल्पित है और यह सुख भी कल्पित है और दुःख भी कल्पित है।

स्वभाव की भजना से, स्वाभाविक सुख

यानी कि हम 'आत्मा' को जुदा कर देते हैं, वह इसलिए ताकि 'आप' फिर स्वाभाविक सुख में आ जाओ। फिर आपको चिंता, *उपाधि* नहीं होगी, क्योंकि चिंता होती किसलिए है? कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ' और 'मैं ही करता हूँ' ऐसा कहते हो, इसलिए चिंता होती है, मनुष्य कुछ कर सकता है क्या? यह करता है या 'इट हेपन्स' है?

प्रश्नकर्ता : 'इट हेपन्स' यानी कि अपने आप कुछ नहीं होता, ऐसा?

दादाश्री : हाँ, बस। वह इसे खुद अपने आप करने जाता है और उससे भ्रांति उत्पन्न होती है और कर्ता बने, तो चिंता उत्पन्न होती है। आपको समझ में आया न? खुद है तो अकर्ता, लेकिन कर्तापद धारण किया है और कर्तापद धारण हुआ, उससे भोक्तापद उत्पन्न हुआ, करने गया इसलिए भोक्ता बना। और इसीलिए पूरे दिन चिंता, *उपाधि* और कलह! फिर कोई कुछ अपमान करे, तब भी दुःख होता है।

यानी कि 'खुद' 'खुद के स्वभाव' में आए, इसके लिए 'यह' ज्ञान देना है। उसके बाद, आत्मा, आत्मा में रहता है और अनात्मा, अनात्मा में रहता है। प्रत्येक जीव के अंदर चेतन है, वह प्रकाश ही देता है, और कुछ नहीं करता।

यह जो विनाशी है, यह सारा 'रिलेटिव' है और 'ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्टस और यू आर रियल एन्ड परमानेन्ट।' यानी कि एक टेम्परेरी और एक 'परमानेन्ट' ये दोनों मिल गए हैं। उसका

हम विभाजन कर देते हैं, 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल देते हैं कि 'दिस इज़ देट एन्ड दिस इज़ नॉट देट।'

प्रश्नकर्ता : इस विनाशी से अविनाशी जुदा हो जाता है, फिर उसका क्या होता है?

दादाश्री : फिर उसे ये दुःख नहीं रहते न! ये सांसारिक दुःख जो हैं कि 'ऐसा हो गया, वैसा हो गया', वे उसे नहीं रहते। फिर मृत्यु आए तो भी डर नहीं लगता, जेब कट जाए तो भी दुःख नहीं, पत्नी गालियाँ दे तो भी दुःख नहीं, कोई दुःख ही उत्पन्न नहीं होता न! यानी कि विनाशी से अविनाशी अलग हो जाए तो दोनों अपने-अपने स्वभाव में रहेंगे, और क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार से जिनमें अलग हो चुका है, उसे मृत्यु के बाद में क्या होता है?

दादाश्री : मृत्यु के बाद उसका एक जन्म बाकी रहता है। क्योंकि हम ये जो पाँच आज्ञा देते हैं, उन्हें पाले तो उसका एक जन्म बाकी रहता है।

ऐसा स्वरूप जगत् का रहा

प्रश्नकर्ता : इस सृष्टि के क्रम की कुछ बातें समझ में नहीं आतीं कि जो लोग आपके पास आए और उन्हें आपके पास से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, लेकिन दूसरे लोगों को क्यों नहीं होता होगा?

दादाश्री : यह सभी लोगों के लिए नहीं है।

ऐसा है, यह जो पूरी सृष्टि है न, वह प्रवाह के रूप में है। यानी कि जितना समुद्र से मिल जाता है, वहाँ पर उतने पानी की मुक्ति हो गई और दूसरा सारा जैसे-जैसे आएगा वैसे-वैसे उसकी मुक्ति होती जाएगी। यानी कि यह पूरा ही जगत् प्रवाह के रूप में है और इसीलिए सभी को एकदम से यह ज्ञान नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : कुछ कण समुद्र तक पहुँचते हैं, कुछ बीच में ही रह जाते हैं, इसका क्या कारण है?

दादाश्री : वह सब 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' पर आधारित है। यानी कि जब तक भ्रांति है तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती।

कर्तापद, वही भ्रांति

प्रश्नकर्ता : इन सभी को भ्रांति हो गई है, उस भ्रांति को टालने का उपाय क्या है? बताइए।

दादाश्री : भ्रांति किसकी हो गई है? वह आपको समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : खुद ने खुद को जाना नहीं है।

दादाश्री : बस, इतनी ही भ्रांति हुई है। खुद अपने आप से ही अनजान हो गया है इतनी ही भ्रांति हुई है 'इसे', और कोई भ्रांति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जो भ्रांति हो गई है, वह भ्रांति कौन-से साधनों से जाएगी? कृपा करके आप वह समझाएँगे?

दादाश्री : कर्म का कर्ता है, इसलिए भोक्ता है। यह क्या है? कि कर्म को खुद आधार देता है कि 'यह मैंने किया।' इस वर्ल्ड में कोई जीव कुछ कर ही नहीं सकता। जो 'करते हैं', ऐसा कहते हैं, वही भ्रांति है, और वही अहंकार है। यह तो अहंकार खुद का दिखावा करता है। बाकी, यह सब तो 'इट हेपन्स' है। सबकुछ हो ही रहा है। जो हो रहा है उसे कहता है, 'मैंने किया, मैं कर रहा हूँ।' यह तो हो रहा है। वह अगर कुछ नहीं करे न तो भी सुबह उठते ही चाय-पानी सबकुछ तुरन्त मिल ही जाएगा उसे।

अब भ्रांति कौन-से साधन से जाएगी? 'वह खुद कौन है' ऐसा यदि 'ज्ञानीपुरुष' उसे बता दें तो वह भ्रांति चली जाएगी, बस। यानी कि 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ, तब यह भ्रांति जाएगी।

इस जगत् में 'मैं करता हूँ' और 'मैं जानता हूँ' दोनों भावों को मिला

देना, उसीको भ्रांति कहते हैं। 'हमें' 'मैं करता हूँ' यह भान ही नहीं रहता। जब से 'हमें' 'आत्मा' का भान प्रकट हुआ है, तब से 'मैं करता हूँ' ऐसा भान ही उत्पन्न नहीं हुआ। अरे, इस देह का 'मैं' मालिक ही नहीं रहा न! 'हमें' इस मन-वचन-माया का मालिकीपन आज पच्चीस वर्षों से है ही नहीं।

आत्मा को सुना नहीं, श्रद्धा नहीं रखी, जाना नहीं, तो...

अत: आत्मा, वह अलग चीज़ है। आत्मा को जाना, वह तो परमात्मा को जानने के बराबर है और जिसने परमात्मा को जाना उसका तो मोक्ष ही हो गया।

आत्मा को जानने के लिए ही यह सब है। और यदि आत्मा जानने को नहीं मिला तो आत्मा श्रद्धा रखने के लिए है। 'आत्मा' की 'आपको' श्रद्धा बैठनी चाहिए कि 'मैं आत्मा हूँ' ऐसी प्रतीति बैठनी चाहिए। इतना भी नहीं मिले तो फिर आत्मा सुनने के लिए है कि रोज़ आत्मा की बात सुनते रहें।

इसलिए शास्त्रकारों ने क्या लिखा है कि जिसने आत्मा के बारे में सुना नहीं है, आत्मा पर श्रद्धा नहीं रखी या उसे जाना नहीं है, वह मुक्तिमार्ग का अधिकारी ही नहीं है। अत: इस बात को अगर समझ जाए तो हल आएगा, नहीं तो हल नहीं आएगा।

अध्यात्म के अंधकार को विलीन करे ज्ञानी

पच्चीस सौ वर्षों से इस देश में अँधेरा चला आ रहा है। इस बीच एक-दो ज्ञानी हुए, लेकिन वह सारा 'प्रकाश' सब तरफ़ पहुँच नहीं सका। और यह 'प्रकाश' तो मन की सभी परतों को पार कर ले, बुद्धि की परतों को पार कर ले, तब पहुँच सकता है। अभी तक तो फॉरिनवाले मन की परतों में भी नहीं आए हैं। वे लोग तो सिर्फ निश्चेतन-मन की क्रियाओं में हैं। चेतन-मन तो उन्होंने देखा ही नहीं है, सुना ही नहीं है और फॉरिनवालों को उसकी ज़रूरत भी नहीं है। फॉरिनवालों को आज हम कहें कि अंदर आत्मा है, तो इतना उसे थोड़ा-बहुत समझ में आएगा कि

कोई तत्व है। लेकिन वह आत्मा को नहीं मानता, लेकिन अन्य कुछ है, ऐसा वे मान सकते हैं। उन्हें हम कहें कि पुनर्जन्म है, तो वे स्वीकारेंगे नहीं।

अतः सिर्फ आत्मा को जानना है। अपने हिन्दुस्तान के सभी धर्म क्या कहते हैं कि आत्मा को जानो। फॉरिन में आत्मा की बात ही नहीं है। फॉरिन में तो 'मैं ही विलियम हूँ और मैं ही माइसेल्फ' कहेगा। और जब तक वे लोग पुनर्जन्म में नहीं मानते, तब तक आत्मा का भान नहीं हो सकता। जो लोग पुनर्जन्म को मानते हैं उन्हें आत्मा की ख़बर होती है कि भाई, मेरा आत्मा जुदा है और मैं जुदा हूँ।

और आत्मा एक ऐसी चीज़ है कि किसीको मिला ही नहीं, सिर्फ केवळज्ञानियों को ही मिला था, ऐसा कहें तो चलेगा। अन्य जो केवळी हो चुके हैं, वे केवळज्ञानियों के दर्शन करने से ही हुए हैं। लेकिन वास्तव में यदि शोध की है, तो वह केवळज्ञानियों ने, तीर्थंकरों ने!

आत्मा हाथ आए ऐसी वस्तु नहीं है। इस शरीर में आत्मा किस तरह से मिलेगा? आत्मा ऐसा है कि घरों के आरपार चला जाता है, यहाँ लाख दीवारें हों, उनके भी आरपार चला जाता है, आत्मा ऐसा है। अब इस देह में वह आत्मा किस तरह से मिलेगा 'उसे'?

ज्ञानी बर्ताएँ, आत्मपरिणति में

प्रश्नकर्ता : तो सांसारिक मनुष्यों को आत्मा मिलता ही नहीं?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं है। आत्मा ही हो आप। लेकिन 'आपको' खुद को यह भान नहीं है कि 'मैं' किस प्रकार से 'आत्मा' हूँ, वर्ना वास्तव में तो 'आप' खुद ही 'आत्मा' हो।

'ज्ञानीपुरुष' जो आत्मज्ञान देते हैं, वह किस तरह से देते हैं? यह भ्रांतज्ञान और यह आत्मज्ञान, यह जड़ज्ञान और यह चेतनज्ञान, उन दोनों के बीच में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल देते हैं। इसलिए फिर वापस से भूल होना संभव नहीं रहता। और आत्मा निरंतर लक्ष्य में रहा करता है, एक क्षण के लिए भी आत्मा की जागृति नहीं जाती।

अभी आपमें भी आत्मा और अनात्मा दोनों के धर्म अलग ही हैं, लेकिन आपमें दोनों परिणाम एक साथ निकलते हैं, इसलिए आपको बेस्वाद लगता है। दोनों के धर्म के परिणाम मिक्सचर करने से बेस्वाद हो जाता है, जब कि 'ज्ञानीपुरुष' में चेतन परिणाम अलग रहते हैं और अनात्म परिणाम अलग रहते हैं, दोनों धाराएँ अलग-अलग बहती हैं, इसलिए निरंतर परमानंद में रहते हैं।

ऐसा है, खाना, पीना, नहाना, उठना, सोना, जागना, ये सभी देह के धर्म हैं। और सभी लोग देह के धर्म में ही पड़े हैं। 'खुद' 'आत्मधर्म' में एक बार एक सेकन्ड के लिए भी आया नहीं है। यदि एक सेकन्ड के लिए भी आत्मधर्म में आया होता तो भगवान के पास से खिसकता नहीं।

ज्ञानांक्षेपकवंत विचारधारा काम की...

प्रश्नकर्ता : जीव को विचार करना चाहिए न?

दादाश्री : किसका?

प्रश्नकर्ता : जो आपके पास से सुना हो या पढ़ा हो, उस पर विचारणा करनी चाहिए न?

दादाश्री : हाँ। विचारणा करके उसका सार निकालना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : यानी विचारणा करना ज़रूरी है?

दादाश्री : हाँ, ज़रूरी है लेकिन कुछ हद तक।

ऐसा है, यह जो विचारणा है न, वह आत्मा प्राप्त करने तक ही विचारणा करनी है, और उसके बाद फिर विचारणा नहीं होती। क्योंकि विचारणा तो मन का धर्म है। अर्थात् आत्मधर्म प्राप्त करने के बाद मनोधर्म की ज़रूरत नहीं है। फिर तो देहधर्म, मनोधर्म, बुद्धि के धर्म, अंत:करण के धर्म, किसी धर्म की ज़रूरत नहीं रहती। क्योंकि खुद का स्वधर्म प्राप्त हो गया!

प्रश्नकर्ता : तो स्वधर्म में आने के बाद क्या-क्या करने की ज़रूरत है?

दादाश्री : स्वधर्म में आने के बाद अन्य कुछ भी करने की ज़रूरत ही नहीं है। ये सभी महात्मा स्वधर्म में आ चुके हैं। इसलिए 'इन्हें' विचार की ज़रूरत नहीं है, लेकिन जब तक स्वधर्म में नहीं आया है तब तक विचार की भी ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि कृपालुदेव ने कहा है न कि '*कर विचार तो पाम*।'

दादाश्री : हाँ, '*कर विचार तो पाम*' कहा है। लेकिन वे सभी विचार आवरण हैं। फिर भी कृपालुदेव ने जो कहा है वह ठीक है। वे विचार बहुत उच्च होते हैं, इस दुनिया के लोग जो विचार करते हैं न, वे विचार वैसे नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं, वह नहीं, सिर्फ आत्मा के ही विचार।

दादाश्री : बस, सिर्फ आत्मा संबंधी ही विचार। और वे भी कैसे? कि 'लिंक' नहीं टूटे, ऐसे होते हैं। यानी कि इस विचारधारा में विक्षेप नहीं पड़े, ऐसे विचार हों तब आत्मा का थोड़ा कुछ समझ में आता है। बाकी, आत्मा को समझना बहुत कठिन है। और 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तो आत्मा आसानी से प्राप्त हो जाता है।

ये सभी 'महात्मा' आत्मा प्राप्त करके बैठे हैं। और आपका आत्मा इन सबको दिख रहा है, ये सभी दिव्यचक्षु से आपका आत्मा देख सकते हैं।

स्वधर्म प्राप्त हो जाए तो मनोधर्म की ज़रूरत नहीं है, किसी भी धर्म की ज़रूरत नहीं है, फिर देहाध्यास ही नहीं रहता न! देहाध्यास ही छूट गया न!

प्रश्नकर्ता : अभी तक हमारा देहाध्यास तो छूटता नहीं है।

दादाश्री : देहाध्यास, वह देहाध्यास से किस तरह से छूटेगा? आपको देहाध्यास छोड़ना है और आप देहाध्यास में हो, तो ऐसा किस तरह से हो सकेगा? देहाध्यास से देहाध्यास जाएगा नहीं। कृपालुदेव ने कहा है कि

जो तरणतारण हो चुके हों, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' के पास जाना, तो हल निकल आएगा!

जो मोक्ष में न रखें, वे मोक्षदाता ही नहीं

प्रश्नकर्ता : उस आत्मा को जानने की कुछ चाबियाँ तो होंगी न?

दादाश्री : उसकी चाबियाँ वगैरह कुछ नहीं होता। वह तो 'ज्ञानी' के पास जाकर उनसे कह देना कि, 'साहब, मैं बिल्कुल बेअक़्ल मूर्ख व्यक्ति हूँ। अनंत जन्मों से भटका, लेकिन आत्मा का एक अंश, बाल जितना भी मैंने जाना नहीं। इसलिए आप मुझ पर इतनी कुछ कृपा कीजिए।' तो बस, काम हो गया। क्योंकि 'ज्ञानीपुरुष', वे तो मोक्ष का दान देने के लिए ही आए हैं।

और वापस फिर लोग शोर मचाते हैं कि, 'तब फिर हमारे संसार व्यवहार का क्या होगा?' आत्मा जानने के बाद जो बाकी बचा, वह सारा व्यवहार माना जाता है और व्यवहार के लिए भी फिर 'ज्ञानीपुरुष' पाँच आज्ञा देते हैं कि, 'भाई, ये मेरी पाँच आज्ञाएँ पालना। जा, तेरा व्यवहार भी शुद्ध और निश्चय भी शुद्ध और जोखिमदारी सब हमारी।'

और मोक्ष यहीं से बरतना चाहिए। मोक्ष यहीं से न बर्ते तो वह सच्चा मोक्ष नहीं है। यहाँ पर 'मुझसे' मिलने के बाद अगर आपको मोक्ष न बर्ते तो ये 'ज्ञानी' सच्चे नहीं हैं और यह मोक्ष भी सच्चा नहीं है। यहीं पर, इस पाँचवे *आरे* में ही मोक्ष बरतना चाहिए। यहीं पर इस कोट-टोपी के साथ मोक्ष बरतना चाहिए। बाकी, वहाँ पर तो बरतेगा, इसका क्या ठिकाना? इसलिए 'ज्ञानीपुरुष' से ऐसा नक्की करवा लेना है कि 'खुद' किस प्रकार से 'आत्मा' है।

अनादि से स्वरूप निर्धारण में ही भूल

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा लगता है कि आत्मस्वरूप का निर्णय करने में जल्दबाज़ी क्यों करनी चाहिए?

दादाश्री : हाँ, जल्दबाज़ी करने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ पर तो

आपको जितने प्रश्न पूछने हों उतने प्रश्न पूछो, खुलासा देने के लिए हम तैयार हैं। जो निर्णय करना हो, वह भी यहाँ पर हो सकता है। लेकिन पहले वह निर्णय कर लेना चाहिए, उस समय ही सतर्कता रखनी है। और एक बार निर्णय करने के बाद सतर्कता की कोई ज़रूरत नहीं रहती। इसलिए जल्दबाज़ी में निर्णय करने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि यह तो अनंत जन्मों की भूल मिटानी है। अनंत जन्मों से जो भूल मिटी नहीं है, उस भूल को मिटाना है, और कौन-सी भूल हुई है अनंत जन्मों से? अनादिकाल से आत्मस्वरूप का निर्णय होने में भूल होती आई है, उसे मिटाना है। अतः इसमें जल्दबाज़ी करनी ही नहीं चाहिए न!

वह आत्मस्वरूप ऐसा है कि आपकी दृष्टि में नहीं आ सकेगा। अब आपका खुद का ज्ञान कुछ हद तक का ही जानता है, उसकी तुलना में आत्मस्वरूप तो बहुत आगे है। यानी कि आपका खुद का ज्ञान भी वहाँ पर पहुँच नहीं सकेगा। जहाँ पर आपकी दृष्टि नहीं पहुँच सकती, जहाँ पर आपका ज्ञान नहीं पहुँच सकता, ऐसा 'खुद' का स्वरूप है, वह 'आत्मस्वरूप' है!

यानी कि 'मैं कौन हूँ' इसे जानना, वही खुद का स्वरूप है। और उसे सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' ही 'रियलाइज़' करवा सकते हैं। फिर मरना और जन्म लेना रहता ही नहीं न!! फिर मरना हो तो देह मरेगा, 'खुद' को नहीं मरना है और एक-दो जन्मों में मोक्ष हो जाएगा।

सभी साधन बंधन बने

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा साधन बता सकते हैं कि जिससे आत्मज्ञान हो जाए?

दादाश्री : साधन तो बहुत सारे जाने हैं, लेकिन जीव साधनों में ही उलझा हुआ है। जो साधन होते हैं न, उन साधनों में ही लोगों को फिर अभिनिवेष (अपने मत को सही मानकर पकड़े रखना) हो जाता है। किसी भी प्रकार का रोग नहीं घुसे, ऐसा जागृत हो, 'अलर्ट' हो, तो कुछ आगे बढ़ सकेगा। बाकी साधनों में ही उलझकर अभिनिवेष हो जाता है। यानी

कि जिनका छुटाकारा हो चुका है, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तो अपना कुछ छुटकारा करवा देंगे, वर्ना तब तक संत पुरुषों के पास बैठ सकें, तो उसके जैसा बड़ा पुण्य भी और कोई नहीं है। बाकी संसार के त्रिविध ताप में से किस तरह से निकल पाएगा? फिर भी वे संत पानी छिड़कते रहते हैं, जिससे ठंडक रहती है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी किसी भी साधन के सहारे के बिना आगे किस तरह से बढ़ा जा सकता है? कोई साधन तो चाहिए न?

दादाश्री : सभी साधन ही बंधन हो चुके हैं। आपको बाँधा किसने है? साधनों ने ही आपको बाँधा है। इन लोगों ने जितने-जितने साधन बनाए हैं न, उन साधनों ने ही इन्हें बाँधा है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या सोचकर आगे बढ़ें? और उलझन में से निकलें किस तरह?

दादाश्री : ऐसा है न, कोई कहेगा, 'ये आकाश पुष्प आपने देखा था?' तो आप क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : 'वह तो भ्रम है' ऐसा कहूँगा।

दादाश्री : तो यह तो आत्मा है, वह किस तरह मिलेगा? वह कोई कल्पित वस्तु नहीं है।

यानी कि आत्मा को किस तरह से जानोगे? आत्मा तो खुद ही विज्ञान है। और आप जो सब साधन करते हो, ज्ञान के सब साधन करते हो, वह ज्ञान भी शुष्कज्ञान है। यानी कि उसमें आपको सबकुछ करना पड़ता है, जब कि विज्ञान तो इटसेल्फ क्रियाकारी होता है, खुद ही काम करता रहता है। आपको कुछ भी नहीं करना है, और विज्ञान से आत्मा जाना जा सकता है। अन्य कोई ऐसा साधन नहीं है कि जिससे आत्मा जाना जा सके। यह आपको साधन बताया है। अब यह विज्ञान, यह आप कर लोगे?

प्रश्नकर्ता : पता नहीं चला, कौन-सा विज्ञान?

दादाश्री : आत्मविज्ञान। आत्मविज्ञान अर्थात् आत्मा प्राप्त करने का

जो विज्ञान है, वह विज्ञान होगा तभी आत्मा प्राप्त हो सकेगा, नहीं तो आत्मा प्राप्त करने के शास्त्र निकले हैं, लेकिन उस ज्ञान से कुछ आत्मा प्राप्त हो सके, ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्मा शब्दरूप तो है नहीं कि शास्त्र में उतर सके। वह तो निःशब्द है, अवक्तव्य है, अवर्णनीय है। बाकी लोगों ने जो कल्पना की है, आत्मा वैसा नहीं है। यह तो मन में मानकर बैठे रहते हैं और पूरी रात और दिन निकाल देते हैं और अंदाज़े से चलते रहते हैं और अनंत जन्मों से भटक रहे हैं, लेकिन अभी तक जन्म तो एक भी कम नहीं हुआ!

नहीं मिट सकता खुद से *पोतापणुं*

दादाश्री : क्या नाम है आपका?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : वास्तव में चंदूभाई हो, ऐसा विश्वास है?

प्रश्नकर्ता : लोगों ने मेरा नाम रखा है।

दादाश्री : तो आप वास्तव में क्या हो? 'माइ नेम इज़ चंदूभाई' बोलते हो न? तो यह 'माइ' कहनेवाला यह कौन है?

प्रश्नकर्ता : यही मेरी खोज है। 'मैं कौन हूँ' यही तो खोजना है।

दादाश्री : कितने समय से खोज रहे हो यह?

प्रश्नकर्ता : दो वर्षों से।

दादाश्री : पहले नहीं की थी? क्यों?

प्रश्नकर्ता : ज़रूरत नहीं थी और उस तरह की समझ भी नहीं थी।

दादाश्री : ओहो! ऐसी समझ ही नहीं थी कि आपको यह ज्ञान जानना है, ठीक है। अतः यह ज्ञान, 'मैं कौन हूँ' इसे जानने की ज़रूरत है। इसे जान ले न तो सारा निबेड़ा आ जाएगा। अब इसमें 'चंदूभाई' 'आपका' नाम है। लेकिन 'आप' कौन हो?

प्रश्नकर्ता : यों तो 'मैं' एक 'मनुष्य' हूँ।

दादाश्री : मनुष्य तो, इस देह का मनुष्य जैसा फोटो दिखता है, उसे मनुष्य ही कहेंगे। देह का आकार ही मनुष्य का है। 'आप' 'मनुष्य' भी नहीं कहलाते। यह देह आपकी है?

प्रश्नकर्ता : देह मेरी नहीं है।

दादाश्री : इस देह का कोई असर नहीं होता? सर्दी लगती है या गर्मी लगती है?

प्रश्नकर्ता : देह को लगती है।

दादाश्री : देह को लगती है, लेकिन आपको नहीं लगता न? इस देह का असर होता है न? असर किसलिए होता है? जो खुद का होता है उसका असर होता है। जो पराई वस्तु है, उसका असर नहीं होता। आपको समझ में आता है न? यानी कि हमें असर किसका होगा? जिसे खुद का माना हो उस चीज़ का ही असर होता है। 'यह बॉडी मेरी है' ऐसा कहता है, इसलिए उसका असर होता है। नींद में भी ऐसा भान रहता है। नींद में भी कहेगा कि, 'यह देह मेरी है। यह नाम भी मेरा है।' अब जो आपका है, क्या उसे छोड़ देंगे?

यानी कि यह 'मैं' छूट सके ऐसा नहीं है। 'मैं' तो सबसे बड़ा भूत है। कुछ लोग कहते हैं, 'यह देह मेरी नहीं है, यह बेटा मेरा नहीं है, पत्नी मेरी नहीं है, कोई मेरा नहीं है।' इस तरह सारी माथाकूट करते रहते हैं। लेकिन फिर, अंत में तू तो है ही न? अब कहाँ जाएगा? और इन मन-वचन-काया को कहाँ फेंक देगा? इस *पुद्गल* को कहाँ फेंकेगा? अन्य सभी *पुद्गल* को फेंक सकता है, लेकिन इसे कहाँ फेंकेगा? वह तो जब 'ज्ञानीपुरुष' के पास जाओगे तो वे मुक्त कर देंगे। आपको समझ में आया न?

यह समझने की कोशिश फलेगी क्या?

प्रश्नकर्ता : यों तो मैं भी आत्मा को समझने की ही कोशिश कर रहा हूँ।

दादाश्री : यह समझने की कोशिश कब होगी? 'आप' 'चंदूभाई' हो, तो समझने की कोशिश किस तरह करोगे? और वास्तव में 'आप' चंदूभाई हो ही नहीं। चंदूभाई तो आपका नाम है। 'आप' इस बच्चे के पिता हो, यह भी व्यवहार है और यह सब तो हम क़बूल करते ही हैं न! उसमें नई बात क्या है? यह तो पहचानने का साधन है। 'आप कौन हो', उसका तो 'ज्ञानीपुरुष' के पास जाकर पता लगाना चाहिए, उसे 'रियलाइज़' करना चाहिए।

यह तो पराई चिट्ठी 'खुद' ने ले ली

दादाश्री : आपको तो यह विश्वास है ही न, कि 'मैं चंदूभाई हूँ?'

प्रश्नकर्ता : नहीं, यह नाम तो लोकभाषा में है, बाकी 'मैं एक आत्मा हूँ' बस, और कुछ नहीं।

दादाश्री : हाँ, आत्मा हो लेकिन कोई चंदूभाई को गाली दे तो उसकी चिट्ठी आप नहीं लेते हो न? ले लेते हो? तब तो आप चंदूभाई हो। फिर लोक-भाषा नहीं कह सकते। चंदूभाई को गाली दे तो आप चिट्ठी क्यों ले लेते हो? इसलिए आप चंदूभाई बन गए हो।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में रहने के लिए तो सब करना पड़ता है न!

दादाश्री : नहीं। व्यवहार में रहना है लेकिन चंदूभाई की चिट्ठी आपको नहीं लेनी चाहिए। ऐसा कह सकते हैं कि, 'भाई, यह चंदूभाई की चिट्ठी है। मुझे हर्ज नहीं है। आपको जितनी गालियाँ देनी हो उतनी दो।' लेकिन आप तो चंदूभाई बनकर रहते हो। चंदूभाई के इनाम आपको खाने हैं और फिर कहते हो 'मैं आत्मा हूँ।' इस तरह से कोई आत्मा बन जाए, ऐसा हो सकता है?

संसार में असंगता, कृपा से प्राप्त

दादाश्री : 'आप आत्मा हो' आपको ऐसा यक़ीन किस तरह से हो गया?

प्रश्नकर्ता : उसके लिए आपके जैसे गुरु के पास जाते हैं, वहाँ पर देह और आत्मा अलग किस प्रकार से हैं, ऐसा उपदेश सुना हुआ है। बाकी हम लोगों में और आपमें बहुत फ़र्क़ है न? हम यानी संसारी, मोह-माया में रहे हुए लोग...

दादाश्री : और मैं क्या संसारी नहीं हूँ। मैं भी संसारी ही हूँ। इस दुनिया में जो संडास जाते हैं, वे सभी संसारी है। जिसे संडास जाने की ज़रूरत पड़ती है और जो संडास ढूँढते हैं, वे सभी संसारी कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमारे जैसों को संसार में रहकर आत्मज्ञान मिल जाए, मोक्ष हो जाए, वह कैसे?

दादाश्री : ऐसा है न, संसार दो प्रकार का है। त्यागी भी संसार है और गृहस्थी भी संसार है। दोनों प्रकार के संसार हैं। त्यागवाले को 'मैंने इसका त्याग किया है, इसका त्याग किया है' ऐसा ज्ञान बरतता है। और गृहस्थियों को 'यह मैं ले रहा हूँ, यह मैं दे रहा हूँ, यह ग्रहण करना है' ऐसा ज्ञान उसे बरतता है, लेकिन अगर आत्मा को जान लिया तो मोक्ष हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या संसार में रहकर संसार के फर्ज़ पूरे करते-करते भी उससे अलिप्त रहा जा सकता है?

दादाश्री : यही 'ज्ञानीपुरुष' के पास है न। 'ज्ञानीपुरुष' के पास जो 'विज्ञान' होता है, वही देते हैं, फिर उससे संसार व्यवहार का भी सबकुछ हो सकता है और आत्मा का भी हो सकता है। 'ज्ञानीपुरुष' के पास ऐसा 'विज्ञान' होता है।

मैं आपके साथ बातचीत कर सकता हूँ। यानी संसार में भी रह सकता हूँ और मैं अपने आप में भी रह सकता हूँ। दोनों कर सकता हूँ। इस संसार की जो सभी क्रियाएँ करनी होती हैं, वे भी करता हूँ। संसार में भी रह पाता हूँ और आत्मा में भी रह पाता हूँ। 'ज्ञानीपुरुष' के पास पूरा 'विज्ञान' होता है, वह शास्त्रों में नहीं होता। शास्त्रों के अनुसार तो यह सब छोड़ने पर ही छुटकारा हो सकता है।

ऐसे लोगों के साथ में रहना और दिन बिताना और कर्म नहीं बँधे इस प्रकार से रहना, वैसे किस तरह से रह सकते हैं? वह सारी विद्या मैं आपको सिखा दूँगा। लेपायमान हों नहीं, ऐसी विद्या मैं बता दूँगा। वर्ना तो यह दुनिया तो लेपायमान ही है। जैसे कमल पानी में रहकर भी निर्लेप रहता है न, उसी तरह की निर्लेपता आपको बता दूँगा।

अत: आत्मा कहाँ से जाना जा सकता है? 'ज्ञानीपुरुष' के पास से। इन शास्त्र के ज्ञानियों के पास आत्मा नहीं होता। यदि आत्मा प्राप्त हुआ होता तो उन्हें समकित हो चुका होता और समकित अर्थात् इस संसार में रहने के बावजूद संसार स्पर्श नहीं करे, और ऐसा तो 'ज्ञानीपुरुष' की कृपा से प्राप्त होता है।

सर्वांगी स्पष्टत समझ से उलझन जाए

कुछ तो उपदेश में सिर्फ आत्मा ही है, ऐसा कहते हैं। कान में ऐसे फूँक मारकर बोलते हैं कि बोल, 'मैं आत्मा हूँ।' अरे, लेकिन आत्मा यानी क्या? और अगर 'मैं आत्मा हूँ', तो यह बाकी का सब क्या है? वापस ऐसा प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा? अपने यहाँ तो क्या कहा है कि, ''बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट 'यह' और बाइ रियल व्यू पोइन्ट 'यह', इस तरह से दोनों बोलना चाहिए।'' उन लोगों के लिए 'पोइन्ट' जैसा कुछ नहीं है, दोनों तरफ़ का सफोकेशन रहता है। लेकिन वैसी फूंक मारी हो, तो थोड़ा-बहुत रहता है। लेकिन वापस उलझ जाता है, रेल्वे लाइन 'पेरेलल' नहीं होनी चाहिए? या टेढ़ी-मेढ़ी चलेगी? भले ही अगर तुझे टेढ़ी चलानी हो तो टेढ़ी चलाना, गोल चलानी हो तो गोल चलाना, लेकिन 'रियल' और 'रिलेटिव' दोनों लाइनें 'पेरेलल' रखना।

रिलेशन में भूला 'खुद' खुद को

चंदूभाई तो सिर्फ व्यवहार चलाने के लिए नाम है। यह तो 'खुद' 'रियल' था, वह 'रिलेटिव' बन गया। बहुत सारे 'रिलेशन' हो जाने से खुद को भ्रांति उत्पन्न हो गई। और फिर कहता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ', इसे 'इगोइज़म' कहते हैं।

बदली बिलीफ़, 'वस्तु' संबंधी

प्रश्नकर्ता : 'रियल' और 'रिलेटिव' क्या है? उन दोनों में क्या संबंध है?

दादाश्री : सापेक्ष सारा विनाशी होता है। सापेक्ष को अंग्रेज़ी में 'रिलेटिव' कहते हैं। और 'ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्टस एन्ड रियल इज़ द परमानेन्ट।' निरपेक्ष को 'परमानेन्ट' कहते हैं। सापेक्ष अर्थात् दूसरों पर आधारित है, दूसरों के आधार पर जी रहा है।

यह अँधेरा है, तो उजाला है। वर्ना उजाले को उजाला कौन कहेगा? हमेशा उजाला रहे तो उसे उजाला कौन कहेगा? यानी कि अँधेरे की अपेक्षा से उजाला है। और अँधेरा किसके आधार पर है? उजाले की अपेक्षा से अँधेरा है, इसे सापेक्ष कहते हैं। जो किसीकी भी अपेक्षा (तुलना) से है, उसे सापेक्ष कहते हैं। और वह सापेक्ष टेम्परेरी होता है, बदलता ही रहता है। और जो 'रियल' है, वह 'परमानेन्ट' वस्तु है।

इस जगत् में छह वस्तुएँ 'परमानेन्ट' हैं। अब छह वस्तुओं में शुद्ध चेतन 'परमानेन्ट' है और दूसरी अन्य जो वस्तुएँ हैं उनमें चेतनभाव नहीं है। फिर भी ये पाँचों ही 'परमानेन्ट' हैं और इनमें दूसरे अनंत प्रकार के गुणधर्म हैं। इन सबके गुणधर्मों के कारण यह 'रिलेटिव' भाव उत्पन्न हो गया है सिर्फ। आत्मा तो निरंतर आत्मा ही रहता है, निरंतर चेतन के रूप में ही रहता है। वह बदला नहीं है, क्षण भर के लिए भी बदला नहीं है। सिर्फ बिलीफ़ ही रोंग हो जाती है।

जो आप हो उसकी बिलीफ़ नहीं है और जो आप नहीं हो, उसकी बिलीफ़ आपको बैठी है। ये सभी 'रोंग बिलीफ़' हैं। और ये सभी बिलीफ़ 'रिलेटिव' हैं, नॉट 'रियल'।

प्रश्नकर्ता : 'रियल' की स्टेज में जाने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उसके लिए तो 'रियल' को 'रियलाइज़' करना चाहिए। हम यहाँ पर ज्ञान देते हैं, उसके बाद 'रियल' का 'रियलाइज़ेशन' हो जाता है।

मुक्ति मांगे सैद्धांतिक समझ

प्रश्नकर्ता : लेकिन किताब में तो ऐसा लिखा है कि मन को आत्मा में लगा, तो उद्धार होगा।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह आत्मा को जानने के बाद में लगाया जा सकता है न, यों ही किस तरह से लगाया जा सकेगा? जब तक 'रियलाइज़' नहीं होगा तब तक आत्मा किसे कहोगे? आत्मा जलाने से जलाया जा सके ऐसा नहीं है, और वह पानी से भीगता नहीं है, ऐसा सब लिखा है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो ऐसी तो घड़ियाँ भी आ गई हैं, वॉटरप्रूफ और फायरप्रूफ! यानी कि मेरा कहना है कि ऐसी तो घड़ियाँ भी आती है न? आत्मा ऐसा नहीं है। आत्मा तो अनंत गुणों का धाम है और वह तो परमात्मा ही है। जब केवळी दशा में आता है, तब वह परमात्मा कहलाता है और जब तक केवळी दशा में नहीं होता और शब्दरूप में होता है, तब तक अंतरात्मा कहलाता है, जब तक शब्द का अवलंबन है, तब तक अंतरात्मा कहलाता है। फिर भी अंतरात्मा और परमात्मा में बहुत फ़र्क़ नहीं है। जो अंतरात्मा हैं, वे परमात्मा हो रहे हैं और केवळी परमात्मा हो चुके हैं, इतना ही फ़र्क़ है।

प्रश्नकर्ता : कई स्तोत्रों में, स्तुतिओं में ऐसा कहा गया है कि उन स्तुतियों का नित्यपाठ करने से संसार के सभी सुख भोगकर परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। अगर ऐसा हो तो आत्मज्ञान के लिए मेहनत क्यों करें?

दादाश्री : ऐसा है न, वे तो रास्ता बताते हैं कि पुण्य बँधा हुआ होगा तो आगे बढ़ोगे, तो कभी न कभी आत्मज्ञान प्राप्त करने का रास्ता मिल जाएगा। लेकिन अगर पाप ही बँधा हुआ होगा, तो उसे यह रास्ता मिलेगा ही नहीं न? इसलिए लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए ऐसा कहा है। बाकी यह वास्तव में, 'एक्ज़ेक्ट' कारण नहीं है।

धर्म हमेशा ही सैद्धांतिक होना चाहिए। सैद्धांतिक अर्थात् कभी भी असैद्धांतिक न हो जाए और फलदायी हो। तुरन्त फल दे तो वह सिद्धांत है, वर्ना यदि तुरन्त फल नहीं दे तो वह सिद्धांत कैसे कहलाएगा? किसी भी वस्तु के सिद्ध हो जाने के बाद उसका अंत आ जाता है, फिर से उसे सिद्ध नहीं करना पड़ता। हमेशा के लिए वह त्रिकाल सिद्ध हो जाता है, उसीको सिद्धांत कहते हैं।

आत्मा तो 'सेल्फ' वस्तु है। 'सेल्फ' का 'रियलाइज़ेशन' हो गया तो पूरा जगत् 'रियलाइज़' हो गया। आत्मा को जान ले तो अहंकार और ममता दोनों एक साथ चले जाते हैं। 'एट ए टाइम' चले जाते हैं।

जैसे अपना खुद का एक मकान हो, वह हमें बहुत पसंद हो। लेकिन उधार हो गया हो और हमें वह बेचना पड़े, बेचकर पैसे ले लेने के बाद में फिर दूसरे दिन अपनी ममता छूट जाती है न?

प्रश्नकर्ता : छूट जाती है।

दादाश्री : क्यों? चालीस वर्षों से मकान अपना था और बेचने के बाद दूसरे दिन जल जाए तो दुःख होगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं होगा।

दादाश्री : क्योंकि ममता सारी छूट गई। इसी तरह आत्मा जान लिया कि तुरन्त ही अहंकार-ममता सबकुछ छूट जाएगा।

स्व-स्वभाव में, बरतने से समाधि

खुद परमात्मा है, लेकिन इसका भान नहीं है तब तक क्या हो सकता है? तब तक उसे जो भान मिला है, उस भान में बरतता है, उसे 'मैं चंदूलाल हूँ' यह बिलीफ़ ही रहती है। 'मैं चंदूलाल हूँ, इस स्त्री का पति हूँ', ऐसी सब 'रोंग बिलीफ़ों' में ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : इस संसार के अंदर जीव एक-दूसरों को इसी तरह से पहचानते हैं न? उसी तरह मुझे भी सब 'चंदूलाल' ही कहते हैं।

दादाश्री : 'चंदूलाल' तो व्यवहार में पहचानने का साधन है, उसमें हर्ज नहीं है। वह तो मैं भी कहता हूँ। मुझे कोई पूछे कि, 'आपका नाम क्या है?' तो मैं कहता हूँ, 'अंबालाल।' लेकिन 'मैं' अपने आप को 'अंबालाल हूँ' ऐसा कभी भी, स्वप्न में भी नहीं मानता। और आप तो, स्वप्न में तो क्या, लेकिन जागृत अवस्था में भी ऐसा मानते हो कि, 'मैं चंदूलाल हूँ!' अब 'मैं चंदूलाल हूँ', यह 'रोंग बिलीफ़' आपको परेशान करती है। और मैं अपने स्वभान में रहता हूँ, स्व-स्वरूप में रहता हूँ, इसलिए मुझे निरंतर समाधि रहती है। स्व-स्वरूप में आने पर परमात्मापन प्रकट होता रहता है, परमात्मा की शक्ति व्यक्त हो जाती है। अभी तो चंदूलाल की शक्तियाँ व्यक्त हुई हैं। मनुष्य में आए हो इसलिए चंदूलाल की शक्तियाँ व्यक्त हुई हैं, लेकिन मनुष्यपन की अधिक शक्तियाँ व्यक्त नहीं हुई हैं। इसलिए सामान्य मनुष्य ही माना जाता है।

ऐसे काल में प्रयत्नों से प्राप्ति संभव है?

प्रश्नकर्ता : इसके लिए प्रयत्न करना पड़ेगा?

दादाश्री : प्रयत्न करना आपसे हो नहीं सकेगा। क्योंकि आप खुद व्यग्र हो चुके हो, इसलिए प्रयत्न नहीं हो सकेगा। वह तो कोई संपूर्ण एकाग्र हो तो मैं बता दूँ, लेकिन इस काल में मनुष्य वैसा एकाग्र रह नहीं सकता और इस काल में इतनी भीड़ में, ऐसे भीषण काल में मनुष्य एकाग्र किस तरह से रह सकेगा? इसलिए मैं पहले आपके पाप धो देता हूँ, फिर आपको 'राइट बिलीफ़' बैठा देता हूँ।

प्रश्नकर्ता : प्रगति करने के लिए एकाग्रता की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : ऐसा है न, एकाग्रतावाली दवाईयाँ हैं, वे 'हेल्पिंग' हैं। इस जगत् में कोई वस्तु गलत है ही नहीं। ये सभी वस्तुएँ 'हेल्पिंग' हैं, लेकिन यदि खुद को इतनी ही तमन्ना हो कि संपूर्ण स्वतंत्र होना है। 'शक्कर मीठी है' उसमें मीठी का मतलब क्या है, उसका ही भान करना है, तो फिर उसे अंतिम बात करने के लिए यहाँ पर आना चाहिए। वर्ना तो ये दूसरे सभी उपाय हैं और वे 'स्टेपिंग' हैं।

क्रिया नहीं, भान बदलना है

प्रश्नकर्ता : संसारी ज़िम्मेदारियों से बँधे हुए मनुष्य आत्मा किस तरह प्राप्त कर सकते हैं?

दादाश्री : 'चंदूलाल' और 'आत्मा', दोनों बिल्कुल अलग ही हैं और अपने-अपने अलग गुणधर्म बताते हैं। वे यदि 'ज्ञानी' के पास से समझ लिए जाएँ तो संसार की जिम्मेदारियाँ अच्छी तरह से निभाई जा सकेगी और 'यह' भी हो सकेगा। ज्ञानी भी खाते-पीते, नहाते-धोते सबकुछ करते हैं। आपके जैसी ही क्रियाएँ करते हैं, लेकिन 'मैं नहीं कर रहा हूँ', उन्हें ऐसा भान रहता है। और अज्ञान दशा में 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा भान होता है। अर्थात् सिर्फ भान में ही फ़र्क़ है।

आत्मविकास में नहीं होती, प्रतिकूलता कभी

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंतर की इच्छा हो, फिर भी आत्मविकास के कार्य में अधिक प्रतिकूलता क्यों महसूस होती है?

दादाश्री : आत्मविकास के कार्य में प्रतिकूलता कभी भी होती ही नहीं। सिर्फ, उसकी अंतर की इच्छा ही नहीं होती। यदि अंतर की इच्छा हो न तो आत्मविकास के कार्य में प्रतिकूलता होती ही नहीं। यह तो 'उसे' इस दुनिया पर अधिक भाव है और आसक्ति है, इसलिए आत्मा में प्रतिकूलता लगती है। बाकी आत्मा प्राप्त करना तो सहज है, सरल है, सुगम है। आत्मा को खुद के गाँव जाने में देर ही कितनी लगेगी?

मैंने किसान से पूछा था कि, 'इस बैल को यहाँ से खेत में ले जाते समय बैल का स्वभाव कैसा रहता है?' तब उसने कहा, 'हम खेत में ले जाते हैं, उस घड़ी धीरे-धीरे चलता है।' 'और वापस घर आते समय?' तब कहता है, 'घर पर? वह तो समझ जाता है कि घर पर जा रहे हैं, इसलिए तेज़ी से चलता है!' उसी प्रकार जब से आत्मा ने ऐसा जाना कि मोक्ष में जाना है, तब से तेज़ी से चलने लगता है। खुद के घर पर जाना है न? और बाकी सभी जगह पर तो धीरे-धीरे जबरन चलता है।

प्रत्यक्ष से लाभ उठा लो

प्रश्नकर्ता : देहातीत स्थिति प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ कितना और ईश्वरकृपा कितनी?

दादाश्री : ईश्वर की कृपा तो सभी संयोग मिलवा देती है। जब ईश्वरकृपा हो, तब देहातीत दशा प्राप्त करने के लिए देहातीत पुरुष मिल जाएँ, तो वे देहातीत की प्राप्ति करवा देते हैं। फिर भी जो देहातीत हैं, वे सभी देहातीत की प्राप्ति नहीं करवा सकते। वह तो कभी-कभी ही जब वैसे 'ज्ञानीपुरुष' अवतरित हों, तब वे ही हमें देहातीत बना सकते हैं। बाकी देहातीत बनना आसान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : देहातीत कि प्राप्ति के लिए ईश्वर की कृपा प्राप्त हो जाए, उसके लिए क्या पुरुषार्थ करना चाहिए और वह पुरुषार्थ कितना होना चाहिए?

दादाश्री : यह पुरुषार्थ किया तभी तो आप मुझसे मिले हो। जो कुछ भी पुरुषार्थ किया होगा न, अच्छा पुरुषार्थ किया होगा न, तभी तो मिले हैं। अब मिलने के बाद आपको लाभ लेना आना चाहिए। यहाँ पर तो जो माँगो वह मिलता है, लेकिन आपको लेना आना चाहिए। लोग तो अपनी भाषा में ढूँढते हैं, उन्हें जैसा समझ में आए वैसा ढूँढते हैं। आप जिस देहातीत की प्राप्ति की बात कर रहे हो न, वह देहातीत दशा यहाँ पर प्राप्त हो सकती है। देहातीत जैसी कोई दशा है, लोगों को ऐसी ख़बर ही नहीं है न! देहातीत दशा ढूँढनेवाले कोई ही मनुष्य होंगे न, ऐसे लोग होते ही नहीं हैं न?

समझ बिना क्या साधना करे?

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मसाक्षात्कार तो बहुत सारी तपश्चर्या करने के बाद में, साधना के बाद में हो पाता है न?

दादाश्री : नहीं, इतनी सारी तपश्चर्या, साधना करने के बाद भी वापस गधे का जन्म मिलता है! क्योंकि दादर का स्टेशन आधा मील दूर था और तूने बाईस मील का चक्कर क्यों लगाया? तूने तो रोड बिगाड़ी इसलिए

जा गधा बनना। आधा मील दूर था और बाईस मील घूमा, तो भी 'दादर' नहीं आया, कोई और ही गाँव आया। तब वह कहता है, 'बाईस मील का चक्कर लगाया, उसमें से साढ़े इक्कीस मील का तो लाभ हुआ, चलो।' तब कहते हैं, 'नहीं, तूने घूमा उससे हमारी रोड घिसी न, उसके पैसे ला।' उसका फाइन देना पड़ता है, यानी कि ऐसा है। आत्मा प्राप्त हो सके, ऐसा नहीं है और आत्मा कभी भी किसीको मिला ही नहीं। सब कहते हैं, 'हम ब्रह्मस्वरूप हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं।' उन्हें जब गाली दें न, तब पता चलेगा, तुरन्त फन फैलाएँगे।

अध्यात्म के बाधक कारण

प्रश्नकर्ता : आत्मसाक्षात्कार के लिए यह जाति, पंथ वगैरह बाधक हैं क्या?

दादाश्री : उसके लिए कुछ भी बाधक नहीं है। आत्मसाक्षात्कार किसी भी मनुष्य को हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन यह पंथ, जाति वगैरह उसमें बाधक तो होगा न?

दादाश्री : वह बाधक तो किस प्रकार से है कि जब तक जाति का अंहकार है। पंथ का अंहकार है, जाति का अहंकार है, वह सब बाधक है और जो कोई इस बाधक में से निकलकर और 'ज्ञानीपुरुष' को ढूँढ ले तो उसका हल आ जाता है। बाकी ये मत और पंथवाले अभी तो कितना ही भटकेंगे। क्योंकि भगवान के वहाँ पर मत, जाति किसीकी भी ज़रूरत नहीं है। पंथ या वेष की भी वहाँ पर ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आवरणों, कपड़ों से लेकर संसार के बाल-बच्चे, ये सभी आध्यात्मिक के लिए बाधक हैं?

दादाश्री : ये सब वास्तव में बाधक नहीं हैं, लेकिन इन सबके दबाव बहुत होते हैं न, तो कुछ हद तक ये बाधक हैं और एक हद के बाद ये बाधक नहीं हैं, ऐसी कुछ लिमिट है। मुझे कोई भी वस्तु बाधक नहीं

है। यह जितना मैं पहनता हूँ, मेरे पास ये जो कुछ भी है, तो इसमें से मुझे कोई भी वस्तु बाधक नहीं है। फिर भी मुझे तो, यदि कोई कपड़े निकाल ले न, खींच ले न, तो भी मुझे हर्ज नहीं है और वापस पहनाए तो भी हर्ज नहीं है। मुझे इसमें किसी तरह का हर्ज नहीं है। जिस अनुसार जो उदय है उस अनुसार यह देह चलती रहती है, और मैं उसका ज्ञाता–दृष्टा हूँ। यह देह मेरा पड़ोसी है, बिल्कुल पड़ोसी।

प्रश्नकर्ता : यानी कि अहंकार और ममता, ये दोनों हों तभी तक बाधक है न, अध्यात्म के लिए?

दादाश्री : बाधक सिर्फ अहंकार ही है। ममता तो, जब तक अहंकार है तब तक ममता है। बाकी, अगर अहंकार नहीं हो तो ममता होती ही नहीं। अब 'मैं पन', अहंकार नहीं है। 'मैं तो हूँ ही' खुद का अस्तित्व तो है ही। लेकिन 'मैं क्या हूँ?', उसका भान नहीं होने से अहंकार खड़ा है।

जगत् में अध्यात्ममार्ग कहाँ?

यानी कि अगर कोई ऐसे महात्मा या संतपुरुष हों, जिनके क्रोध–मान–माया–लोभ कम हो चुके हों, तो भी हम उसे चला सकते हैं। वहाँ पर कुछ तो अध्यात्म होता है। कुछ अर्थात् बिल्कुल प्राइमरी स्टेज में। बाकी, वास्तविक अध्यात्म तो जगत् में है ही नहीं। यह तो लोग अध्यात्म गाते हैं, बस इतना ही है। बाकी अध्यात्म तो जगत् में है ही नहीं, अध्यात्म का अर्थ क्या होता है? अध्यात्म का अर्थ क्या है?

अध्यात्म एक ऐसी रोड है कि इस रोड पर जाने के बाद अन्य अधिभौतिक रोड दिखेंगी ही नहीं। यह रोड ही अलग है। अत: अध्यात्म शुरू कब से होता है कि जब यह दूसरा सब दिखना बंद हो जाए, फिर भी वह मन में रहे। वे उनके पर्याय, अवस्थाएँ जो हैं, वे मन में चिपके रहें, लेकिन वह रोड दिखनी बंद हो जाए। अर्थात् अध्यात्म तो वह कहलाता है कि वहाँ पर मन में रहेगा, लेकिन आँखों से नहीं दिखेगा।

ऐसा है, अध्यात्म में पहले तो क्या अच्छा और हितकारी है और

क्या हितकारी नहीं है, उसका विवेक रखना पड़ेगा। हितकारी को हमें ग्रहण करना चाहिए, और अहितकारी से दूर रहना चाहिए, इसमें पहले विवेक रखना पड़ेगा।

यह 'चंदूभाई' यह तो व्यवहार में रहने के लिए नाम है। 'आप सिर्फ चंदूभाई ही नहीं हो, इस स्त्री के पति भी हो, इन बच्चों के पिता हो, इनके मामा हो, इनके चाचा हो' ऐसे कितने ही लफड़े हैं? ये लफड़े और अध्यात्म में बहुत दूरी है। ये लफड़े नहीं हों, तभी अध्यात्म हो पाएगा। अब लफड़े छोड़ने से छूट सकें, ऐसे नहीं है। हम छोड़ना चाहें, उससे क्या छूट जाएँगे? यहाँ पर आ जाओगे तो भी वे लफड़े वापस बुलाने आएँगे यहाँ पर, वे लफड़े छोड़ेंगे क्या?

यानी 'मैं चंदूभाई हूँ', वह व्यवहार से ठीक है, लेकिन वास्तव में वैसा नहीं है। तो 'हम वास्तव में क्या हैं', इसे जानना चाहिए न? सही तरीक़ा अपने साथ आएगा और व्यवहार तो यहीं पड़ा रह जाएगा। नाम तो सब यहीं पर रह जाएगा न? आप तो अनामी हो।

अब, सम्यक्‌दर्शन हो जाएगा, तब अध्यात्म में आया हुआ कहलाएगा, वर्ना तब तक अध्यात्म में आया ही नहीं है। फिर भले ही वह कितनी ही पुस्तकें पढ़े तो भी वह अध्यात्म में नहीं आ पाएगा। सम्यक्‌दर्शन हो जाए, 'जैसा है वैसा' दर्शन हो जाए तब अध्यात्म में आता है। यानी कि ये सारी 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर हों, तब 'राइट बिलीफ़' बैठती है।

प्रश्नकर्ता : 'राइट बिलीफ़' के लिए मुझे क्या करना चाहिए? उसके लिए 'मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ', ऐसा बोलना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा नहीं, उससे कुछ नहीं होगा। अगर ऐसा करोगे तो पागल हो जाओगे और लोग भी आकर पूछेंगे कि, 'अरे, शरीर नहीं है तो क्या है फिर?' ऐसा नहीं करना है। कई लोग ऐसा करते हैं, वे पागल हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : तो 'मैं एक आत्मा हूँ' ऐसा कहना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, ऐसा भी नहीं बोल सकते। कोई मनुष्य नींद में हमसे ऐसा कहे कि, 'आप ज़रा बैठिये, मैं भी सिनेमा देखने आ रहा हूँ।' तो हमें कब तक इंतज़ार करना चाहिए कि अगर घंटा-आधा घंटा बैठें, तब तक भी वह उठे नहीं, तो हम नहीं समझ जाएँगे कि यह नींद में बोल रहा है? उसी तरह से 'मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ', वह नींद में बोले तो किस काम का?

प्रश्नकर्ता : 'आत्मा हूँ' का वह अनुभव, होना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, अनुभव होता है न! वह तो 'ज्ञानीपुरुष' अनुभव करवा दें, तब होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे खुद आत्मा का अनुभव करना हो तो किस तरीक़े से हो सकता है?

दादाश्री : मैं वह तरीक़ा बताऊँ न, तो वह है तो आसान, लेकिन आपसे वह होगा नहीं। अभी लोगों का मनोबल पूरा टूट चुका है।

फिर भी आपको एक रास्ता बताऊँ कि आपकी जेब कट गई हो, पाँच हज़ार रुपये गए हों, तो भगवान का न्याय आपसे क्या कहता है? कि भाई, यह आपके ही कर्मों का फल है, इसलिए यह जेबकतरा आपको मिल गया। यह आपके ही कर्मों का फल है, जेबकतरा तो निमित्त है। लेकिन ये लोग क्या करते हैं? निमित्त को काटने दोड़ते हैं। उसे नहीं काटना चाहिए। उसे तो आशीर्वाद देने चाहिए कि तूने मुझे कर्म में से मुक्त किया। इस तरह से रहा जा सकेगा आपसे? इतना समझ में आ जाए तो भी बहुत हो गया! आपको जेब काटनेवाले का एहसान मानना चाहिए कि इस कर्म में से मुझे छुड़वाया या फिर जब आपको कोई गालियाँ दे, उस घड़ी आपको इतना हाज़िर रहना चाहिए कि यह मेरे कर्मों के उदय से है और यह व्यक्ति तो निमित्त है। इतना हाज़िर रहना चाहिए। फिर कोई मारे, हाथ काट दे तो भी ये मेरे कर्मों के उदय हैं और यह निमित्त है, इतना ज्ञान हाज़िर रहेगा तो जाओ आपको आत्मा प्राप्त हो जाएगा। लेकिन वैसा ज्ञान इस दूषमकाल के कारण हाज़िर नहीं रह पाता। और मनुष्य का मन इतना

अधिक मज़बूत भी नहीं रह पाता! अभी इस ज़माने में नहीं रहता न। मन तो पूरा फ्रेक्चर हो चुका है। हम एक बार जागृति दे दें, फिर वह जागृति जाती नहीं।

पापों के जलने से ही, लक्ष्य-जागृति बरते

अब, जागृति कब आती है? पाप भस्मीभूत हो जाएँ, तब जागृति आती है। कृष्ण भगवान ने क्या कहा है कि, 'ज्ञानीपुरुष' पापों को भस्मीभूत कर देते हैं और पाप भस्मीभूत करने के बाद निरंतर जागृति रहती है और निरंतर जागृत रहना, वही अंतिम दशा है। अर्थात् मूल वस्तु, जागृति की आवश्यकता है। आपकी जागृति कम है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। सतत आत्मा का अनुभव होते रहना चाहिए।

दादाश्री : हाँ। सतत अर्थात् निरंतर, रात को भी नहीं भूलें। तभी जानना कि हमने कुछ प्राप्ति की है। वर्ना अन्य कुछ तो काम का ही नहीं है न! ऐसा तो अनंत जन्मों से मिलावटवाला आत्मा प्राप्त किया है। भेल भी बारह रुपये किलो और मिलावटी आत्मा भी बारह रुपये किलो, ये सब जो आत्मा का शोर मचानेवाले हैं न, वे भी सब बारह रुपये किलो के ही आत्मा की बात करते हैं। कोई ऐसा नहीं कहता कि लो, मैं आपको सच्चा आत्मा दे रहा हूँ, ले जाओ।

नहीं तो समरण (नामस्मरण) देंगे कि यह समरण करते रहना। अरे, समरण तो, जब उस पर राग बैठेगा, तो समरण किया जा सकेगा। और जहाँ राग बैठे वहाँ पर सारा संसार ही है और संसार है, वहाँ पर समरण है। समरण तो होना ही नहीं चाहिए। समरण तो, जब और कोई चारा नहीं हो तब का उपाय है। वह एकाग्र रखता है आपको, लेकिन जब और कोई चारा नहीं रहे, तब। बाकी अपने आप ही निरंतर ही लक्ष्य में रहे, वह आत्मा। बाकी सब तो मिलावटवाला आत्मा है।

'एक' के बिना शून्य की स्थिति बेकार

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान का अर्थ खुद को जानना, वही है न?

दादाश्री : हाँ, खुद को जानना, वही है। बस और कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : अब यदि एक वस्तु को जानना हो, तब तो उसके अंदर 'डीप' में उतरना चाहिए। इसी तरह आत्मा को जानना हो तो खुद के अंदर 'डीप' में उतरना चाहिए न?

दादाश्री : अपनी तरह से सब उतरते ही हैं न! इसी तरह जो वेदांत बनानेवाले थे, वे सभी उतरे। अंत में चार वेद बनाए, फिर कहा कि, 'दिस इज़ नॉट देट, दिस इज़ नॉट देट।' वेद से आत्मा जाना जा सके, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा जाना जा सके, ऐसा नहीं है, तो वह कैसा है?

दादाश्री : जाना जा सके, ऐसा भी नहीं है और बोला जा सके, ऐसा भी नहीं है। बोलना भी जोखिम है। इसके लिए चार वेदों ने भी मना किया है। वाणी से वर्णन किया जा सके, ऐसा नहीं है, वक्तव्य हो सके, आत्मा ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मानुभव किस तरह से होगा?

दादाश्री : अभी आपको किसका अनुभव है?

प्रश्नकर्ता : अभी शून्यावस्था करने का प्रयत्न करता हूँ।

दादाश्री : शून्य मतलब?

प्रश्नकर्ता : संकल्प–विकल्प नहीं आएँ, वही शून्य है।

दादाश्री : आमने–सामने इन्जन को दौड़ाएँ, एक इस दिशा से आए और एक इस दिशा से आए और दोनों फुल स्पीड में हों तो क्या दशा होगी?

प्रश्नकर्ता : ज़ोर से 'एक्सीडेन्ट' हो जाएगा।

दादाश्री : ऐसे टकराएँगे कि इन्जन भी ऐसे खड़े हो जाएँगे! उसी तरह अपने लोग आत्मा का ध्यान और यह सब जो करते रहते हैं न, शून्य की अवस्था, यह उसीके जैसा है। और यह तो, शून्य क्या है उसे समझे

बिना लोग शून्य करने में लग गए हैं। एक की संख्या के बिना सभी शून्य बेकार हैं। एक के बिना सभी शून्य बेकार हैं। एक होगा, तभी शून्य काम का है। आप शून्य अवस्था किस तरह से करते हो फिर?

प्रश्नकर्ता : हम शांति से बैठते हैं, फिर जो संकल्प-विकल्प आ रहे हों, उन्हें बंद करने का प्रयत्न करते हैं।

दादाश्री : फिर भी संकल्प-विकल्प होते रहते हैं न? हाँ, लेकिन अपनी इच्छा नहीं है, फिर भी कौन करता है ऐसा? अंदर कुछ घोटाले करने वाला घुस गया है न?

प्रश्नकर्ता : वह तो प्रकृति है।

दादाश्री : आप प्रकृति में हो या पुरुष में हो, वह बताओ।

प्रश्नकर्ता : पुरुष में।

दादाश्री : आपको 'पुरुष' किसने बनाया?

प्रश्नकर्ता : इसका हमें ज्ञान नहीं है।

दादाश्री : आपको कोई कहे कि 'इस चंदूभाई ने बिगाड़ा है', तो असर हो जाता है क्या?

प्रश्नकर्ता : अगर हमने बिगाड़ा हो तो फिर हमें क़बूल करना पड़ेगा।

दादाश्री : लेकिन नहीं बिगाड़ा हो और आपसे कोई कहे कि चंदूभाई ने बिगाड़ा तो आप पर असर होगा?

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो बोलते रहते हैं।

दादाश्री : ऐसा क्या? चंदूभाई के नाम का आप पर कोई असर नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : और पाँच हज़ार रुपये की जेब कट जाए तो भी असर नहीं होगा?

प्रश्नकर्ता : होगा, वह तो अपनी आजीविका है।

दादाश्री : अब वहाँ पर शून्य कहाँ चला गया? फिर भी इस तरह से शांति रखते हो, वह अच्छा है, गलत नहीं है। लेकिन वह सारा शून्य का रास्ता नहीं है। शून्य तो, आत्मा को प्राप्त करना चाहिए, आत्मा को जानना चाहिए। आत्मा जानने के बाद शून्य स्थिति आती है।

आत्मा तो, निरीक्षक के भी उस पार

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मसाक्षात्कार के लिए कौन-सा साधन सर्वश्रेष्ठ है?

दादाश्री : उसके लिए अन्य कोई साधन है आपके पास? आप साध्य बनना चाहते हो, लेकिन आपको दूसरा और कौन-सा साधन लगता है?

प्रश्नकर्ता : आधा घंटा आत्मनिरीक्षण करना।

दादाश्री : आत्मा को पहचानकर निरीक्षण करते हो या पहचाने बिना करते हो?

प्रश्नकर्ता : आत्मा को पहचाने तो फिर बाकी क्या रहा?

दादाश्री : तो फिर आत्मनिरीक्षण किसका करते हो?

प्रश्नकर्ता : जो विचार आते हैं, उनका।

दादाश्री : ओहोहो! विचारों का? विचार तो मन में से आते हैं और मन खुद जड़ है, 'कम्प्लीट फिज़िकल' है। यानी कि मन के विचारों का आप 'स्टडी' करते हो। वह जो 'स्टडी' करता है न, वह 'इगोइज़म' करता है। और 'इगोइज़म' के उस पार 'आत्मा' है।

अनुभूति की उल्टी *आँटी*

प्रश्नकर्ता : मुझे आत्मा का जो अनुभव होता है, वह बताता हूँ कि जैसे पानी के फव्वारे उड़ते हों, ऐसे अंदर आनंद-आनंद हो जाता है।

दादाश्री : हाँ, आत्मा की बात याद करते ही किसीको पानी के फव्वारे जैसा उड़ता है, किसीको रौशनी दिखती है, और भी कुछ होता है।

प्रश्नकर्ता : फुंवारे उड़ने की बात नहीं है, लेकिन यह तो हमें अंदर आनंद-आनंद रहा करता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह तो एक प्रकार की ऐसी सब कल्पनाएँ होती रहती हैं अंदर। लेकिन अगर उस तरफ़ का विचार करें तो भी इतना अधिक आनंद होता है, तो उस तरफ़, वहाँ पर पहुँच जाएँगे तो कितना आनंद होगा?

एक व्यक्ति किसी सरल, स्वच्छ हृदय के संत के पास गए थे। फिर आकर मुझसे कहने लगे कि, 'मुझे तो अनुभव हुआ है।' मैंने कहा, 'किस चीज़ का अनुभव हुआ है।' तब कहने लगे, 'आत्मा की अनुभूति हुई है।' मैंने कहा, आत्मा की परछाई तक नहीं देखी किसीने। भले ही आत्मा तक नहीं पहुँचे लेकिन आत्मा की परछाई, जिस तरह किसी मनुष्य के पीछे उसकी परछाई पड़ती है न, और परछाई पर हम पैर रखें, उसी प्रकार से यदि आत्मा की परछाई में भी पहुँच जाएँ तो समकित हो जाएगा। यानी कि ये तो आत्मा की परछाई तक भी नहीं पहुँचे हैं।

अपने हिन्दुस्तान के कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि अनुभूति हुई है। अब अनुभूति हो चुकी हो तब तो भगवान ही हो गया, वह कृष्ण भगवान ही कहलाएगा और इस तरह से जो अनुभूति कहते आए हैं, उसमें सब अंधाधुंध बात ही है और कुछ मिला नहीं।

मैंने उनसे कहा कि, 'आप अनुभूति किसे कहते हो?' तब बोले, 'मुझे वह मालूम नहीं है। लेकिन मुझे इतना लगता है कि यह जो आनंद होता है, उस घड़ी आत्मा का ही आनंद होता है।' तब मैंने कहा, 'नहीं है वह आत्मा का आनंद, आत्मा तो प्राप्त किया ही नहीं। आत्मा को सुना ही नहीं, अरे! परछाई भी नहीं देखी है। यह तो सब मन का आनंद है। संयोग मिल जाएँ, तब मन का आनंद उत्पन्न होता है।' तब उन्होंने कहा, 'जब आनंद होता है, तब हम तो ऐसा समझते हैं कि आत्मा का आनंद

निकला।' 'अरे, नहीं है यह आत्मा का आनंद। यह तो मन का आनंद है। आत्मा का आनंद, तो एक बार होने के बाद वह आनंद फिर कभी जाता नहीं।' तब कहने लगे, 'अब यह बात सच लगती है। लेकिन हमारे सभी गुरु तो ऐसा कहते थे कि यह आत्मा का ही आनंद है। यही अनुभूति है।' मैंने कहा, 'नहीं, ऐसी अनुभूति के कारण तो दो पैरों में से चार पैर हो जाएँगे!' इन लोगों ने बेचारों को ऐसा उल्टा सिखाया है। मानसिक अज्ञान के आनंद को भोगना, वही अधोगति का कारण है। खरा तो ज्ञान का ही आनंद भोगने जैसा है।

अतः अज्ञान से मानसिक आनंद को भोगना, वही अधोगति का कारण है। जगत् के लोग निरंतर इस मानसिक आनंद में ही रहते हैं। थोड़ी *उपाधि* होती है, लेकिन वापस मानसिक आनंद का रास्ता ढूँढ निकाला कि चला फिर।

माना हुआ नहीं, जाना हुआ होना चाहिए

संसार रोग कम हुआ या नहीं इतना ही देखना है। यदि कभी डॉक्टर के पास जाने से रोग कम नहीं हुआ, तो अपनी भूल हो रही है।

प्रश्नकर्ता : कम हुआ है।

दादाश्री : क्या कम हुआ है?

प्रश्नकर्ता : मन से कम हुआ यानी सबकुछ कम हुआ। मन से हर एक चीज़ का त्याग हो गया, यानी सबकुछ हो गया।

दादाश्री : हाँ, लेकिन ग्रहण क्या हुआ? त्याग हो गया तो खाली हो गए। अपने पास रहा नहीं न कुछ भी? उससे फिर गरीब होने के बाद फिर गरीबी आ जाती है।

प्रश्नकर्ता : संसार के बारे में पूछ रहे हैं न? संसार के लिए तो त्याग की ही ज़रूरत है, जो वस्तु ग्रहण करनी होती है वह तो हम ग्रहण करते ही है।

दादाश्री : ग्रहण करना ही मुश्किल है। बाकी, त्याग तो सभी तरह का हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : त्याग भी नहीं हो सकता। त्याग किस तरह से हो सकेगा? ऊपर का त्याग अलग है, अंतर का त्याग अलग है। त्याग तो अंतर से होना चाहिए न?

दादाश्री : अंतर से त्याग होना चाहिए, तब वह हो सकेगा। वैसा करनेवाले तो बहुत लोग हैं। ग्रहण क्या किया, वह देखना है। त्याग हो जाए न, तो उस जगह में वेक्युम रहता है, तो वहाँ पर रखें क्या?

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर एक ही 'सर्व खल्विदम् ब्रह्म।' और क्या हो सकता है?

दादाश्री : लेकिन ब्रह्म यानी क्या?

प्रश्नकर्ता : ब्रह्म अर्थात् आत्मा।

दादाश्री : ब्रह्म किस तरह से हो पाएगा? ब्रह्म प्रकट नहीं होगा न! क्योंकि ब्रह्म तो कब प्रकट होगा? क्रोध-मान-माया-लोभ और ममता जाएँगे तब ब्रह्म प्रकट होगा, वर्ना तब तक प्रकट ही नहीं होगा न! तब तक देहाध्यास छूटेगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : अब मुझमें क्या खामी है, वह आप देख सकते हैं, मैं कैसे कह सकता हूँ?

दादाश्री : नहीं, हम खामी क्यों देखें? खामी तो आपको खुद की ही दिखनी चाहिए कि अभी तक मुझमें कुछ लोभ है या मुझमें क्रोध है, ऐसा आपको खुद को ही दिखना चाहिए। आपमें क्रोध-मान-माया-लोभ कुछ है ही नहीं न? अभी कोई छेड़े तो?

ऐसा है, कोई व्यक्ति 'उधना' स्टेशन पर बैठा रहे और कहे कि मुझे इस वेस्टर्न रेल्वे के आखिरी स्टेशन तक जाना था, वहाँ मैं पहुँच चुका हूँ। तो मैं कहूँगा कि, 'भाई, यहाँ पर मत बैठे रहना। अभी तो बहुत आगे जाना

है।' और मैं कहूँगा कि 'गाड़ी में बैठ जा, चुपचाप।' यानी मेरा धंधा क्या है? कि जो इधर-उधर बैठे हुए हैं, उन्हें वहाँ से उठाकर गाड़ी में बैठा देता हूँ। यह मेरा धंधा है। मन में सब मान बैठें, तो उससे कुछ होगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : मुझे अब निवृत्ति में जाने का विचार है, तो उस मार्ग पर मुझे स्थिर कीजिए। इसके अलावा मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

दादाश्री : ठीक है। वह तो कर दूँगा। आपकी बात सच है। संसार रोग जाए, तभी काम का है न! ऐसा है न, यह संसार रोग जाए, ऐसा नहीं है! यह संसार रोग ऐसी चीज़ नहीं है कि चला जाए। इस तरफ़ का रोग कम हो तो दूसरी तरफ़ का रोग हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह तो ज़िन्दगी में ऐसा सब चलता ही रहेगा।

दादाश्री : हाँ, चलता ही रहेगा, वही कह रहा हूँ न! यानी यह तो नाम छूटता नहीं, ममता छूटती नहीं। वहाँ पर रखा हो न, तो उसे याद आता रहता है। याद रहता है, इसका क्या कारण है? वहाँ पर तार जोइन्ट किया है, तार जोड़ा है? लेकिन नहीं। बिना तार के याद रहता है, लक्ष्य में रहा करता है। फ़लानी जगह पर यह रखा है, फ़लानी जगह पर यह रखा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन रखे तो याद करेगा न? अगर रखे ही नहीं, तो फिर याद क्या करेगा?

दादाश्री : नहीं, मैं आपसे ऐसा नहीं कह रहा हूँ। यह तो सब साहजिक बात कर रहा हूँ। किसी एक व्यक्ति से हम नहीं कह सकते, लेकिन (आपको) यह सारी जाँच करनी पड़ेगी क्योंकि अगर 'उधना' स्टेशन पर बैठे रहें और मान लें कि वेस्टर्न रेल्वे का आखिरी स्टेशन आ गया और पूरा हो गया, ऐसा मानें तो क्या दिन बदलेंगे?

प्रश्नकर्ता : लेकिन कहाँ जाना है ऐसा नक्की होना चाहिए न?

दादाश्री : वह तो सभी लोग जानते हैं कि हमें मुक्ति चाहिए, हमें मोक्ष चाहिए। इसे शब्दों से जानते हैं। लोग जानते हैं कि हमें आत्मा बन जाना है। लेकिन वे कहाँ पर बैठे हैं, उसकी उन्हें ख़बर नहीं होती न!

यह ख़बर होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए? कहाँ पर बैठे है, यह ख़बर नहीं होती न? तो फिर मुझे साफ़-साफ़ कह देना चाहिए न! जब तक मैं साफ़-साफ़ नहीं कहूँगा, तब तक वह अपना माल-सामान फेंकेगा नहीं।

अत: इसका हल लाना चाहिए। मनुष्य खुद अपनी तरह से जान नहीं सकता कि मैं कौन-से स्टेशन पर हूँ। वह तो जब 'ज्ञानीपुरुष' बताएँ कि, 'भाई, अभी तो बहुत स्टेशन बाकी हैं। यों ही मत बैठा रह। चल, बैठ जा, किसी गाड़ी में।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यहाँ तो ऐसा होता है कि कई कहते हैं कि इस गाड़ी में बैठ जा तो उसमें बैठ जाता है और फिर उतर जाता है। यही मुश्किल होती है।

दादाश्री : यही धंधा लगा रखा है, बैठता है और उतरता है, बैठता है और उतरता है।

ज्ञानी के बिना कोटि उपाय भी व्यर्थ

संसार रोग मिटाने के लिए पूरा जगत् क्या करता है कि पेड़ के पत्ते निकाल देता है या डाली काट देता है। और मन में ऐसा मानता है कि अब पेड़ सूख जाएगा। लेकिन वह दो महीने बाद वापस उग निकलता है, तब वापस पछतावा होता रहता है। कुछ लोग पेड़ के पत्ते काटते हैं, कुछ लोग इतनी बड़ी-बड़ी डालियाँ काटते हैं, वे भी फँसते हैं। कुछ नहीं चलता। फिर से फूट निकलते हैं। कुछ लोग बड़े-बड़े तने काटते हैं, वे भी फँसे हैं और कुछ लोग मुख्य तना काट देते हैं, फिर भी पेड़ वापस उग जाता है। यानी कि इस संसार रोग का उपाय तो बहुत लोग कर-करके थक गए हैं। इसलिए भगवान ने कहा है न, 'पूरी दुनिया में कभी-कभी ही एकाध ऐसे ज्ञानी प्रकट होते हैं, वे रोज़ नहीं, सौ-सौ वर्षों में भी नहीं, कभी-कभी एकाध अवतरित होते हैं, तब अपना काम हो जाता है', वर्ना यहाँ पर तो सभी दुकानदार ऐसा ही कहते हैं न कि हमारी दुकान अच्छी है। हमारी दुकान में, सबसे अच्छा, उत्तम माल हमारी दुकान में ही है। और लोग बेचारे भोले हैं न, भोले और लालची, इसलिए फिर फँसते

हैं। नहीं तो अगर अंदर लालच नहीं हो तो सच्ची चीज़ को ढूँढ निकालेंगे। जिसे मान-तान का, किसी भी तरह का लालच नहीं है, सिर्फ आत्मा को जानने का ही लालच है, उसके अलावा अन्य और कोई लालच नहीं है, वे ढूँढ निकालते हैं।

एक ही दिन यदि इस जगत् के लोग मन-वचन-काया से शांत रहें, खुद अहंकार करके क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं करें, तब भी उनका ज्ञान कितना अधिक बढ़ जाएगा। क्योंकि उन्हें कषायरहिततावाले एक दिन का अनुभव हो जाता है। इन सभी मनुष्यों को तो घंटेभर के लिए भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ है। अनुभव किसलिए नहीं होता? क्योंकि उनका चित्त तो क्रोध-मान-माया-लोभ में ही पड़ा रहता है। फिर अनुभव हो पाएगा क्या? अनुभव हो, उसके लिए तो 'चेतन' को जानना पड़ेगा।

जगत् में चेतन कब जाना जा सकता है?

प्रश्नकर्ता : चेतन का आप क्या अर्थ करते हैं?

दादाश्री : भगवान। और भगवान, वही चेतन है। इसका अर्थ एक ही होगा न! दो अर्थ नहीं होगें कभी भी। फिर अन्य किसी प्रकार का उल्टा अर्थ समझे तो वह अलग बात है। बाकी सच का तो एक ही अर्थ है न! फिर पीतल को सोना मान बैठे, तो वह चलेगा ही नहीं। बाज़ार में बेचने जाएगा तो पता चल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : चेतन को किस तरह से देखें? चेतन को देखने का क्या साधन है?

दादाश्री : उस दृष्टि की ज़रूरत है, उस ज्ञान की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : वह कहाँ से मिलेगा?

दादाश्री : वह तो, जो मोक्ष का दान देने आए हों, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' हों, तब वहाँ से वह दृष्टि मिलेगी, वह ज्ञान मिल जाएगा। और वे शायद ही कभी, हज़ारों वर्षों में कभी आते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो अन्य सबको जो अनुभूति होती है, वह सच्ची है या गलत?

दादाश्री : अनुभूति? वह अनुभूति पीतल को सोना माने, ऐसी है। और उससे दिन बदलेंगे नहीं। लाख जन्म निकल जाएँ, फिर भी कुछ होगा नहीं?

प्रश्नकर्ता : ऐसी अनुभूतिवाला कोई भी व्यक्ति अभी इस दुनिया में नहीं होगा?

दादाश्री : ऐसा व्यक्ति होता ही नहीं है। जिसे अनुभूति हुई न, वह परमात्मा हो गया। वैसे परमात्मा हैं यहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : शायद अगर हों, तो भी हम पहचान नहीं सकेंगे न?

दादाश्री : नहीं, तुरन्त ही पता चल जाएगा। अगर कभी दो अक्षर भी बोलें न तो पता चल जाएगा और पाँच शिष्यों को भी शांति दी होगी, उनमें मतभेद खत्म हो चुके होंगे।

ऐसा है, आत्मा जल्दी जाना जा सके ऐसा नहीं है। चेतन को जानने के लिए मनुष्य के पास ऐसा कोई भी साधन नहीं है कि चेतन को जान सके वह।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसे जानने के लिए प्रयत्न नहीं करने चाहिए?

दादाश्री : जो प्रयत्न करते हैं, उनके खुद के हाथ में कोई भी सत्ता नहीं है। यह तो आपको ऐसा लगता है कि, यह सब मैं ही चलाता हूँ और मैं ही सोता हूँ, मैं ही उठता हूँ, मैंने प्रयत्न किया, ऐसा जो लगता है न, वह सब परसत्ता है। और उसे आप खुद की सत्ता मानते हो।

'चेतन' तो दिव्यचक्षु के बिना जाना ही नहीं जा सकता और दिव्यचक्षु 'ज्ञानीपुरुष' की कृपा से प्राप्त होते हैं।

ऐसा है, अभी आपकी मिथ्यदृष्टि है। मिथ्यादर्शन अर्थात् जो नाशवंत चीज़ों को ही दिखाए, अविनाशी को नहीं दिखाए। इसलिए फिर आप चेतन देख ही नहीं सकते न! ऐसा समझ में आया आपको?

प्रश्नकर्ता : आत्मानुभव का मतलब ही सम्यक्‌दर्शन है न?

दादाश्री : कषाय उपशम हो जाते हैं। बिल्कुल कषाय न रहें, और अड़तालीस मिनट तक आनंद दिखे, उसे सम्यक्‌दर्शन कहते हैं। कषाय उपशम हो जाते हैं, वह भी अड़तालीस ही मिनट, उनपचास मिनट नहीं।

प्रश्नकर्ता : कषायों का उपशम होना, वह किस पर आधारित है?

दादाश्री : आस-पास के संयोगों पर आधारित है। और इसका एक ही कारण होगा, ऐसा नहीं है। किसी भी कारण से, कुछ देखने से भी उसके कषाय उपशम हो सकते हैं।

देहाध्यास छूटने पर आत्मानुभव

प्रश्नकर्ता : आत्मदर्शन हो गया, ऐसा किस तरह पता चलेगा?

दादाश्री : यह देहाध्यास है, ऐसा पता चलता है या नहीं पता चलता आपको? 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा पता नहीं चला? 'इस स्त्री का पति हूँ' ऐसा पता नहीं चलता? अपने बेटे को देखो तो आपको तुरन्त ही ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि 'मैं इसका बाप हूँ' या भूल जाते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : देहाध्यास है, इसलिए यह सब हाज़िर हो जाता है। तो आत्मदर्शन हो जाए तब अन्य सब हाज़िर हो जाता है। अज्ञान में ऐसा सब हाज़िर रहता है और ज्ञान में वैसा सब हाज़िर हो जाता है।

जिसका देहाध्यास छूट चुका हो, वहाँ पर आत्मा की अनुभूति होती है। हिन्दुस्तान में दीया लेकर ढूँढोगे तो भी जिसका देहाध्यास छूट चुका हो ऐसा मनुष्य नहीं मिलेगा। दीया लेकर ढूँढते रहोगे, गुफाओं में ढूँढोगे तो भी नहीं मिलेगा। गुफाओं में ऐसा तो हो ही नहीं सकता। गुफाओं में तो तप करते रहते हैं। गुफाओं में कभी भी ज्ञान नहीं होता।

अर्थात् जब उसका देहाध्यास जा चुका हो, तभी हमें समझना चाहिए कि यह अनुभूति है, नहीं तो वह अनुभूति नहीं कहलाएगी। अब जिसका देहाध्यास चला गया हो, उसका और क्या-क्या जा चुका होता है? अहंकार और ममता दोनों जा चुके होते हैं। वह भी कुछ अंशों तक जाते हैं, सर्वांश नहीं जाते। शायद कभी जिसका अहंकार कम हो गया हो ऐसा व्यक्ति दिख जाएगा, लेकिन ममता किसीकी भी कम नहीं हुई है।

और जब भोजन आया हो न, वहाँ पर अगर आप देखो तो वे देहाध्यासवाले लोग, वे महाराज हों या कोई भी हो, वह खुद की थाली का ही रक्षण करता है। 'दूसरों को दे दें' ऐसा कुछ भी नहीं, इसे 'देहाध्यास छूट गया है' ऐसा कैसे कहेंगे? अब इस देहाध्यास के पार किस तरह से निकल पाएगा वह?

ओहोहो! आत्मज्ञान की अद्‌भुतता कैसी

प्रश्नकर्ता : जब आत्मज्ञान होता है, तब शरीर में क्या परिवर्तन हो जाता है जिससे हमें समझ में आए कि आत्मज्ञान हुआ है?

दादाश्री : आत्मज्ञान होने के बाद में कोई हमें गालियाँ दे न, फिर भी वे अंदर नहीं पहुँचती और मन में ऐसा लगता है कि यह निमित्त है बेचारा, इसका क्या दोष है? गाली देनेवाला भी निमित्त लगता है। जेब काटनेवाला भी निमित्त लगता है।

उल्टा बोले, वह अज्ञान कहलाता है और सीधा बोले, वह ज्ञान कहलाता है। आत्मज्ञानी सबकुछ सीधा बोलते हैं। जब कि अज्ञानी तो सबकुछ उल्टा ही बोलते हैं, जेब काटनेवाले को ही पकड़ते हैं और निमित्त को काटने दौड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् 'निराभिमानी बनना और किसीको दोष नहीं देना', तो इसे आत्मज्ञान है, ऐसा समझ सकते हैं क्या?

दादाश्री : हाँ, बस निराभिमानी हो जाए और किसीको दोष नहीं

दे, और सभी के दु:ख खुद ले ले, तब मानो कि छुटकारा हुआ। आत्मज्ञानी को संसार के दु:ख स्पर्श नहीं करते।

आत्मा प्राप्त हो जाने के बाद पाँच डिग्री बुख़ार चढ़ा हो, फिर भी आत्मा जुदा रहता है। बुख़ार चढ़े तो भी आत्मा जुदा रहता है, उसे तो हर वक्त आत्मा का अनुभव रहता है।

एक आदमी को पक्षाघात हो गया था, तब कहने लगा, 'ये लोग मुझसे मिलने आए हैं, लेकिन मैं खुद ही, जिसे पक्षाघात हुआ है उसे देख रहा हूँ न, कि इस पैर में ऐसा हुआ है, इस हाथ में ऐसा हुआ है, यह सब मैं भी इसका देखता रहता हूँ!' अर्थात् खुद भी देखनेवाला और जो लोग आए हैं, वे भी देखनेवाले! ऐसा इस ज्ञान का प्रभाव है। पक्षाघात हो तब भी ऐसा प्रभाव है, और ज्ञान नहीं हो तो 'मुझे पक्षाघात हो गया, मुझे बुख़ार चढ़ा', वह फिर मर जाने की निशानी है।

अब 'मुझे हुआ' कहे, तो 'रिपेयरिंग' कौन करेगा? और 'मैं' इसमें से मुक्त हो जाए तो अपने आप 'रिपेयर' हो जाएगा, ऐसा ही है। कुदरत का नियम ऐसा है कि तुरन्त 'रिपेयर' हो ही जाता है।

अत: आत्मा प्राप्त हो गया कब कहा जा सकता है? उसके आपको लक्षण बताता हूँ कि आत्मा प्राप्त होने के बाद अगर शरीर दु:ख रहा हो, सिर दु:ख रहा हो, फिर भी अंदर समाधि रहती है। बाहर गालियाँ दे रहा हो तो भी समाधि रहती है, दु:ख में भी समाधि रहती है, वह आत्मज्ञान की निशानी है। ऐसा होता नहीं है इस काल में, फिर भी यहाँ पर हो गया है।

आत्मा प्राप्त होने के बाद में अभी जो अनुभव हैं, वे सभी खत्म हो जाएँगे। 'यह मेरा बेटा है और ये मेरे मामा है' ये सब अनुभव खत्म हो जाएँगे। 'यह मैंने किया और यह फ़लाने ने किया', वे सब अनुभव भी खत्म हो जाएँगे। अभी आपको जो भी कुछ अनुभव हो रहे हैं न, वे सब खत्म हो जाएँगे।

खुद को परमात्मपन का अनुभव होता है कि 'मैं परमात्मा हूँ।' वहाँ

पर फिर चिंता और, दु:ख नहीं होते। आपको अभी जो अनुभव हैं, उनमें से एक भी अनुभव वहाँ पर नहीं होता। चिंता नहीं होती, *उपाधि* नहीं होती, व्याधि नहीं होती, आधि नहीं होती, कुछ भी नहीं होता। आपको इसमें समझ में आया न? क्या-क्या नहीं होता? अभी जो है, यह सभी वहाँ पर होने के बावजूद वहाँ पर पीड़ा और *उपाधि* नहीं होते।

वह जाननेवाला, कितना शक्तिवान

दादाश्री : अभी तक आपको देहाध्यास रहता है न?

प्रश्नकर्ता : अभी तो देह के साथ एकात्मता हो गई है।

दादाश्री : हाँ, उसे ही देहाध्यास कहते हैं और देहाध्यास मिटे तो फिर छुटकारा हो गया।

प्रश्नकर्ता : आपने पूछा कि देहाध्यास रहता है? तब इन्होंने ऐसा कहा कि देह के साथ एकात्मता हो गई है। तो यह एकात्मता है ही, वह जाना किस तरह?

दादाश्री : 'मूल आत्मा' जुदा है न, इसीलिए वह जानता है। मूल आत्मा इससे जुदा है। 'आपका' माना हुआ आत्मा, वह 'मिकेनिकल आत्मा' है। इसे कुछ लोगों ने 'व्यवहार आत्मा' कहा है। उसे फिर हमने 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहा है, लेकिन उस आत्मा को 'आप' ऐसा मानते हो कि 'यह मैं हूँ।' वह खाता है, पीता है, सोता है, उसे 'आप' ऐसा मानते हो कि 'मैं सो गया।' और उसे ही आत्मा कहा जाता है, लेकिन वह 'व्यवहार आत्मा' है। 'खरा आत्मा' इस संसार की बातों में पड़ता ही नहीं। 'खरा आत्मा' इस सबको 'जानता' ही रहता है और क्योंकि 'वह' 'जानता' है न, इसलिए 'आपको' अंदर 'पता' चलता है कि 'मुझे देहाध्यास ही रहता है, तन्मयाकार परिणाम ही रहता है।' यानी कि यह जाना किसने? जाननेवाले ने जाना। तन्मयाकार परिणाम भोगनेवाले ने भोगा। तब फिर वह जाननेवाला कितना शक्तिवान होगा! उस जाननेवाले को एक बार पहचान जाए तो पूरा हो गया। एक ही बार पहचान हो जाए कि काम हो गया।

अरूपी को अरूपी का साक्षात्कार

प्रश्नकर्ता : आत्मा अरूपी है, तो उसका साक्षात्कार किस तरह से होता है?

दादाश्री : ऐसा है न, साक्षात्कार करनेवाला भी 'खुद' अरूपी है। वह साक्षात्कार करनेवाला रूपी नहीं है। अर्थात् स्वभाव से स्वभाव मिल जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब साक्षात्कार होता है, तब क्या होता है?

दादाश्री : जागृति एकदम बढ़ जाती है। कृपालुदेव ने क्या कहा है,

'वर्ते निज स्वभावनुं, अनुभव-लक्ष-प्रतीत,
वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित।'

अर्थात् जब साक्षात्कार होता है न, तब वृत्तियाँ फिर वापस लौटने लगती हैं और निज स्वभाव में रहती हैं। यदि वृत्तियाँ बाहर चली जाएँ, फिर भी तुरन्त वापस आ जाती हैं, वर्ना यह तो, वृत्तियों को वापस बुलाना हो तो भी आती नहीं और कुछ तो घर के बाहर ही पड़ी रहती हैं।

अनुभव भिन्न! साक्षात्कार भिन्न

प्रश्नकर्ता : आत्मानुभव और आत्मसाक्षात्कार, ये दो शब्द जो अलग-अलग हैं, इनमें 'डिफरेन्स' क्या है?

दादाश्री : साक्षात्कार तो अलग वस्तु है और अनुभव तो, जब आगे बढ़े, तब अनुभव कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो साक्षात्कार किसे कहते हैं ये लोग?

दादाश्री : 'यह' ज्ञान देते हैं न, उसे साक्षात्कार कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो यह साक्षात्कार, वह प्रतीति से भी नीचा हुआ?

दादाश्री : जब साक्षात्कार होता है, तब 'उसे' प्रतीति बैठती है। नहीं तो 'मैं चंदूभाई हूँ', 'उसकी' यह प्रतीति जाती ही नहीं न!

अनुभवी ही करवाए आत्मानुभव

प्रश्नकर्ता : आत्मा का अनुभव कौन-से *गुंठाणे* (गुणस्थानक) में पहुँचने पर होता है?

दादाश्री : आत्मा का अनुभव चौथे *गुंठाणे* में भी हो सकता है, पाँचवे में हो सकता है और छठे में भी हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : इस काल में आत्मा का अनुभव हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : इस काल में आत्मा का अनुभव हो सकता है और लगभग दस-बारह हज़ार लोगों को हो चुका है यह! 'ये' सब 'यहाँ' बैठे हैं न, इन सभीको आत्मा का अनुभव हैं। 'अनुभवी पुरुष' मिलने चाहिए। तभी आत्मा का अनुभव हो सकता है, नहीं तो नहीं हो सकता। लाख जन्मों तक भी नहीं हो सकता। यह आसान चीज़ नहीं है। यानी कि जब तक अनुभवी पुरुष नहीं मिलते, तब तक काम नहीं हो पाता।

जो टिके नहीं, वह आत्मानुभव नहीं

प्रश्नकर्ता : आत्मा का वह अनुभव कितने समय तक टिकता है?

दादाश्री : हमेशा के लिए टिकता है। एक मिनट, दो मिनट के लिए नहीं। एक मिनट-दो मिनट तो ये सभी चीज़ें हैं ही न, इस दुनिया में। ये खाने-पीने की सब चीज़ें यहाँ पर जीभ पर जितने समय तक रहें, उतने समय तक ही अनुभव टिकता है, फिर चला जाता है। फिर अनुभव रहता है? हम मिठाई खाएँ, तो कितनी देर तक अनुभव टिकता है? और इत्र का फाहा डालें तो? दस-बारह घंटे तक टिकता है और आत्मा तो, एक ही बार अनुभव में आया कि हमेशा के लिए टिकता है। हमेशा के लिए अनुभव रहना चाहिए। नहीं तो इसका अर्थ ही नहीं है न! वह फिर 'मीनिंगलेस' बात है।

अनुभव के बाद में बरते चारित्र

प्रश्नकर्ता : आत्मा बरते और आत्मा अनुभव में आए, इन दोनों में 'डिफरेन्स' क्या है?

दादाश्री : चारित्र में आ जाए, उसे आत्मा वर्तन में आया, ऐसा कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : और अनुभव?

दादाश्री : अनुभव तो, वह तो पहले हो ही चुका होता है न उसे।

प्रश्नकर्ता : अनुभव के बाद में फिर वर्तना में आता है न?

दादाश्री : हाँ। अनुभव पहले हो चुके होते हैं, फिर उसे बरतता है।

शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति 'मैं' को ही

प्रश्नकर्ता : शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने का निर्णय कौन करता है? आत्मा करता है?

दादाश्री : आत्मा खुद शुद्ध ही है। जिसे खुजली चलती है वह खुजलाता है, बाकी कौन खुजली करे? जिसे खुजली चलती है, वह खुजलाता है। तो यह सब अहंकार करता है, 'मैं' करता है। 'शुद्ध स्वरूप करना है', ऐसे सब विचार कौन करता है? अहंकार करता है।

इस भौतिक की तरफ़ का व्यापार कर चुके, थक गए अब। इसलिए इस तरफ़ का व्यापार करना चाहते हैं और ऐसे करते-करते फिर खुद का रिलेटिव अस्तित्व भी खो देंगे। खुद मूल स्वरूपी होकर खड़ा रहेगा।

अज्ञान है, तभी तक अहंकार

प्रश्नकर्ता : आत्मा की तरफ़ का विचार नहीं आए तो आत्मा की तरफ़ ले जानेवाली प्रवृत्तियाँ भी नहीं होतीं न?

दादाश्री : हाँ, नहीं होतीं।

प्रश्नकर्ता : तो शुरूआत में, विचार में, अहंकार भी थोड़ा-बहुत रहेगा ही न, कि 'अब ऐसा करूँ, वैसा करूँ।'

दादाश्री : हाँ, अहंकार तो अंत तक रहेगा ही। जब तक अज्ञान है तब तक अहंकार रहेगा।

सर्व अनुभवों से न्यारा, आत्मानुभव

प्रश्नकर्ता : हम एक तरफ़ ऐसा कहते हैं कि आत्मा के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है और दूसरी तरफ़ हम आत्मानुभव शब्द का प्रयोग करते हैं, इससे द्विधा होती है। यदि आत्मा के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है तो अनुभव नाम की वस्तु भी विचारों का प्रक्षेपण है, मन का प्रक्षेपण है या मात्र दख़ल है, क्या ऐसा है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मानुभव शब्द का उपयोग तो करना पड़ता है न, इसलिए पूछा।

दादाश्री : इस शब्द का उपयोग इसलिए करना पड़ता है कि जब तक 'आत्मा' प्राप्त नहीं हो जाए, तब तक सीढ़ी की ज़रूरत है। 'आप' जिस जगह पर खड़े हो, वहाँ से आपको समझाने के लिए बीच में स्टेपिंग बताने की ज़रूरत है। और आत्मानुभव यानी हम क्या कहना चाहते हैं? अभी 'आपको' देहाध्यास है, तो कैसा अनुभव रहता है? 'यह देह मैं हूँ, यह नाम भी मैं हूँ, यह मन भी मैं हूँ' ऐसा अनुभव बरतता है। और आत्मानुभव यानी क्या कहना चाहते हैं कि उस देहाध्यास के अनुभव की तुलना में यह अनुभव न्यारा ही बरतता है। यानी कि ऐसा अनुभव बरतने के बाद आत्मा प्राप्त हुआ कहलाता है। वर्ना यदि अनुभव ही नहीं बरता होगा तो आत्मा किस तरह से प्राप्त होगा? अत: अनुभव शब्द को बीच में रखना पड़ता है, 'उसे' खुद को समझाने के लिए। क्योंकि सीधा आत्मा नहीं कह सकते। अभी जो अनुभव है, देहाध्यास का, उसके बजाय कुछ नई ही प्रकार के अनुभव होते हों, तब मन में ऐसा होता है कि उस अनुभव की तुलना में यह अलग अनुभव है और यह आत्मानुभव है, ऐसा 'आपको' यक़ीन हो जाए तो प्रतीति बैठती है, नहीं तो प्रतीति भी नहीं बैठती।

प्रश्नकर्ता : हम विचार और *लागणी* अनुभव करते हैं, लेकिन आत्मानुभव इन अन्य सभी अनुभवों के उस पारवाली स्थिति होनी चाहिए न?

दादाश्री : इन दूसरे सभी अनुभवों के उस पारवाली स्थिति ही है। जैसे यह अनुभव इस पार है, तो वह अनुभव उस पार का होता है। अर्थात् आत्मा का एक भी अंश उसमें नहीं होता और उसका एक भी अंश इसमें (आत्मा में) नहीं होता। आत्मा का अनुभव बिल्कुल न्यारा ही रहता है। बिल्कुल जुदा ही, उसमें तो कोई फ़र्क़ नहीं। फिर भी 'पहले अनुभव होना चाहिए।' ऐसा इसीलिए कहा जाता है कि उसे प्रतीति बैठने का कारण मिले और प्रतीति बैठी कि आत्मा जैसी वस्तु है और वह पहले की तुलना में कुछ अलग है। नहीं तो तब तक वस्तु का अस्तित्व भी मान्य नहीं हो पाता। यानी कि अनुभव तो होना ही चाहिए।

बात *गेड़* में आ जाए तब...

मैं जो कहना चाहता हूँ उसकी *गेड़* (अच्छी तरह समझ जाना) बैठना, यानी मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह पूरी तरह समझ में आ जाए। और 'टू द पोइन्ट' पहुँच जाए, उसे मैं *गेड़* पड़ी कहता हूँ। लोग नहीं कहते कि, 'अभी तक *गेड़* नहीं बैठती?'

यानी कि जो 'मैं' समझाना चाहता हूँ, वही 'वस्तु' उसे उसी स्वरूप में समझ में आए, उसे '*गेड़* बैठी' कहते हैं। अब मेरा 'व्यू पोइन्ट' अलग, उसका 'व्यू पोइन्ट' अलग, इसलिए *गेड़* बैठने में देर लगती है। लेकिन *गेड़* बैठनी चाहिए, तब काम होगा!

प्रश्नकर्ता : यानी आप जिन शब्दों का उपयोग करते हैं, वह बात पहुँचनी चाहिए।

दादाश्री : हाँ, बात पहुँचनी चाहिए। इसलिए हम कहते हैं न, कि बात पहुँचती नहीं है 'उसे।' अब यदि 'उसका' 'लेवल' थोड़ा ऊँचा आए, 'मेरा' 'लेवल' थोड़ा नीचा आए, तो 'उसे' बात 'फ़िट' हो जाएगी। नहीं तो 'मैं' ऊँचाई से बात बोलता रहूँ तो भी बरकत नहीं आएगी, इसलिए बात 'फ़िट' करने के लिए 'लेवल' के अनुसार बात करनी पड़ती है।

यानी कि *गेड़* बैठे बगैर तो कोई काम होता ही नहीं। इसमें सभी को *गेड़* ही बैठती है न। *गेड़* बैठी कि फिर शुरू हो गया।

आत्मज्ञान ज्ञानी के पास से...

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान किस तरह से मिलता है?

दादाश्री : आत्मज्ञानी के पास से आत्मज्ञान मिलता है। 'प्रत्यक्ष' ज्ञानी मिल जाएँ, तो आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन सच्चे ज्ञानी को किस तरह से पहचाना जा सकता है?

दादाश्री : यदि उन्हें हम छेड़ें तो अहंकार खड़ा नहीं हो, ममता खड़ी नहीं हो, तो वे सच्चे ज्ञानी हैं।

या फिर 'ज्ञानीपुरुष' से पूछना चाहिए कि 'आपका मोक्ष हो गया है'? आपको उनसे ऐसे पूछना चाहिए। तो पता चल जाएगा आपको। यह सब्ज़ी लेने जाते हैं, तो बासी है दो-तीन दिन की या ताज़ी है, ऐसा यदि आपको पता नहीं चले तो आप उससे पूछते हो कि, 'भाई, यह ताज़ा है या बासी है? यह बता।' इसी तरह से आप 'ज्ञानीपुरुष' से पूछो कि 'आपका अगर मोक्ष हो गया हो तो हम आपके पास बैठें, नहीं तो दूसरी दुकान पर जाएँ यहाँ से। एक दुकान पर बैठे-बैठे पूरी ज़िन्दगी बेकार चली जाएगी, इसके बजाय हम दुकान बदल दें।' पूछने में क्या हर्ज है?

बाकी आसान रास्ता तो यह है कि 'ज्ञानीपुरुष' के सत्संग में जाना। नहीं तो एक बार उनका अपमान कर दें, तो पता चल जाएगा कि यह रुपया कलदार है या खोटा है। इस रुपये को ऐसे बजाएँ, रुपये का अपमान करते हैं न? तो तुरन्त पता चल जाता है न, कि यह काट देने जैसा नहीं है, अलमारी में रख दो? और काट देने जैसा हो तो काट दो।

प्रश्नकर्ता : परखने जाएँ तो कर्म बंधेगा?

दादाश्री : नहीं। उस कसौटी करनेवाले को हम रक्षण देते हैं। नहीं तो परीक्षा किस तरह से करेगा? हमारे पास अगर हमारी कसौटी करनी हो, तो हम रक्षण देंगे। आपको गिरने नहीं देंगे और आपकी कसौटी में आप पास हो जाओगे।

प्रश्नकर्ता : आप रक्षण देते हैं, लेकिन और किसीके पास ऐसी कसौटी करने गए तो?

दादाश्री : और किसी जगह पर ऐसा करना मत और करो तो पास में सौ एक रुपये तैयार रखना। पैर दबाना और कहना, 'साहब, मेरा दिमाग़ घूम गया है।' ऐसा-वैसा करके वापस पलट जाना और सौ रुपये की चीज़ लाकर दे देंगे न, तो साहब खुश हो जाएँगे और पैर दबा देना। क्योंकि अहंकारी को खुश करने में बिल्कुल देर ही नहीं लगती। मीठी-मीठी बातें करो तो भी खुश हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : सामान्य लोगों को ऐसी सब कसौटी किए बगैर किस तरह से पता चल सकता है?

दादाश्री : उनकी वाणी स्याद्वाद होती है, किसी धर्म का किंचित् मात्र अहित नहीं हो, ऐसी होती है, उनकी वाणी किसीको भी दुःखदायी नहीं होती और उनके वाणी, वर्तन, और विनय मनोहर होते हैं, अपने मन का हरण करें, ऐसे होते हैं।

'दिस इज़ द केश बेन्क ऑफ डिवाइन सोल्युशन', कभी भी बिल्कुल भी उधार नहीं, नकद ही है। जो चाहिए वह नकद मिलेगा यहाँ पर!

जो नकद आत्मज्ञान दे दें, तो वे 'प्रत्यक्ष' 'ज्ञानी'! बाकी, जहाँ पर उधार हो वहाँ पर 'प्रत्यक्ष' 'ज्ञानी' हैं ही नहीं। नकद दे देते हैं, 'केश' दे देते हैं। इसलिए फिर परीक्षा करने को रहता ही नहीं है न! जो बैन्क 'केश पेमेन्ट' करता हो, उसकी परीक्षा की ज़रूरत है? जो बैन्क ऐसा कहता हो कि 'छह महीनों के बाद पैसे दिए जाएँगे' तो आपको परीक्षा करनी पड़ती है कि आस-पासवालों को पूछना पड़ता है। बाकी, जहाँ पर नकद ही देते हों, वहाँ पर उसकी परीक्षा क्या करनी?

प्रश्नकर्ता : जीव को ख़याल कैसे आएगा कि यह नकद है या नहीं?

दादाश्री : वह तो तुरन्त ही ख़याल आ जाएगा। नकद का ख़याल

नहीं आए तो अंदर आत्मा है ही नहीं। अगर देह में आत्मा है तो ख़याल आएगा ही। बाकी, यदि खुद को टेढ़ा चलना हो तो चले। उसकी उसे छूट होती ही है न! या फिर 'ज्ञानी' के पास से ज्ञान लेने के बाद में उँड़ेल देना हो तो भी छूट है। उसे कोई मनाही नहीं है! जिसे नकद समझ में आएगा, वह कोई उँड़ेलेगा ही नहीं न!

वस्तु प्राप्ति की प्रतीति...

प्रश्नकर्ता : 'मुझे' वस्तु मिली है या नहीं, उसकी प्रतीति किस तरह से होगी?

दादाश्री : 'आत्मा' की प्रतीति 'आपको' हो ही जाएगी है न! आप 'जो' हो, 'वही' प्रतीति 'आपको' हो जाएगी न। अभी जो भ्रांति है, आपका वह अस्तित्व ही चला जाएगा। 'मै चंदूभाई हूँ' यह तो भ्रांति है। 'आप' वास्तव में जो 'आत्मा' हो, 'आप' 'वही आत्मा' बन जाते हो, इसलिए फिर भ्रांति रहेगी ही नहीं। और इसलिए फिर पूछने को रहा ही नहीं न! 'चंदूभाई' तो चले जाएँगे, 'चंदूभाई' अपने घर चले जाएँगे। ये 'चंदूभाई' शंकावाले हैं और वे खुद ही चले जाते हैं। 'मैं चंदूभाई हूँ', यह 'रोंग बिलीफ़' है।

बँधे, बिलीफ़ द्वारा...

अब करोड़ों जन्म हो जाएँगे, फिर भी 'राइट बिलीफ़' नहीं बैठ सकेगी। जहाँ पर एक भी 'रोंग बिलीफ़' नहीं जाती, वहाँ पर एक भी 'राइट बिलीफ़' बैठेगी ही किस तरह से? अर्थात् एक भी 'रोंग बिलीफ़' हटती नहीं और 'राइट बिलीफ़' बैठती नहीं! पूरी दुनिया में एक भी मनुष्य की एक भी 'रोंग बिलीफ़' हटती नहीं। इतने जन्मों से भगवान महावीर के शास्त्र पढ़ते आ रहे हैं, फिर भी एक भी 'रोंग बिलीफ़' हटती नहीं और दिन बदलते नहीं। शास्त्र पढ़ने से ठंडक रहती है लेकिन बिलीफ़ नहीं बदलती। बिलीफ़ तो, 'ज्ञानीपुरुष', जो कि मोक्षदाता पुरुष हैं, वे ही बदलवा सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्त करना हो तो 'ज्ञानीपुरुष' के पास जाना पड़ेगा?

दादाश्री : और वे 'ज्ञानीपुरुष' मोक्षदाता पुरुष होने चाहिए। मोक्ष का दान कौन दे सकता है? जो खुद निरंतर मोक्ष में रहते हों, वे मोक्ष का दान दे सकते हैं। अगर 'रोंग बिलीफ़' में ही हों, तब फिर भले ही कुछ भी करोगे, शास्त्र पढ़ोगे-करोगे तो भी 'रोंग बिलीफ़' ही मज़बूत होती रहेगी, 'रोंग बिलीफ़' को ही पोषण मिलता रहेगा।

और इस संसार में जन्म से ही लोग 'उसे' अज्ञान का प्रदान करते हैं कि 'यह बच्चा है, बच्चे ये तेरे पापा हैं, ये तेरी मम्मी' ऐसा करके अज्ञान का प्रदान किया जाता है, फिर 'उसे' पूरी 'रोंग बिलीफ़' बैठ जाती है। वह बिलीफ़ कोई फ्रेक्चर नहीं कर सकता। बाकी, यों ही अगर कहें कि 'आप शुद्ध हो', ऐसा कैसे चलेगा? 'आपकी' समझ में *गेड़* बैठनी चाहिए, तभी यह 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर होगी। नहीं तो 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर होगी नहीं, और तब तक 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह कोई एक्सेप्ट करेगा ही नहीं। अभी तक पूरी ज़िन्दगी 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा कर-करके एक-एक परमाणु में यह घुस गया है। अब इसे निकालना, इस 'रोंग बिलीफ़' को फ्रेक्चर करना, वह तो 'ज्ञानीपुरुष' ही कर सकते हैं।

अंत में आत्मरूप होने पर ही मुक्ति

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी कहा जाता है कि एक मिनट आत्मा का विचार करे तो भी वह संसार से मुक्त हो जाएगा?

दादाश्री : वह आत्मरूप हो जाए तो संसार से मुक्त हो जाएगा। बाकी, जहाँ आत्मा संबंधी विचार करे, वहाँ पर आत्मा है ही नहीं। ऐसे जो विचार करता है न, वे तो आत्मा में जाने के रास्ते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मरूप होने की दशा उत्पन्न हो जाए तो संसार का भ्रम टूट जाता है क्या?

दादाश्री : भ्रम धीरे-धीरे छूटता है। लेकिन जो उसका पुराना हिसाब है न, इसलिए भ्रम हुए बगैर रहेगा नहीं न! वह तो जब नया *संवर*पूर्वकवाला हो जाएगा तो काम का। अत: एक मिनट के लिए भी आत्मा हो गया तो फिर वह हमेशा के लिए रहेगा ही।

प्रश्नकर्ता : एक मिनट तो क्या, अड़तालीस सेकन्ड भी नहीं रहता।

दादाश्री : नहीं रहता, तो ऐसा नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : अड़तालीस सेकन्ड से पहले तो भाग जाता है।

दादाश्री : लेकिन जो भाग जाता है वह आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो उसे कहते हैं कि जो भाग नहीं जाए। 'आत्मा' उसी रूप में है, जब देखो तब उसी रूप में है, अतः आत्मा अलग लगना चाहिए और यह दूसरा सब जो है, वह सब अलग लगना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसे समझते हैं, ऐसा अनुभव में भी आता है। फिर भी इतना मज़बूत मायावी जाल उत्पन्न हो जाता है उस समय, कि उस ओर खींच ले जाता है।

दादाश्री : वस्तुस्थिति में ऐसा है न कि 'हमें' कोई कुछ खेंचकर ले जाए, ऐसा नहीं है। 'आत्मा' प्राप्त हुआ हो, ऐसा अभी तक 'एक्ज़ेक्टनेस' में आया नहीं है। अगर 'एक्ज़ेक्टनेस' में आए तो कोई कुछ नाम दे ऐसा नहीं है। क्योंकि फिर तो डिस्चार्ज कर्म बाकी रहते हैं, इसलिए *भोगवटा* (सुख-दुःख का असर) ही रहता है सिर्फ, नये कर्म बँधते ही नहीं है। अगर आत्मा प्राप्त हुआ है तो *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) रहता है और जहाँ *संवर* है वहाँ पर बंध नहीं पड़ता। *आश्रव* (उदयकर्म में तन्मयाकार होना) और *निर्जरा* (कर्म का अस्त होना) तो अज्ञानी और ज्ञानी, दोनों को होते ही है, लेकिन उसमें अज्ञानी को बंध पड़ता है और ज्ञानी को ज्ञान के प्रताप से *संवर* रहता है, इतना ही फ़र्क़ है।

प्रश्नकर्ता : *आश्रव, निर्जरा* और *संवर,* इन तीनों भूमिकाओं में एकदम से आगे-पीछे हो जाते हैं, इसे कर्मों का प्रभाव कहेंगे?

दादाश्री : कर्मों का प्रभाव तो बहुत भारी होता है। फिर भी कर्म न्यूट्रल है, यानी कि नपुसंक है। अतः वे कुछ नहीं कर सकते। जब तक 'अपना' आधार नहीं होगा, तब तक वे कुछ भी नहीं कर सकते।

'हम' आधार दें, उसके बाद ही वे कुछ कर सकते हैं, वर्ना खत्म हो जाते हैं। निराधार होने के बाद वे 'हमें' कुछ भी नहीं कर सकते। लेकिन जब 'हम' आधार देते हैं कि 'मैंने यह किया', तभी से वे हमें हिला देते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह जो आधार दिया जाता है, वह पूर्वकर्म है क्या?

दादाश्री : उसे अज्ञानता कहते हैं। कर्मों की तो *निर्जरा* होती रहती है, लेकिन 'हम' आधार देते हैं कि 'मैं करता हूँ।' जो कर्म उदय में आए हैं, वे अपना रोल अदा करेंगे ही, लेकिन उसमें 'हम' कहते हैं कि 'मैंने' किया है।

प्रश्नकर्ता : तो जो कर्म निष्कामभाव से भोगने चाहिए, वे हम भोगते नहीं और वृत्तियाँ उनमें चली जाती हैं, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : वह तो, ज्ञान के बिना कर्ताभाव छूटना मुश्किल है। ज्ञान हो तो कर्ताभाव नहीं रहता। कर्ताभाव नहीं रहता, इसलिए *संवर* रहता है और जहाँ पर *संवर* है, वहाँ पर समाधि रहती है।

प्रश्नकर्ता : *संवर* की भूमिका तक तो पहुँचा जा सकता है, लेकिन स्थिर नहीं रहा जा सकता।

दादाश्री : नहीं, यदि *संवर* होगा तो समाधि रहेगी ही। समाधि रहे तो समझना कि उसे *संवर* है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन किन्हीं कारणों से कर्मबंध हो जाए तो, उस समय क्या करना चाहिए?

दादाश्री : कुछ करना तो है ही नहीं। आत्मा हो जाने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : इसके लिए मानसिक रूप से तो सोचना पड़ेगा न, कि इसका उपाय क्या हो सकता है?

दादाश्री : एक बार आत्मा हो गए न, फिर कुछ सोचना नहीं है। सोचने की भूमिका तो कब तक है? कि 'यह आत्मा है या यह आत्मा

है' ऐसी जब तक शंका है, तब तक सोचना है। जब तक आत्मा संबंधी संदेह है तब तक सोचना है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के बारे में, जब तक यह संसार है तब तक तर्क-वितर्क की भूमिका तो रहेगी ही न?

दादाश्री : आत्मा 'ज्ञानीपुरुष' से प्राप्त होना चाहिए और वह 'आत्मा' ज्ञानपूर्वक, उनकी आज्ञापूर्वक रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसी तरह से तो प्रयत्न करते हैं, फिर भी तर्क-वितर्क खड़े होते हैं।

दादाश्री : एक बार यहाँ पर 'ज्ञान' लेना पड़ेगा, फिर आज्ञा में रहना पड़ेगा। और फिर आपको सत्संग में आकर पूछ लेना चाहिए। और यह तो निर्विकल्प ज्ञान है। इस निर्विकल्प ज्ञान में विकल्प क्यों होने चाहिए? संकल्प-विकल्प हों, तब तो अभी तक आत्मा की प्राप्ति हुई ही नहीं है, ऐसा कहा जाएगा। संकल्प-विकल्प करनेवाला हुआ कि निर्विकल्प होगा ही नहीं।

देह छूटे लेकिन बिलीफ़ नहीं छूटती

प्रश्नकर्ता : इस शरीर का त्याग होने पर ये 'रोंग बिलीफ़ें' अपने आप चली जाती हैं न?

दादाश्री : यानी कि मर जाए, तब?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : नहीं, वे 'रोंग बिलीफ़ें' तो फिर से उत्पन्न होती हैं। क्योंकि मरने पर मोक्ष में नहीं जाता। मर गया, इसका मतलब यह कि यहाँ पर इसके पास 'स्टॉक' में जो सामान था, उसे साथ में लेकर जाता है, क्रोध-मान-माया-लोभ सब 'स्टॉक' में हैं, उन सभी को साथ में लेकर जाता है, कुछ भी बाकी नहीं रखता, पूरा कषाय रूकी परिवार ही उसके साथ जाता है और फिर से, जहाँ नया जन्म होता है, वहाँ से फिर से शुरूआत होती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम ऐसा कहते हैं न, कि मरने के बाद सबकुछ छोड़कर जाना है, तो फिर सब 'स्टॉक' में किस तरह रहता है?

दादाश्री : वह तो स्थूल सब छोड़ देना पड़ता है। सूक्ष्म में तो, कषायरूपी परिवार सहित सबकुछ साथ में ही जाएगा। यह स्थूल यानी जो हमें आँखों से दिखे वैसा, आँखों से नहीं दिखे वैसा और माइक्रोस्कोप से भी नहीं दिखे, वैसा भी स्थूल होता है। वह सब यहाँ पर छोड़कर जाना है और सूक्ष्म भाग पूरा साथ में जाएगा, खुद के सभी कर्म बाँधकर वहाँ पर साथ में ले जाते हैं।

बिलीफ़ बदलने से, छूटें कर्म

प्रश्नकर्ता : फिर यह 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर किस तरह से होती हैं?

दादाश्री : वह आपको नहीं करनी है, वह हमें कर देनी है। वह आपसे नहीं होगी। अगर आपसे हो सकती तब तो अनंत जन्मों से आप हो ही न! यानी कि वह डॉक्टर का काम है। आपको तो एक घंटे के लिए डॉक्टर को देह सौंप देनी है कि 'भाई, आपको जो ऑपरेशन करना हो वह कर दो मेरा, और मेरा कुछ निबेड़ा ला दो।' तो काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कर्म हैं और मान्यताएँ हैं, इन दोनों का क्या संबंध है? क्योंकि कोई एक गलत बिलीफ़ टूट गई, उस घड़ी एकदम हल्कापन अनुभव करता है। उस घड़ी कर्म से निवृत्त हुआ कहलाएगा?

दादाश्री : तब तो 'रोंग बिलीफ़' से निवृत्त होता है।

प्रश्नकर्ता : तो उतने कर्म भस्म हो गए या नहीं हुए?

दादाश्री : नहीं, वे कर्म ही बदलते हैं न! बिलीफ़ निवृत्त हो जाए तो कर्म शांत हो जाते हैं, वह शाता वेदनीय में गया।

प्रश्नकर्ता : ये जो कर्म चिपके हैं, वे?

दादाश्री : मान्यता बदली तो जो सभी कर्म चिपके हुए हैं न, वे सब अलग होने लगते हैं। मान्यता बदली तो कर्म सब अलग होते जाते

हैं। वर्ना अगर मान्यता नहीं बदली होती तो कर्म अलग होते ही नहीं। ये सब 'रोंग बिलीफ़ें' ही हैं। खुद परमात्मा है, लेकिन देखो न, यह क्या दशा हुई है!

बिलीफ़ से बिलीफ़ का छेदन

प्रश्नकर्ता : अब ये 'रोंग बिलीफ़' हैं और फिर ये 'राइट बिलीफ़' बैठाते हैं, तो 'राइट बिलीफ़' का भी लाभ मिलेगा न? लेकिन वह भी बिलीफ़ तो है ही न? और जब तक बिलीफ़ है तब तक उसके फल स्वरूप कर्म तो रहेंगे ही न?

दादाश्री : लेकिन 'राइट' में तो बिलीफ़ ही नहीं है। यह तो 'रोंग बिलीफ़' का छेदन करने के लिए 'राइट बिलीफ़' है। नहीं तो 'रोंग बिलीफ़' छेदित होगी ही नहीं न! 'राइट बिलीफ़' से 'रोंग बिलीफ़' का छेदन करे, तब 'राइट बिलीफ़' से अपने आप ही, खुद से ही खुद का छेदन हो जाता है। अत: फिर उसका छेदन करना बाकी नहीं रहता। ऐसे क्रम में यह सब व्यवस्था में है। ऐसा है न, नहीं तो बढ़ते-बढ़ते अंत ही नहीं आएगा इसका। यह सम्यक्‌दर्शन है न, 'राइट बिलीफ़' है न, वह खुद ही विलय हो जाती है। 'राइट बिलीफ़' स्व-सत्ताधारी है और 'रोंग बिलीफ़' परसत्ता है।

निरालंब की दृष्टि से, वस्तुत्व का सिद्धांत

'ज्ञानीपुरुष' तो भान करवाएँगे कि 'संसार' से 'तू' चिपका हुआ है। वर्ना कोई वस्तु 'तुझे' स्पर्श नहीं कर सकती। तब वह कहेगा, 'मुझे कोई ज़रूरत नहीं है?' तब हम कहते हैं, 'नहीं, तुझे कोई ज़रूरत ही नहीं है। तुझे जगत् में अवलंबन की ज़रूरत ही नहीं है।' उसके बाद 'वह' भान में आ जाए न, तब वह कहेगा, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ।' फिर अंदर चिंता-घबराहट कुछ भी नहीं रहती। चिंता-घबराहट, वह सब तो 'परवस्तु' में होता है और 'खुद' सिर पर ले लेता है कि 'मुझे ऐसा हो रहा है।' अरे, यह 'तेरा' नहीं है और यह सब दूसरे के घर में हो रहा है। 'तुझे' कहाँ कुछ हो रहा है? हो रहा है पड़ोसी के घर, वहाँ हमें क्या? और

'आत्मा' को तो कुछ होगा ही नहीं न? लेकिन यह तो अनादि की भ्रांति 'उसे' यह सारी बात भुलवा देती है।

ज्ञानी के प्रयोग से, आत्मा-अनात्मा भिन्न

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं 'आत्मा मुझसे एकदम अलग है', तो वह मुझे अभी तक भी एकदम स्पष्ट नहीं हो पाता।

दादाश्री : अलग करने के बाद में फिर अलग होगा, नहीं तो तन्मयाकार है। 'हम' अलग कर देते हैं, 'हम' प्रयोग करते हैं तब अलग हो जाता है, नहीं तो तब तक नहीं हो सकता। यानी कि आपको ऐसा कहना है कि वास्तव में अलग तो है ही, लेकिन भ्रांति है, तब तक बँधा हुआ ही है। हम यहाँ पर ज्ञान देते हैं, उस दिन आत्मा और अनात्मा दोनों को जुदा कर देते हैं, फिर 'आपको' 'भगवान' का साक्षात्कार जाता ही नहीं और तब आपको आपके दोष दिखने लगते हैं, वर्ना तब तक दोष नहीं दिखते। और दोष दिखने के बाद दोष चले जाते हैं। जैसे-जैसे दोष दिखने लगते हैं, वैसे-वैसे चले जाते हैं सभी।

ज्ञानप्राप्ति, भावना के परिणाम स्वरूप

प्रश्नकर्ता : मेरे नसीब में क्या है? आपने जैसा बताया, वैसा ज्ञान मुझमें कब आएगा? वह अवधि बताइए।

दादाश्री : वह तो आएगा, भावना की है तो आएगा न! पहले भावना होगी न, तभी आएगा, वर्ना भावना ही नहीं की होगी तो किस तरह से आएगा?

प्रश्नकर्ता : मुझे तो ऐसा लगता है कि दिल्ली बहुत दूर है।

दादाश्री : अरे, इस दुनिया में कुछ भी दूर होता ही नहीं। आत्मा ही पास में है, तो दिल्ली क्यों दूर होगी? आत्मा आपके खुद के नज़दीक है। आत्मा जो कि अप्राप्त वस्तु है, वह आपके खुद के पास में है, तो और कौन-सी वस्तु दूर कहलाएगी?

.....तो ज्ञानांतराय टूटेंगे

प्रश्नकर्ता : यहाँ आपके पास बहुत लोग आते हैं, उसमें से किसी-किसीको ज्ञान लेने का मन नहीं होता, वह क्या है? इसका क्या कारण है?

दादाश्री : वे उनके अंतराय कर्म हैं। वे अंतराय जब खत्म हो जाएँगे तब फिर ज्ञान लेने का मन होगा। तो अंतराय खत्म करने के लिए क्या करना चाहिए? कि या तो 'खुद' को तय ही कर लेना चाहिए कि आज अंतराय तोड़ ही डालने हैं, फिर जो होना हो सो हो, लेकिन अंतराय तोड़ ही डालने हैं। या फिर 'ज्ञानी' से कहना चाहिए कि, 'साहब, मेरे अंतराय तोड़ दीजिए', तो 'ज्ञानीपुरुष' उन्हें तोड़ देंगे। बाकी अंतराय कर्म तो, यदि भोजन सामने हो, फिर भी उसे खाने नहीं देते। भोजन तैयार हो, खाने की तैयारी कर रहा होता है, तभी कोई बुलाने आ जाता है कि, 'चलो, जल्दी चलो'। तो तैयार थाली छोड़कर भी जाना पड़े, वही अंतराय कर्म है।

...तब आत्मवर्तना बरतती है

प्रश्नकर्ता : आपके द्वारा आत्मा की अनुभूति किस प्रकार से करवाई जाती है?

दादाश्री : अभी कोई अनुभूति होती है या नहीं होती? यह ठंड लगे तो उसका अनुभव नहीं होता? गरमी लगती है तो उसका अनुभव नहीं होता? कोई गालियाँ देता है तो कड़वा रस उत्पन्न होता है, ऐसा अनुभव नहीं होता? आपको कौन-सा अनुभव चाहिए?

प्रश्नकर्ता : आत्मा का अनुभव।

दादाश्री : आत्मा का अनुभव मतलब क्या? परमानंद स्थिति, आनंद जाए ही नहीं, वही आत्मा का अनुभव है।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह से मिलता है?

दादाश्री : आपको उसका क्या करना है? आपको हमेशा के आनंद की ज़रूरत ही क्या है? और फिर वाइफ की, पैसे की ज़रूरत है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : तो इस देह की ज़रूरत है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : भगवान के अलावा मुझे और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : यह ठीक है, आपका तो शूरवीर जैसा काम है। लेकिन उसके लिए आपको 'भगवान क्या है', वह जानना चाहिए। 'जगत् क्या है, किसने बनाया, भगवान क्या हैं, हम कौन हैं, यह पूरा जगत् किस तरह से उत्पन्न हुआ, अब भगवान का साक्षात्कार हमें किस तरह से प्राप्त होगा', वह सब जानना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : इसका रास्ता क्या है?

दादाश्री : रास्ता तो यहीं पर है, और वर्ल्ड में किसी भी जगह पर इसका रास्ता है ही नहीं। यहीं पर वह सारा रास्ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अनुभव के बगैर बेकार है न?

दादाश्री : हाँ, अनुभव तो होना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह कब होगा?

दादाश्री : भगवान के अलावा, आत्मा के अलावा जब किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं रहेगी, तब अनुभव होगा। फिर उसमें स्त्री, पैसा किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं रहती। और यहाँ पर तो आपको वैसा अनुभव हो जाएगा। कब? इस जन्म में ही, वह भी दो-तीन महीनों में नहीं, एक घंटे में ही हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : फिर निरंतर आत्मा में तन्मयाकार किस तरह से रहेंगे?

दादाश्री : यहाँ पर ज्ञान ले, और फिर 'हमारी' 'आज्ञा' में रहे तो निरंतर 'आत्मा' में रह सकेगा। लेकिन यह जंजाल है न, वह 'उसे' निरंतर 'आत्मा' में नहीं रहने देता। 'आपको' भी जंजाल तो है ही न, फिर? बच्चे

कहेंगे, 'पिताजी फीस लाइए।' अरे भाई, फीस तो घर में है, लेकिन सौ का नोट भुनाने जाना पड़ेगा या नहीं जाना पड़ेगा? शादी नहीं की हो तो नौकरी, धंधा होता है। यानी यह सारा जंजाल हैं और जब तक यह है तब तक निरंतर 'आत्मा' में नहीं रहा जा सकता। लेकिन 'अपने' भाव जब इस जंजाल में से कम होते जाएँगे और सुख 'आत्मा' में ही है, ऐसा समझ में आ जाएगा, तब यह जंजाल कम होता जाएगा, उसके बाद फिर 'आत्मा' में रहा जा सकेगा।

शुद्धात्मा शब्द की समझ

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि, आत्मा सच्चिदानंद घन है। यह कल्पना है या सच है?

दादाश्री : क्यों? सच है। आत्मा सच्चिदानंद घन है, यह सच्ची बात है। इसमें कल्पना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लोग इसे कल्पना भी कहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : कल्पना करनेवाले को 'सच्चिदानंद क्या है', इसका भान नहीं है। अगर भान हो जाए न तो खुद को हमेशा के लिए शाश्वत आनंद हो जाएगा। सनातन सुख प्राप्त हो जाए, तब सच्चिदानंद स्वरूप हुआ जाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा सच्चिदानंद घन है, तो 'शुद्धात्मा' क्यों कहा है?

दादाश्री : आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप ही है। लेकिन इन लोगों को सच्चिदानंद शब्द क्यों नहीं दिया? क्योंकि 'सच्चिदानंद', वह गुणवाचक शब्द होने से इन लोगों को समझ में नहीं आएगा, इन्हें शुद्धात्मा की ज़रूरत है, इसलिए इन लोगों को शुद्धात्मा शब्द दिया है। शुद्धात्मा की ज़रूरत क्यों है? ये लोग कहते हैं कि 'मैं पापी हूँ।' तब कहे, ''यदि 'तू' 'विज्ञान' को जान लेगा तो तुझे पाप छू नहीं सकेगा। 'तू' 'शुद्धात्मा' ही है, लेकिन 'तेरी' 'बिलीफ़ रोंग' है।'' जिस प्रकार किसी मनुष्य ने दिन में भूत की बात सुनी हो, और रात को रूम में अकेला सो जाए, तो रात को अगर अंदर

प्याला खड़का कि वहीं पर 'उसमें' 'रोंग बिलीफ़' घुस जाती है कि कोई भूत है। अब जब तक यह 'रोंग बिलीफ़' नहीं निकलती तब तक 'उसकी' दशा ऐसी की ऐसी ही रहती है, घबराहट होती है।

सोहम् से शुद्धात्मा नहीं साधा जा सकता

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोलना और 'सोहम्' बोलना, इसमें क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : सोहम् बोलने का अर्थ ही नहीं है। 'शुद्धात्मा' तो 'आप' हो ही। सोहम् का अर्थ क्या हुआ? कि 'वह मैं हूँ', उसमें अपना क्या कल्याण हुआ? अत: 'मैं शुद्धात्मा हूँ' इसीमें खुद का कल्याण है, इसमें 'यह शुद्धात्मा, वह मैं हूँ।' जब कि सोहम् का मतलब तो 'वह मैं हूँ।' उसका कोई अर्थ नहीं है! सोहम् तो शुद्धात्मा प्राप्त करने का साधन है। जिसे साध्य मिल जाए, उसके साधन छूट जाते हैं।

शुद्ध हो जाने पर शुद्धात्मा बोल सकते हैं

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलने से शुद्धात्मा हुआ जा सकता है?

दादाश्री : ऐसे नहीं हो सकते। ऐसा तो कितने ही लोग बोलते हैं न कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' लेकिन कुछ होता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपके पास से ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ हो, वह यदि किताब में से पढ़कर अथवा तो किसीके कहने से 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोले तो फ़ायदा होगा?

दादाश्री : उससे कुछ नहीं होगा। ऐसे लाख जन्मों तक 'शुद्धात्मा' बोलेगा, तब भी कुछ होगा नहीं।

जैसे कि आपका एक दोस्त हो, वह आपसे बात करते-करते सो जाए, लेकिन आप ऐसा समझो कि वह जग रहा है, तो आप उसे रुपये देने के लिए पूछते हो, फिर से पूछो उससे पहले ही वह कहता है कि, 'मैं तुझे पाँच हज़ार रुपये दूँगा।' तो हम क्या वह सच मान लें? हमें पता

तो लगाना पड़ेगा न कि वह नींद में है या जागते हुए बोल रहा है? अगर नींद में बोल रहा होगा तो हम सारी रात बैठे रहेंगे तो भी कुछ देगा नहीं और अगर जागृत अवस्था में बोल रहा होगा तो हमें देगा। उसी तरह से यह नींद में बोलता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इसलिए कुछ होगा नहीं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भान 'ज्ञानीपुरुष' का दिया हुआ होना चाहिए यानी कि जग रहा हो और बोले तो काम का। इसी तरह मैं आपको जाग्रत करके 'शुद्धात्मा हूँ' बुलवाता हूँ, यों ही नहीं बुलवाता! और एक घंटे में तो पूरा मोक्ष दे देता हूँ। मोक्ष यानी कभी भी चिंता नहीं हो, ऐसा मोक्ष देता हूँ।

प्रकट से प्रकटे, या पुस्तक के दीये से?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लिए बगैर पुस्तक में पढ़कर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोले, तो भी उसका फल मिलेगा न?

दादाश्री : कुछ भी फल नहीं मिलेगा, 'ज्ञान' लिए बगैर कोई 'शुद्धात्मा हूँ' बोले तो काम नहीं आएगा। उसे 'शुद्धात्मा' तो याद ही नहीं आएँगे न!

और किताब में तो ऐसा लिखा हुआ है कि 'आत्मा शुद्ध है और तू शुद्धात्मा है। यह सब तू नहीं है और संसार में शुद्धात्मा के रूप में हम कुछ कर सकें, ऐसे हैं ही नहीं। वह द्रव्य अपना काम करता है, यह द्रव्य अपना काम करता है।' यह सब कहना चाहते हैं। लेकिन लोगों को शुद्धात्मा रहेगा ही किस तरह? यह तो अहंकार और क्रोध-मान-माया-लोभ सबकुछ साथ में है, तो उसे शुद्धात्मा किस तरह से रहेगा? यों पूरे दिन रटकर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलता है, लेकिन उसे शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठता नहीं है न! 'ज्ञानीपुरुष' पाप जला दें, तब शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठता है और वह लक्ष्य हर समय रहता है, नहीं तो लक्ष्य में रहे ही नहीं न! यानी कि पहले पाप धुल जाने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : आपकी पाँच आज्ञाएँ लिखी हुई हों, तो आज से सौ-दो सौ वर्ष बाद भी कोई पाँच आज्ञा पढ़कर बोले, उन पर विचार करे, तो फिर उसे शुद्धात्मा का पद मिलेगा या नहीं?

दादाश्री : नहीं, नहीं। वह तो, कोई ज्ञानी रहेंगे, दो सौ-पाँच सौ वर्ष तक कुछ न कुछ स्फुरित होगा। हर एक में कभी न कभी 'प्रकाश' होता ही रहेगा, तो वैसे कोई होंगे तो सभी के काम आएँगे। बाकी, ऐसे के ऐसे शुद्धात्मा नहीं हुआ जा सकता।

समरण से शुद्धात्मा नहीं है साध्य

एक व्यक्ति ने कहा, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, ऐसा याद करता रहता हूँ।' तब मैंने उसे कहा, 'अरे, याद करता रहता है तो भी शुद्धात्मा प्राप्त नहीं हुआ?' तब कहने लगा, 'नहीं। और दूसरे दिन तो मुझे मन में ऐसा हुआ कि वह कौन-सा शब्द था? कौन-सा शब्द, कौन-सा शब्द, तो चार घंटे तक वह शब्द याद ही नहीं आया।' यानी कि शब्द ही भूल जाता है। उस समरण से (नामस्मरण) कुछ लक्ष्य में नहीं बैठता। ऐसे समरण करने के बजाय 'वाइफ' का समरण करना अच्छा कि पकोड़े, जलेबी बनाकर तो देगी। ऐसे गलत समरण दे-देकर तो, न देवगति में गए, न ही यहाँ पर अच्छा सुख-वैभव मिला, यानी ऐसे भी भटका दिया और वैसे भी भटका दिया। यहाँ पर अगर सुख-वैभव मिला हो तो भी समझें कि ठीक है।

ये तो कहेंगे, 'समरण दे रहे हैं, आप समरण करते रहना।' अरे भाई, अगर वह समरण भूल जाऊँ तब मुझे क्या करना चाहिए? और समरण तो कब रहता है कि जिस पर राग होता है न, तो अपने आप ही उसका समरण रहा करता है। या फिर जिस पर बहुत ही द्वेष हो, जिस पर बहुत चिढ़ हो, वह याद आता रहता है। यानी बहुत राग हो तो वह याद आता रहता है, उसका समरण रहता है।

और समरण का फल संसार, भटकते ही रहना। आपको समझ में आई यह बात? समरण का अर्थ समझ में आया न? यानी कि आत्मा सतत हाज़िर रहकर अपने आप ही वैसा बोलने लगना चाहिए। हम बुलवाएँ और वह बोले, ऐसा नहीं। अपने आप ही होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह 'शुद्धात्मा हूँ' ऐसा अंदर से बोलना शुरू हो जाता है या नहीं?

दादाश्री : हो जाता है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह बोलता होगा या बुलवाता होगा?

दादाश्री : यह बोलते-बुलवाते का सवाल नहीं है इसमें। कोई बुलवाता भी नहीं है और बुलवाए तो वह बुलवानेवाला गुनहगार बन जाएगा।

यानी कि आप जो ढूँढ रहे हो न, वहाँ पर अँधेरा है। आप आगे जो माँग रहे हो, वह सब अँधेरा ही है। उसे बुलवानेवाला कोई है ही नहीं। ये 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' बोल रहे हैं और आप जो कह रहे हो न, वह सब तो घोर अँधेरा है। उस तरफ़ बहुत लोग गए और वे सभी भटक गए।

बाड़ाबंदी तो विभाविकता में

प्रश्नकर्ता : तो शुद्धात्मा का जो ज्ञान आपके पास से लें, तो वह एक मंडल या बाड़ा नहीं कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं, इसमें बाड़ा है ही नहीं न! जहाँ पर विभाविकता होती है, वहाँ पर बाड़ा (संप्रदाय) होता है। स्वाभाविकता होती है वहाँ पर सहजता उत्पन्न होती है, वहाँ पर बाड़ा होता ही नहीं न! क्योंकि वह पेड़-पौधे, गाय-भैंस सभी जीवों में शुद्धात्मा के दर्शन करता है, फिर उसमें जुदाई या बाड़ा रहा ही कहाँ? सभी जगह 'एवरीव्हेर' भगवान दिखते हैं उसे।

रोंग बिलीफ़ मिटने से भगवान में अभेद

प्रश्नकर्ता : अगर शुद्धात्मा ही भगवान है, खुद के अंदर ही है, तो फिर वह दूर कहीं पर होगा ही नहीं न?

दादाश्री : हाँ। बस, अंदर हैं, वही भगवान हैं, और कोई भगवान इस जगत् में है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उस भगवान से खुद को भेद नहीं रहता है न?

दादाश्री : लेकिन अभी तो 'आपको' भेद है। अभेद हो जाएँगे तभी 'भगवान' आपको मिलेंगे, ऐसा है। लेकिन 'आपको' तो 'चंदूभाई' ही रहना है और 'किसी स्त्री का पति बनना है, बेटे का बाप बनना है, किसीका मामा बनना है, किसीका चाचा बनना है।' तो फिर 'भगवान' 'आपको' मिलेंगे ही नहीं न! 'आप' 'भगवान' के हो जाओगे, तो 'वे' 'आपके' साथ अभेद हो जाएँगे। 'आप' 'शुद्धात्मा' हो गए, 'भगवान' के हो गए तो 'आप' अभेद हो जाओगे। यह तो 'आपने' भेद डाला है, 'भगवान' ने भेद नहीं डाला। 'इस स्त्री का पति हूँ' ऐसा कहा, इसलिए भगवान कहते हैं, 'जा, पति बन।' तो इस तरह भगवान के साथ भेद डाला। अब भगवान के साथ एकाकार हो गए कि हो गया सब अभेद। और उस तरह से अभेद होने के लिए यह सारा 'विज्ञान' है। पूरा जगत् भगवान को ढूँढ रहा है और वह अभेद होने के लिए ढूँढ रहा है।

आपका कहना ठीक है कि यह भेद क्यों डल गया? बात तो सच ही है न? भेद तो, ऐसा है न कि भगवान तो खुद अंदर ही हैं, लेकिन एकता क्यों नहीं लगती? भगवान की कभी परवाह ही नहीं की है न! उसे तो 'यह मेरी वाइफ और यह मेरा बेटा, और यह मेरा भाई, यह मेरा मामा', इन सबकी ही पड़ी हुई है। 'भगवान' की 'उसे' पड़ी ही नहीं है। अरे, भगवान की किसीको भी पड़ी नहीं है। भगत को भी भगवान की नहीं पड़ी है। भगत तो मंजीरा और इसी सब धुन में और धुन में, मस्ती में रहे हैं। भगवान की किसीको भी पड़ी ही नहीं है। वे भगवान तो इसे रोज़ कहते हैं कि 'किसीको मेरी पड़ी नहीं है।' कोई चाय की धुन में, कोई गांजे की धुन में, कोई किसीकी धुन में, कोई व्हिस्की की धुन में, कोई वाइफ की धुन में, तो कोई लक्ष्मी की धुन में, बस, धुन में ही पड़ा हुआ है यह जगत्।

शुद्धता बरते इसलिए, शुद्धात्मा कहो

प्रश्नकर्ता : आपने शुद्धात्मा किसलिए कहा? सिर्फ आत्मा ही क्यों नहीं कहा? आत्मा भी चेतन तो है ही न?

दादाश्री : शुद्धात्मा अर्थात् शुद्ध चेतन ही। शुद्ध इसलिए कहना है कि पहले मन में ऐसा लगता था कि 'मैं पापी हूँ, मैं ऐसा नालायक हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ।' ऐसे तरह-तरह के खुद पर जो आरोप थे, वे सभी आरोप निकल गए। शुद्धात्मा के बजाय सिर्फ 'आत्मा' कहेंगे तो खुद की शुद्धता का भान भूल जाएगा, निर्लेपता का भान चला जाएगा। इसलिए 'शुद्धात्मा' कहा है।

प्रश्नकर्ता : तो शुद्धात्मा का मर्म क्या है?

दादाश्री : 'शुद्धात्मा' का मर्म यह है कि वह असंग है, निर्लेप है, जब कि 'आत्मा' ऐसा नहीं है। 'आत्मा' लेपित है और 'शुद्धात्मा', वह तो परमात्मा है। सभी धर्मवाले कहते हैं न, 'मेरा आत्मा पापी है', फिर भी शुद्धात्मा को कोई परेशानी नहीं है।

शुद्धात्मा यही सूचित करता है कि हम अब निर्लेप हो गए, पाप गए सभी। यानी शुद्ध उपयोग के कारण शुद्धात्मा कहा है। वर्ना 'आत्मा'वाले को तो शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। आत्मा तो, सभी आत्मा ही हैं न! लेकिन जो शुद्ध उपयोगी होता है, उसे शुद्धात्मा कहा जाता है। आत्मा तो चार प्रकार के हैं, अशुद्ध उपयोगी, अशुभ उपयोगी, शुभ उपयोगी और शुद्ध उपयोगी, ऐसे सब आत्मा हैं। इसलिए अगर सिर्फ 'आत्मा' बोलेंगे तो उसमें कौन-सा आत्मा? तब कहे, 'शुद्धात्मा।' यानी कि शुद्ध उपयोगी, वह शुद्धात्मा होता है। अब उपयोग फिर शुद्ध रखना है। उपयोग शुद्ध रखने के लिए शुद्धात्मा है, नहीं तो उपयोग शुद्ध रहेगा नहीं न?

एक व्यक्ति ने पूछा कि, 'दादा, बाकी सब जगह आत्मा ही कहलवाते हैं और सिर्फ आप ही शुद्धात्मा कहलवाते हैं, ऐसा क्यों?' मैंने कहा कि, 'वे जिसे आत्मा कहते हैं न, वह आत्मा ही नहीं है और हम शुद्धात्मा कहते हैं, इसका कारण अलग है।' हम क्या कहते हैं? कि तुझे एक बार 'रियलाइज़' करवा दिया कि तू शुद्धात्मा है और ये चंदूभाई अलग है, ऐसा तुझे बुद्धि से भी समझ में आ गया। अब चंदूभाई से बहुत ख़राब

काम हो गया, लोग निंदा करें, ऐसा काम हो गया, उस समय तुझे 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा लक्ष्य चूकना नहीं चाहिए, 'मैं अशुद्ध हूँ' ऐसा कभी भी मत मानना। ऐसा कहने के लिए 'शुद्धात्मा' कहना पड़ता है। 'तू अशुद्ध नहीं हुआ है' इसलिए कहना पड़ता है। हमने जो शुद्धात्मापद दिया है, वह शुद्धात्मापद-शुद्धपद, फिर बदलता ही नहीं। इसलिए शुद्ध शब्द रखा है। अशुद्ध तो, यह देह है इसलिए अशुद्धि तो होती ही रहेगी। किसीको अधिक अशुद्धि होती है, तो किसीको कम अशुद्धि होती है, ऐसा तो होता ही रहेगा। और उसका फिर उसके खुद के मन में घुस जाता है कि 'मुझे तो दादा ने शुद्ध बनाया फिर भी यह अशुद्धि तो अभी तक बाकी है', और ऐसा यदि घुस गया तो फिर बिगड़ जाएगा।

कर्ताभाव में बरतने से कर्मबंधन

प्रश्नकर्ता : अगर किसीने शुद्धात्मा का ज्ञान लिया हो और उसे कोई थप्पड़ मारे और वह वापस थप्पड़ मार दे, तो फिर उस पर ज्ञान का असर नहीं हुआ, ऐसा समझें? या उसका शुद्धात्मापन कच्चा है, ऐसा समझें?

दादाश्री : शुद्धात्मा का ज्ञान कच्चा रह गया, ऐसा नहीं कह सकते।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसने किसलिए थप्पड़ मारा वापस?

दादाश्री : जब थप्पड़ मारा न, उस समय 'वह' जुदा ही होता है। और 'उसके' मन में पछतावा होता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा क्यों हो रहा है?' यह 'ज्ञान' ऐसा है कि अपनी खुद की एक भी भूल हुई हो तो तुरन्त ही पता चल जाता है और भूल हुई ऐसा पता चले न, तब पछतावा होता ही है।

और यह जो हुआ, उसमें ज्ञान का और उसका कोई लेना-देना नहीं है। ये सभी उसके डिस्चार्ज भाव हैं।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा हो चुका हो, यह ज्ञान लिया हुआ हो और 'परफेक्ट' हो, तो वह हमें उसके आचरण से कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : उसमें 'इगोइज़म' नहीं होता, कर्तापद खत्म हो चुका होता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा मानो न, कि 'मैं नहीं कर रहा हूँ' ऐसा उसे बरतता है, तो फिर इनको मैं थप्पड़ मारूँ और मैं कहूँ कि 'मैं नहीं मार रहा, शरीर मार रहा है। आत्मा ने नहीं मारा' तो?

दादाश्री : ऐसा कह ही नहीं सकते न! 'शरीर ने मारा है' ऐसा नहीं बोल सकते। वह तो जोखिम है। 'शरीर ने मारा है, आत्मा ने नहीं मारा' ऐसा कहे, ऐसा बचाव करे तो उसे हम कहेंगे, 'खड़े रहो, शरीर में मुझे सुई चुभोने दो', तो 'शरीर ने मारा है' ऐसा नहीं बोलेगा।

ऐसा है, मारना तो एक प्रकार का डिस्चार्ज भाव है। इस 'ज्ञान' के बाद उसका 'खुद' का चार्ज करना बंद हो जाता है, फिर डिस्चार्ज बाकी रहता है। वह उसका जोखिम नहीं रहता। 'कर्ता मिटे तो छूटे कर्म।' कर्तापन उसका छूट गया है।

प्रश्नकर्ता : 'हम कर रहे हैं', वह भाव चला जाना चाहिए।

दादाश्री : बस, इतना भाव चला गया तो काम पूरा हो गया।

शुद्ध-अशुद्ध, किस अपेक्षा से

आत्मज्ञान हुए बिना कोई मनुष्य कहे कि 'मेरा छुटकारा होगा', तो वह बात सही नहीं है, यह तो लोग आत्मज्ञान मान बैठे हैं, उसमें दो-चार वाक्य बोलते हैं कि 'मैं अनंत ज्ञानवाला हूँ, मैं अनंत दर्शनवाला हूँ' ऐसे दो-पाँच गुणों को लेकर शोर मचाते हैं। उसमें आत्मज्ञान नहीं है। पुस्तक में जो है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसमें ऐसा कहना चाहते हैं कि, 'तू यह सब नहीं है और तू यह है' ऐसे दृष्टि बदलना चाहते हैं, ऐसे भाव में तू आ जा, कहते हैं। लेकिन उससे कुछ आत्मा प्राप्त हो गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

आत्मा प्राप्त हो गया कब कहा जा सकता है कि आत्मज्ञान हो जाए

और आत्मज्ञान, वह कारण-केवळज्ञान कहलाता है। आत्मज्ञान यों ही नहीं हो जाता किसीको भी! अभी आत्मज्ञान किसीको भी नहीं है। अगर आत्माज्ञान हो तो ऐसी वाणी भी नहीं होगी, ऐसा वर्तन भी नहीं होगा, कोई आग्रह ही नहीं होगा न!

आत्मज्ञानी में आग्रह नहीं होता, वे निराग्रही होते हैं। और जहाँ पर आत्मज्ञान है, वहाँ पर अहंकार नहीं होता, आग्रह नहीं होता। बाकी जहाँ पर अहंकार है, आग्रह है, वहाँ पर कुछ भी जानते नहीं। यह बात सही है कि वे शास्त्रज्ञान जानते हैं, लेकिन उनमें अहंकार है। जिन शास्त्रों से अंहकार नहीं गया, तो उन शास्त्रों का कुछ भी ज्ञान अपने काम नहीं आया।

प्रश्नकर्ता : कुछ दार्शनिकों ने कहा है कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध ही है।

दादाश्री : हाँ, शुद्ध-बुद्ध कहते हैं। अब आत्मा यदि शुद्ध और बुद्ध ही है तो मंदिर में किसलिए जाते हो? और ये शास्त्र क्यों पढ़ते हो? यह समझने जैसा है न? यानी वहाँ पर सापेक्ष बात है। किसी खास अपेक्षा से शुद्ध है। हाँ, जब तक खुद चंदूभाई है और फिर अज्ञानी, तब तक आत्मा शुद्ध नहीं कहा जा सकता। हाँ, 'तेरा' अज्ञान जाए तो 'आत्मा' शुद्ध ही है, अंदर तो वह शुद्ध ही है, कभी भी अशुद्ध हुआ ही नहीं, लेकिन अगर तू उसे यों ही 'शुद्ध है, बुद्ध है' गाता रहेगा तो कुछ भी होगा नहीं। इस शुद्ध का तुझे अनुभव होना चाहिए। यानी कहना हो तो क्या कहा जा सकता है कि 'देह की अपेक्षा से मैं अशुद्ध हूँ और खुद की अपेक्षा से मैं शुद्ध हूँ', क्योंकि खुद निरपेक्ष है। लेकिन बात ऐसी सापेक्ष होनी चाहिए। सिर्फ निरपेक्ष बात कि 'आत्मा शुद्ध ही है' ऐसा नहीं बोल सकते! इस तरह 'आत्मा शुद्ध ही है' कहेंगे, तब तो फिर आत्मा को ढूँढने का रहा ही नहीं न!

'क्या है' जाना, लेकिन...

गुरु क्या कहते हैं कि 'तू यह है' और शिष्य गाता रहता है, लेकिन 'तू क्या नहीं है' ऐसा उन्होंने नहीं बताया, दोनों बताना पड़ता है। जब कि सिर्फ 'क्या है' इतना ही बताया। 'क्या नहीं है' वह नहीं बताया। तब फिर शिष्य 'क्या नहीं है' में रहता है और शब्द, 'क्या है', उसके निकलते हैं।

यहाँ कुछ लोग मुझे मिले थे। मुझे कह रहे थे कि, 'मेरे गुरु ने दिया है।' मैंने कहा कि, 'करेक्ट है, गलत नहीं है। यह आपको आपके गुरु ने दिया है, लेकिन इससे मिला क्या अभी तक, वह बताओ मुझे। कोई आपको छेड़े तो चिढ़ नहीं जाते आप?' तब वे कहने लगे, 'वह तो नहीं जाता। लेकिन वह तो बहुत समय बीत जाने पर होगा न।' मैंने कहा कि, 'नहीं, स्वरूप अगर हाथ में आ गया तो देर ही नहीं लगेगी।' तब उसने कहा, 'किसलिए रुका हुआ है?' तब मैंने कहा कि, ''आप क्या नहीं हो', वह आपको बताया नहीं है। और 'क्या हो', आपको इतना ही बताया है। लेकिन यदि 'क्या नहीं हो' बताया होता तो काम चलता।'' यह कौन-से गुरु जानते हैं कि 'क्या नहीं हो?' लो, बताओ देखते हैं?

अभी, 'खाने-पीने में क्या तू नहीं है?' उसमें तो 'एडजस्ट' कर लिया कि 'मैं शुद्ध-बुद्ध ही हूँ'। लेकिन अब तू क्या नहीं है, उसे ढूँढ निकाल न! या फिर वैसे का वैसा ही है? मैं भी शुद्ध-बुद्ध और इलायची भी शुद्ध-बुद्ध है? क्या नहीं है अब? इसका विश्लेषण हुए बिना कुछ हो नहीं पाता और सब भटकते हैं। अनंत जन्मों से यही भटकन चल रही है।

नरसिंह महेता ने बहुत विश्लेषण किया क्योंकि वे बहुत विचारवंत थे! नागर क्या ऐसे-वैसे थे? 'वे कुछ ऐसे-वैसे नहीं थे। उन्होंने बहुत विश्लेषण किया था और फिर वे बोले कि, '*ज्याहां लगी आत्मा तत्व चिन्त्यों नहीं, त्यहां लगी साधना सर्व जूठी*।' देखो, वे खुद की साधना को झूठी कहते हैं! तब फिर, 'आत्मतत्व जानना, इसका मतलब क्या है?' 'क्या है' उसे जानना और 'क्या नहीं है' उसे जानना, इसीको आत्मतत्व कहते हैं। 'क्या है' उसे नहीं जानोगे तो हर्ज नहीं है, लेकिन 'क्या नहीं है' इतना आप जान लोगे तो मेरे लिए बहुत हो गया, क्योंकि 'क्या नहीं है' इतना जान लोगे तो फिर 'क्या है' वह अध्याहार (बाकी बचा हुआ) रहा। और अध्याहार तो सच बात ही है, उसे नहीं जानोगे तो चलेगा। लेकिन ये 'क्या नहीं हो' इतना जानना चाहिए। जब कि लोगों ने 'क्या है' वह जान लिया और फिर उसे गाते रहते हैं। लड्डू खाते समय, वापस.... ऐसा होता है न? अभी तक यही चला है, इसलिए अनंत जन्म होते ही रहते हैं।

क्या नहीं है, जानें किस तरह?

प्रश्नकर्ता : अब उस 'नेगेटिव साइड' के बारे में बताइए न मुझे कि 'नेगेटिव साइड' को किस तरह जानें?

दादाश्री : उसका तो मैं आपको, उस दिन सब खुलासा कर दूँगा। उस घड़ी सभी नेगेटिव का खुलासा हो जाएगा। फिर इन बातों में मज़ा आएगा! उसके बाद, मैं जो कहना चाहता हूँ, वह बात आप तक पहुँचेंगी।

यानी इन लोगों से कहता हूँ कि 'क्या नहीं हो' वह जानकर लाओ। तब वे कहते हैं कि, 'मुझे क्या नहीं हूँ' वह जानना है। तो मैं कह देता हूँ, 'माइ', इतना निकाल दे। 'मेरे हाथ' वह तू नहीं है। 'मेरा सिर' तू नहीं है, 'मेरी आँखें' उनमें तू नहीं है, ये सब माइनस करता रह। फिर मन को माइनस कर, माइ माइन्ड, माइ इगोइज़म, माइ स्पीच, सबकुछ माइनस कर। तब कहता है कि, 'तब तो मेरा कल्याण ही हो जाएगा। हो ही जाएगा तुरंत।' तो कर न, लेकिन यह माइनस किस तरह से करे बेचारा? वह पाप भस्मीभूत हो जाने चाहिए न!

यह पूरा जगत् कैसा है? ऐसा करे तो ऐसे फँस जाता है, ऐसा करे तो ऐसे फँस जाता है। यानी सबकुछ सापेक्ष है, एक आए तो फिर उसे दूसरी अपेक्षा रहती है। अतः जब हम पाप भस्मीभूत कर देते हैं, उसके बाद 'यह हूँ' और 'यह नहीं हूँ', वह समझ में आता है। बाकी, 'क्या नहीं हूँ' वह हमने एक फॉरिनर को दिया था।

हम लोनावाला गए थे न, वहाँ पर वे लोग आए थे। वे कहने लगे, 'हमें कुछ दीजिए।' तब मैंने कहा कि, 'सेपरेट आई एन्ड माइ विथ ज्ञानीज़ सेपरेटर', तो मेरा सेपरेटर मैं तुझे नहीं दूँगा, लेकिन मैं तुझे सेपरशेन का अंदर का रास्ता बता देता हूँ। उस तरह से तू 'मेरा' माइनस करता जा, यह माइनस कर, यह माइनस कर। लेकिन अब वह प्राप्ति किस तरह करे? उसके पाप नष्ट हुए बिना वह प्राप्ति किस तरह से कर पाएगा? क्योंकि ये जो पाप हैं न, वे इस ज्ञान पर आवरण ला देते हैं। इसलिए पहले पाप नष्ट होने चाहिए। वे पाप हैं, इसलिए याद नहीं रहता न! और इन्हें शुद्धात्मा

लक्ष्य में क्यों रहता है? क्योंकि पाप नष्ट हो गए हैं इसलिए निरंतर लक्ष्य में रहता है।

प्रश्नकर्ता : वह जो सूक्ष्म परदा है, वह 'रिमूव' हो जाना चाहिए न?

दादाश्री : वह हम 'रिमूव' कर देते हैं।

अक्रम मार्ग पर लिफ्ट में मज़े से मोक्ष

प्रश्नकर्ता : उसके लिए, आपने आत्मज्ञान के लिए अक्रम मार्ग बताया है? क्रमिक मार्ग से यह अलग है और आसान है, ऐसा आपने कहा है।

दादाश्री : हाँ, अक्रम मार्ग का मतलब लिफ्ट मार्ग है और क्रमिक मार्ग अर्थात् सीढ़ियाँ, सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ना। और अक्रम अर्थात् लिफ्ट में बैठ जाना। उसमें आपको कुछ करना नहीं पड़ता, सीधा मोक्ष! आपको यदि करना पड़े तो 'हम नहीं मिले हैं', ऐसा कहलाएगा। यानी आपको कुछ भी नहीं करना है। एक सिर्फ पाँच आज्ञा देते हैं, जिससे वे लिफ्ट में से हाथ-पैर बाहर नहीं निकालते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा मार्ग आसानी से मिलता नहीं है न कहीं भी?

दादाश्री : है न! यह पूरा खुला है न और हज़ारों लोगों ने लिया है। कम से कम, पच्चीस हज़ार लोगों ने लिया है और आप कहते हो कि मिलता नहीं, ऐसा कैसे कह सकते हैं? मार्ग तो है, लेकिन आपको वह मार्ग मिले, तब। लेकिन उसका टाइमिंग मिलना चाहिए न? टाइमिंग मिले, तब मार्ग मिल जाता है।

बाकी, सभी तरह के मन के खुलासे हो जाएँ, तब टाइमिंग मिलता हैं। मन का समाधान हो जाए कि मार्ग सही है, उसके बाद फिर गाड़ी पटरी पर आ जाती है, नहीं तो आएगी ही नहीं न? और गाड़ी भ्रांति लाइन में घूमती ही रहेगी सब तरफ़, मेन लाइन पर तो आएगी ही नहीं। किसी

भी जगह पर मेन लाइन पर कोई होता भी नहीं है। भ्रांत लाइनों में ही होते हैं और अक्रम मार्ग अर्थात् मेन लाइन। यानी कि 'फुलस्टोप'-मार्ग है यह, 'कोमा'-मार्ग नहीं है यह।

क्रमिक मार्ग का अर्थ क्या है? कि स्टेप बाइ स्टेप। इसका मतलब यह है कि कोई संतपुरुष मिले कि पाँच हज़ार सीढ़ियाँ चढ़ जाता है। फिर कोई जान-पहचानवाला मिले तो वापस केन्टीन में खींच ले जाए, तो वापस तीन हज़ार सीढ़ियाँ नीचे उतर जाता है। ऐसे करते हुए चढ़ना-उतरना, चढ़ना-उतरना करता रहता है। इसलिए वह सेफसाइड मार्ग नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : अक्रम मार्ग की ओर मुड़ने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आप यहाँ पर आए हो और आप कह दो कि, 'साहब, मेरा निबेड़ा ला दीजिए', तो निबेड़ा आ जाएगा। यह तो अंतराय टूट चुके हों, तभी ऐसा बोल पाते हैं। नहीं तो ''बाद में 'हो जाएगा' आगे जाकर देख लेंगे'', ऐसा करके दो वर्ष निकाल देते हैं। फिर वापस आते हैं। लेकिन आए हैं तो प्राप्ति तो होगी ज़रूर। हज़ार में से एक-दो लोगों के केस फेल होते हैं, बाकी नहीं। दूसरे सभी केसों में प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि ऐसा नकद कौन छोड़ेगा? और फिर, कुछ भी करना नहीं है उसे! सिर्फ लिफ्ट में बैठना ही है।

ज्ञानी के पास पहुँचा, वही पात्रता

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान किसीको भी प्राप्त हो सकता है, या उसके लिए कोई पूर्व भूमिका होनी चाहिए?

दादाश्री : नहीं। वह यहाँ पर आया वही उसकी भूमिका, और किसी भूमिका की ज़रूरत नहीं है। यहाँ पर आया है न, वही भूमिका। बाकी वैसी भूमिका तो कब पास करते ये लोग? और अपने यहाँ पर तो फेल हो चुके लोग भी चलते हैं। फेल हो चुके लोगों को मोक्ष के मार्ग पर ले जाएँगे।

जिज्ञासु वृत्ति तो प्राप्त करवाए वस्तु

प्रश्नकर्ता : हम ज्ञान लें, तो हमारी भी वह स्टेज ऊँची हो जाएगी?

दादाश्री : फिर मुझमें और आपमें फ़र्क़ ही नहीं रहेगा। फ़र्क़ इतना ही रहेगा कि मैंने मेरी दुकान का माल बेच दिया है सारा और दुकान खाली कर दी। और आपकी दुकान खाली करनी बाकी रहेगी, इतना ही फ़र्क़ रहेगा। आपको तो अभी सारा सामान बेच देना है। गुड़-शक्कर जो भी पड़ा हो, उसका *निकाल* कर देना है। और मैं सब *निकाल* करके बैठा हूँ। इतना ही फ़र्क़ है।

यानी कि यह तो मैं आपको मेरे साथ ही बैठा देता हूँ, जहाँ पर मैं खुद हूँ, वहाँ पर। अब ऐसा ऊँचा पद मिले, तभी तो चिंता बंद होती है न! बाकी चिंता बंद होना, वह क्या आसान है?

इस वर्ल्ड में कोई भी मनुष्य चिंतारहित नहीं हुआ है, और मैं चिंतारहित कर देता हूँ आपको! लेकिन वह तो जब मैं मेरी दशा में बैठा दूँ, तभी चिंतारहित बनोगे न! यों ही तो नहीं हो जाएगा न!

चिंता बंद हो जाए तो जानना कि अब इस जन्म में मोक्ष में जानेवाले हैं। आपको चिंता ही नहीं हो, संसार में रहने के बावजूद, पत्नी-बच्चों के साथ रहने के बावजूद, यह सारा संसार व्यवहार करने के बावजूद चिंता नहीं हो, तो जानना कि एक जन्म में हम मोक्ष में जानेवाले हैं, ऐसा यक़ीन हो गया।

प्रश्नकर्ता : वह स्थिति प्राप्त करना मुश्किल है।

दादाश्री : मुश्किल तो है, लेकिन यह अक्रम विज्ञान निकला है न, इसलिए मोक्ष तो खिचड़ी बनाने से भी आसान हो गया है! यह अक्रम विज्ञान प्राप्त होना मुश्किल है, ऐसा पुण्य जगना मुश्किल है। और प्राप्त हो जाए तो आपका कल्याण हो जाए। क्योंकि पुण्य जगने के बाद आपको कुछ भी करना नहीं होता। आपको सिर्फ लिफ्ट में बैठना है, सिर्फ इतना ही कि हाथ-पैर बाहर मत निकालना, इसके लिए मैंने आज्ञा दी है, उसे पालना।

प्रश्नकर्ता : अभी तो हम जिज्ञासु हैं, कुछ ज्ञान और अज्ञान का भेद जानने की इच्छा है, इसलिए आए हैं।

दादाश्री : वह तो अभी आपकी जिज्ञासु दशा है, लेकिन पूरे दिन क्या जिज्ञासु रहते हो?

प्रश्नकर्ता : लगभग हाँ।

दादाश्री : नहीं, पूरे दिन जिज्ञासु नहीं रहते। वह तो, ऐसा है अभी आपकी दशा जिज्ञासु है। यदि अस्पताल में बैठे होंगे न तो पेशन्ट जैसी दशा रहेगी। जहाँ-जहाँ जो अवस्था होती है न, उस अवस्था को आप मान्य करते हो तो वैसी दशा हो जाती है आपकी। लेकिन 'आप वास्तव में कौन हो' उसका पता नहीं लगाना चाहिए था अब तक?

प्रश्नकर्ता : लगाना चाहिए था।

दादाश्री : तो क्यों नहीं लगाया?

प्रश्नकर्ता : उसकी खोजबीन चल ही रही है, साहब।

दादाश्री : कहाँ पर खोज रहे हो?

प्रश्नकर्ता : पढ़कर, सत्संग से, ज्ञानीपुरुष से मिलकर, इस तरह से खोज चल ही रही है।

दादाश्री : वह खोज ठीक है। ऐसी खोज करते-करते ही आज आप 'ज्ञानीपुरुष' के पास आ सके। अब आपको 'ज्ञानीपुरुष' से कहना है, आपको जो-जो चाहिए वह माँग लेना। जो वस्तु चाहिए वे सभी चीज़ें माँग लेने की आपको छूट है, जितना चाहिए उतना 'टेन्डर' भरने की छूट है।

ऐसा है, बाहर मूली लेने जाएँ तो मूली भी मूल्यवान है, उस मूली के दस पैसे माँगते हैं, और यह तो अमूल्य चीज़ है। यानी कि आपको क्या लेना है? इसकी 'वेल्यू' ही नहीं हो सकती न? अर्थात् 'यह लेना है', उसका खुद को लक्ष्य रखना चाहिए। उसके लिए आपको तैयारी करके रखनी चाहिए। स्कूल में इनाम मिल रहा हो तो भी बच्चे कितनी तैयारी

से लेने जाते हैं, कितने अदब से, कितने विनय से, कितने विवेक से इनाम लेने जाते हैं। तो इसके लिए कुछ पूर्व तैयारी हो सकती है क्या? भावना और ऐसी सब जागृति हो जानी चाहिए। 'तुझे एक इनाम मिला है', ऐसा कहे, तो बच्चे कितनी मस्ती में आ जाते हैं! जब कि यह तो अमूल्य चीज़ देने की बात है।

अक्रम मार्ग की अद्धितीय सिद्धियाँ

जब इस जगत् में किसी भी द्वंद्व का असर नहीं हो, किसी भी वस्तु का असर नहीं हो, 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा भान हो जाए तो हो गया कल्याण! या फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा श्रद्धा में आ जाए, उसे प्रतीति में बैठ जाए, तो भी फिर आगे बढ़ जाएगा। अर्थात् पहले समझ में आना चाहिए। और जब समझ में आए, तब तक वर्तन बदले या न भी बदले। लेकिन ज्ञान में आया, ऐसा कब कहा जाएगा कि वर्तन भी बदल जाए, तभी ज्ञान में आया कहलाएगा। ज्ञान तो उसीको कहते हैं कि जो वर्तन में हो।

हम यह जो ज्ञान देते हैं न, वह केवळदर्शन का ज्ञान देते हैं, क्षायक समकित का ज्ञान देते हैं। फिर यदि हमारी आज्ञा में रहे तब तो दोनों फल मिलेंगे। और उसका क्षायक ज्ञान कब हो पाएगा? जब वह समझ फिर वर्तन में आएगी, तब क्षायक ज्ञान होगा।

मैं आपको देता हूँ केवळज्ञान, लेकिन इस काल के कारण पचता नहीं। फिर भी मुझे पूरा-पूरा केवळज्ञान देना है। क्योंकि पूरा-पूरा नहीं दूँगा, तब तो आपको प्रकट नहीं होगा लेकिन इस काल के कारण इसका पाचन नहीं हो पाता। वह हजम नहीं हो पाता, फिर भी उसमें हमें हर्ज नहीं है। क्योंकि मोक्ष अपने पास आ गया, फिर बाकी क्या रहा?

ऐसा मोक्ष पाने के बाद बेटे-बेटियों की शादी करवाएँ, उसमें भी क्या हर्ज है? वर्ना किसी जीव को थोड़ा भी दुःख देकर मोक्ष में जाना चाहें, तो मोक्ष में घुसने देंगे? क्योंकि पत्नी कहेगी, 'अभी आप मत जाना। इस छोटी बेटी की शादी करने के बाद जाना।' और अगर आप भाग गए तो क्या उससे मोक्ष हो जाएगा आपका? भगवान ने क्या कहा है

कि संसार बाधक नहीं है, अज्ञान बाधक है। अज्ञान गया तो फिर क्या परेशानी है?

अहो! आत्मा को जानने का मतलब तो...

बाकी ये सब लोग जिसे आत्मा समझते हैं, वे मिकेनिकल आत्मा को आत्मा समझते हैं। वही भ्रांति है न! और फिर हम पूछें, 'आपको समकित हो गया?' तब कहेंगे, 'नहीं, समकित तो नहीं हुआ।' आत्मा जानने के बाद बाकी क्या रहा? वह क्षायक समकित से ऊपर, केवळज्ञान के नज़दीक पहुँच गया कहलाएगा। यानी कि आत्मा जाना जा सके ऐसा नहीं है। इसलिए कृपालुदेव ने लिखा है न बड़ी पुस्तक पर कि, '*जेणे आत्मा जाण्यो तेणे सर्व जाण्युं*।' यह जो कहने का था, वह ऊपर लिखा है। और यदि नहीं जान लिया तो अंदर माथापच्ची कर। अनंत जन्मों से माथापच्ची की है और फिर से वही कर, ऐसा कहते हैं। फिर भी ऐसे करता रह, तो कभी न कभी सही वस्तु मिल जाएगी।

...ज्ञानी के भेदज्ञान से जाना जा सकता है

प्रश्नकर्ता : अनात्मा को जाने बगैर आत्मा को जान सकते हैं?

दादाश्री : जो आत्मा को जान ले तो वह अनात्मा को जान सकता है, लेकिन वह शब्द से ही जाना जा सकता है। उससे अनात्मा को नहीं जाना जा सकता। इसलिए हमने ऐसा कहा है न कि, ''मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से 'मैं' बिल्कुल असंग हूँ।'' वे सभी संगी क्रियाएँ अनात्मा है। 'मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भावों से मैं सर्वथा निर्लेप ही हूँ।' ये जो सारे लेपायमान भाव मन में आते हैं, वह सारा अनात्मा विभाग है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अनात्मा और आत्मा, वे दोनों एक साथ जाने जा सकते हैं?

दादाश्री : दोनों एक साथ तो नहीं जाने जा सकते। वह तो हम यहाँ पर ज्ञान देते हैं तो सबकुछ अलग हो जाता है। लेकिन सबकुछ ज्यों का त्यों जानना तो पड़ेगा न!

अभी तक तो तत्व क्या है वही नहीं जानते और 'आत्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ' बोलते हैं। 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र', ऐसा सब बोलते हैं, लेकिन इसमें आत्मा क्या है? वह पता ही नहीं चलता न?

प्रश्नकर्ता : तो 'मैं कुछ भी नहीं जानता', ऐसा रखना चाहिए?

दादाश्री : बस, वही अक़्लमंदी का वाक्य है कि 'मैं कुछ भी नहीं जानता।'

वीतराग दृष्टि से, विलय होता है संसार

ज्ञान तो दृष्टि है। यह चमड़े की आँखों की दृष्टि है और दूसरी ज्ञानदृष्टि है, उससे देखना आ गया तो काम निकल जाएगा न! ये चमड़े की आँखें नहीं हैं? इनसे तो ऐसा दिखता है कि 'ये मेरे ससुर हैं, ये मेरे मामा हैं, ये फूफा हैं।' ये सभी बातें सच होंगी? ये सभी बातें करेक्ट हैं? कोई हमेशा के लिए ससुर रहता है कहीं? जब तक डायवोर्स नहीं लिया हो तब तक ससुर, डायवोर्स ले उसके दूसरे दिन वह संबंध खत्म हो जाता है न! अर्थात् ये सभी टेम्परेरी एडजस्टमेन्टस है! बाकी, दृष्टि तो 'ज्ञानीपुरुष' बदल देते हैं।

प्रश्नकर्ता : दृष्टि को बहिर्मुख से अंतर्मुख कर देते हैं।

दादाश्री : नहीं। वैसी अंतर्मुख दृष्टि नहीं। अभी तो आपकी दृष्टि अंदरवाली भी है ही। लेकिन आपकी दृष्टि बदल देते हैं, तो फिर बाहर भी आत्मा दिखता है। जैसा अंदर है, वैसा बाहर भी आत्मा नहीं है? लेकिन आपकी वह दृष्टि बदल देते हैं! बाकी हमें तो एक मिनट के लिए भी यह संसार याद नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : हमसे एक मिनट भी संसार भूला नहीं जाता।

दादाश्री : यानी कि पूरे डिज़ाइन में ही फ़र्क़ है। पूरी दृष्टि में ही फ़र्क़ है, और कुछ भी नहीं। आप यह देख रहे हो, मैं दूसरी तरफ़ ऐसे देख रहा हूँ। पूरी दृष्टि ही अलग है। इसमें और कुछ भी प्रयत्न

नहीं करना है। यदि कोई दृष्टि बदल दे न तो आपको भी सब वैसा ही दिखेगा फिर!

दृष्टि एक बार बदलने के बाद, वह दृष्टि खिलती जाती है, और वैसे-वैसे 'खुद' 'भगवान' होता जाता है। लेकिन जब तक दृष्टि खिली नहीं है, तब तक तो जेब कटी तो जेबकतरे को गुनहगार मानता है। दृष्टिदोष से *पुद्गल* अन्य स्वरूप में दिखता है।

प्रश्नकर्ता : यह चर्मचक्षुवाली दृष्टि का दोष कहलाएगा न? अज्ञानता में होंगे तो पता ही किस तरह चलेगा कि 'हम अज्ञानता में हैं?'

दादाश्री : ऐसा पता ही नहीं चलता न! फिर जैसी उसकी दृष्टि होती है न, वैसा ही बन जाता है, इस चमड़े की आँखवाली दृष्टि, वह दृष्टि नहीं है। उसे ज्ञान के अनुसार दृष्टि हो जाती है, जितना ज्ञान है उतने परिमाण में दृष्टि होती है। जो ज्ञान 'उसे' प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर ही 'उसकी' दृष्टि होती है और जैसी दृष्टि होती है वैसा बाहर सब तरफ़ दिखता है। 'यह हमारा दुश्मन और यह हमारा मित्र', कहेगा। अब कोई मित्र या शत्रु है ही नहीं इस जगत् में, लेकिन उसकी दृष्टि ऐसी हो गई है, इसलिए ऐसा दिखता है।

प्रश्नकर्ता : जो गलत चीज़ है, वह त्याग देनी चाहिए। धीरे-धीरे इतना प्रयत्न करें तो फ़र्क़ पड़ता जाता है।

दादाश्री : अगर मोक्ष में जाना हो तो गलत-सही का द्वंद्व निकाल देना पड़ेगा। और यदि शुभ में आना हो तो गलत वस्तु पर द्वेष करो, तिरस्कार करो और अच्छी वस्तु पर राग करो, जब कि शुद्ध में सही-गलत दोनों पर राग- द्वेष नहीं रखना है। क्योंकि वस्तु अच्छी-बुरी है ही नहीं, यह तो दृष्टि की मलिनता है। यह अच्छी दिखती है और यह ख़राब दिखती है, वही दृष्टि की मलिनता है और वही मिथ्यात्व है। यानी कि दृष्टिविष खत्म हो जाना चाहिए। वह दृष्टिविष हम निकाल देते हैं। वह दृष्टिविष चला जाए, फिर आत्मा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, वर्ना आत्मा का लक्ष्य प्राप्त करना क्या कोई ऐसी-वैसी बात है! और वीतरागता आनी

चाहिए, राग-द्वेष होने ही नहीं चाहिए। राग-द्वेष बंद करने की प्रेक्टिस करने से वे बंद नहीं होते। उन्हें बंद करने की प्रेक्टिस करते रहें और राग-द्वेष बंद हो जाएँ, ऐसा कभी होगा नहीं। वीतराग, वह तो दृष्टि है! अभी आपकी यह दृष्टि राग-द्वेषवाली है, और हमारी वीतराग दृष्टि है। यानी कि सिर्फ दृष्टि का फ़र्क़ है। पूरा दृष्टि का ही फ़र्क़ है। और 'ज्ञानीपुरुष' आसानी से इस दृष्टि को बदल देते हैं! उसके बाद मुक्ति का अनुभव होता है!

दृष्टि बदले बिना सबकुछ व्यर्थ

प्रश्नकर्ता : मैं यह पूछ रहा था कि दृष्टि मिटे लेकिन वृत्ति रहे तो उसका क्या?

दादाश्री : दृष्टि किस तरह से मिटेगी? नहीं, कोई ऐसा रास्ता नहीं है कि दृष्टि मिटे। वृत्ति मिट सकती है, लेकिन दृष्टि नहीं मिट सकती। दृष्टि के कारण तो यह पूरा जगत् उलट-पलट हो गया है! कौन-सी दृष्टि? तब कहे, 'उल्टी दृष्टि।' 'जैसा है वैसा' दिखता नहीं है। इसलिए फिर 'उसे' जैसा दिखता है, उसमें 'वह' तन्मयाकार रहता है। वृत्तियाँ तो सभी टूट जाती हैं और फिर नई वृत्तियाँ आती हैं, लेकिन जब तक दृष्टि नहीं बदलती न, तब तक वृत्तियाँ बदलती रहती है। इसलिए कुछ फ़ायदा नहीं हुआ है। अरे! साधु बने, खाना, खट्टा-मीठा कुछ भी याद ही नहीं आए, वे सभी वृत्तियाँ टूट जाएँ, फिर भी दृष्टि बदले बिना कुछ भी नहीं हो पाता।

अपने यहाँ ऐसे कितने ही संत हैं कि जिनके पास हम बैठें न, तो अरे वाह...अपने मन में एकदम आनंद हो जाता है! तब हमें ऐसा लगता है कि अरे वाह! ये संत कैसे होंगे? क्योंकि बर्फ़ का स्वभाव है कि हर एक को ठंडक देता ही है। अब वे संत ठंडक देंगे उससे आप ऐसा नहीं समझेंगे कि यहाँ पर कुछ है? जब कि मैं कहूँगा कि वहाँ पर कुछ भी नहीं है। क्योंकि वे वृत्तियों को मारते रहे हैं। उन वृत्तियों को मारा इसलिए स्थिरता हो गई, और स्थिरता हो गई, इसलिए वे लोगों को हेल्पफुल रहते हैं, लेकिन उन्हें तो फिर से अस्थिर करना पड़ेगा, तभी काम होगा। अब दुनिया को यह सब किस तरह से पता चले?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उससे दृष्टि बदलती है क्या?

दादाश्री : दृष्टि नहीं बदलती, वृत्तियाँ वगैरह बदलती हैं। एक हद तक का अहंकार और उस प्रकार की वृत्तियों को छोड़कर अन्य सभी वृत्तियों को खत्म कर दें, उस तरह के प्रयोगवाले यहाँ हैं। और वे जब ऐसे बैठे होते हैं न, तो आसपास का वातावरण कितना सुंदर लगता है, वह भी मैंने देखा है फिर। फिर भी मैंने पता लगाया कि यहाँ पर कुछ माल नहीं है। ज्ञान की बात पूछें तो पता चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं ही होगा न?

दादाश्री : तो जहाँ पर ज्ञान नहीं है, वहाँ पर अध्यात्म भी नहीं है। ये तो सब आधिभौतिक मार्ग है। पहले के काल में आध्यात्मिक मार्ग थे। अभी तो लोग 'जो अध्यात्म नहीं है', उसे अध्यात्म कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, वे यदि ऐसा स्वीकार लें कि मैं तो कोरा काग़ज़ हूँ, क्लीन स्लेट हूँ।

दादाश्री : स्वीकार लें तो बहुत अच्छा है, अक़्लमंदी की बात है।

प्रश्नकर्ता : फिर तो उनकी दृष्टि भी बदल जाएगी?

दादाश्री : ज़रूर बदलेगी, लेकिन दृष्टि को बदलवानेवाले होने चाहिए। अपने आप दृष्टि नहीं बदल सकेंगे। अनादि से यह व्यवहार चलता आया है कि दृष्टि बदलवानेवाले होने चाहिए। दृष्टि बदले, तभी से आपकी सृष्टि बदली हुई लगती है, इसीको दृष्टि बदलना कहा जाता है। यदि सृष्टि नहीं बदले तो दृष्टि बदली हुई कहलाएगी ही कैसे? नहीं तो जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि आकर रहती है।

ज्ञानी कृपा से बदले दृष्टि

प्रश्नकर्ता : यानी मुख्यत: अंतर्मुख दृष्टि होनी चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है न, कितने ही लोग तो अंदर देखते रहते हैं। अरे, अंदर तो कुछ भी नहीं है। अंदर तो 'ज्ञानीपुरुष' के दिखाने के

बाद ही दिखता है, वर्ना अंदर तो ऐसे आँख मींचकर स्त्रियाँ वगैरह दिखती हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी अंतर्मुख होने के लिए किसी सहारे की ज़रूरत पड़ती है?

दादाश्री : वह तो कृपा हो, तब अंतर्मुख हुआ जाता है। कृपा के बिना अंतर्मुख किस तरह से हो सकेगा? वर्ना लोगों को अंदर कारखाने दिखते हैं, और कितनी ही कल्पनाएँ दिखती हैं।

प्रश्नकर्ता : वह कृपा कब होती है?

दादाश्री : कृपा तो 'ज्ञानीपुरुष' के दर्शन करे, उनका विनय करे, उनकी आज्ञा में रहे, तब कृपा मिलती है। बाकी वह कृपा क्या यों ही मिलती होगी? या फिर क्या विरोधी बनने से कृपा मिलेगी? ऐसे कोई विरोध करे तो भी 'ज्ञानीपुरुष' को कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन विरोध करनेवाले को कितना अधिक नुकसान होगा! हमें तो गाली दे तो भी आपत्ति नहीं है। लेकिन इससे आपकी क्या दशा होगी? इसलिए हम आपको समझाते हैं कि सीधे रहो। साँप बिल में घुसते समय सीधा चलता है? टेढ़ा नहीं चलता? उस घड़ी वह सीधा हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वैसे ही यहाँ पर 'ज्ञानीपुरुष' के सामने सीधा हो जाना है। यहाँ पर टेढ़ापन नहीं चलेगा। यहाँ पर तो आज्ञा में रहना चाहिए। क्योंकि ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' के तो दर्शन ही करने को नहीं मिलते।

इन्द्रियों का अंतरमुख या आत्मारूप होना?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह जो पाँच इन्द्रियों के बारे में बताया है, कि यह सब बाह्य व्यापार है, तो क्या इन इन्द्रियों को अंतर्मुख करना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, इन्हें अंतर्मुख तो पहले बहुत दिनों तक किया है। क्योंकि अंतर्मुख करता है न, इतने में तो वे बाहर चली जाती हैं

फिर से। बाह्यमुखी माल मिला कि वे बाहर चली जाती हैं, देर ही नहीं लगती न! और ये इन्द्रियाँ तो, कभी भी किसीकी भी चैन से बैठी ही नहीं हैं। और यह इन्द्रियों का तालाब तो किसीका भी बँध नहीं पाया है। लेकिन इसके बावजूद वे खाना खा गए और फिर कहते हैं कि सदा उपवासी हैं। वे कौन?

प्रश्नकर्ता : दुर्वासा।

दादाश्री : हाँ, और कृष्ण भगवान के लिए क्या कहा है कि सदा ब्रह्मचारी। क्योंकि मूल स्थिति में आने के बाद कोई चीज़ उन्हें स्पर्श नहीं कर सकती। अर्थात् इन्द्रियों को तो भले ही अभिमुख करो या और कुछ करो या सन्मुख करो, वह सभी कुछ, वह तो एक तरह की कसरत है। उससे शरीर अच्छा रहता है, मन ज़रा अच्छा रहता है, लेकिन 'अपना' काम नहीं हो पाता।

ऐसा है, यदि हम यहाँ से आगे के स्टेशन का रास्ता नहीं जानते हों, तब तक घूमते रहें, उससे क्या स्टेशन प्राप्त हो जाएगा? इसके लिए किसीसे पूछना तो पड़ेगा ही न? इस अज्ञान के कारण ही कुछ भी काम नहीं हो पाता। 'खुद कौन है और किससे बँधा हुआ है' ऐसा सब ज्ञानीपुरुष से जान लेना चाहिए।

...वे सभी मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट

प्रश्नकर्ता : अब अंतरमुख दशा में हमें अंदर से कोई जवाब देता है कि, 'यह तू गलत कर रहा है और ऐसा सब', तो वह आत्मा कहता है?

दादाश्री : वह आत्मा नहीं है, वह तो 'टेपरिकार्ड' है। यह बाहर जैसा 'टेपरिकार्ड' है, वैसा ही अंदर 'ओरीजिनल टेपरिकार्ड' है। आप उसे आत्मा कहते हो? बड़े-बड़े ऑफिसर भी कहते हैं कि, 'मेरा आत्मा बोल रहा है।' अरे, क्या वह आत्मा है? वह तो 'टेपरिकार्ड' है।

प्रश्नकर्ता : अगर आत्मा नहीं बोल रहा है, तो ऐसा कौन कहता है कि 'यह तू गलत कर रहा है'?

दादाश्री : वह 'टेपरिकार्ड' है। जो व्यवहारिक ज्ञान आपने जाना, वह व्यवहारिक ज्ञान आत्मा नहीं है। निश्चय ज्ञान, वह आत्मा है। आपने जो व्यवहारिक ज्ञान जाना, वह तो 'टेपरिकार्ड' हुआ था, उसकी आपको आवाज़ सुनाई देती है। इसलिए आपको खटकता रहता है कि, 'व्यवहार में ऐसा होना चाहिए और यह तो हम उल्टा कर रहे हैं।' अतः वह आत्मा नहीं है।

बाकी, आत्मा तो बोल नहीं सकता, खा नहीं सकता, पी नहीं सकता, आत्मा श्वास नहीं ले सकता। यह सब आत्मा का काम नहीं है, आत्मा का ऐसा धंधा ही नहीं है। आत्मा के गुणधर्म अलग हैं।

जैसे कि इस अँगूठी के अंदर सोना और तांबा, दोनों मिले हुए होते हैं, और उन्हें अगर अलग करना हो तो किसे देना पड़ेगा?

प्रश्नकर्ता : सुनार को।

दादाश्री : हाँ। क्योंकि सुनार उसका जानकार है। उसी तरह इस देह के अंदर आत्मा और अनात्मा, ये दो विभाग हैं। जो आत्मा के और अनात्मा के गुणधर्म को जानते हैं, वे उन्हें अलग कर देते हैं, पूरी 'लेबोरेटरी' रखकर अलग कर देते हैं।

यह तो सारा 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' है। यह जो बोलते हैं, यह सारा 'रिकार्ड' है। सुननेवाले को क्या कहते हैं? 'रिसीवर' कहते हैं न! अर्थात् ये सब 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्टस' ही हैं। ये आँखें भी 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' हैं। दिमाग़ पूरा ही 'मिकेनिकल' है, सिर पर ठंडा पानी डालें, तब सीधा रहता है। नहीं तो जब दिमाग़ गरम हो जाता है और बहुत तप जाता है, तब पानी की पट्टी रखनी पड़ती है न, या नहीं रखनी पड़ती? यह तो अंदर कितना बड़ा आत्मा भगवान की तरह बैठा हुआ है, फिर भी देखो पानी की पट्टी रखने का समय आया, लेकिन पट्टी रखनी पड़ती है, तभी अंदर ठंडा हो पाता है, नहीं तो, अंदर भी उबलता रहता है।

जब तक अज्ञान है, तब तक आत्मा वेदक है और जो वेदना होती

है उसे खुद स्वीकार कर लेता है कि 'मुझे वेदना हो रही है।' यह सारा तो 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' है। इसमें कुछ लिमिट तक वेदना हो, तब तक आत्मा अंदर रहता है। और बहुत वेदना हो, जबरदस्त वेदना हो तो बेहोश हो जाता है और उससे भी भयंकर वेदना हो तो आत्मा बाहर निकल जाता है।

'सेठ को क्या हुआ था' पूछें तो कहेंगे, 'फेल हो गए।' अरे, 'स्कूल' में तो वे पास होते थे न! लेकिन यहाँ पर 'फेल' हो गए। यह तो सारा 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' है। और अंदर ज़ोरदार घबराहट हो तो आत्मा निकल जाता है। उसे 'हार्ट अटैक' कहते हैं न? वह 'फ़ौजी अटैक' तो अलग है और यह 'अटैक' अलग। तो इस 'अटैक' में तो आत्मा ही पूरा बाहर निकल जाता है। हिन्दुस्तान में लोगों की ऐसी दशा तो होती होगी? जो भी नियम हैं, उनके विरुद्ध चले, इसलिए यह दशा उत्पन्न हुई है।

सभी असरों का कारण अहंकार ही

प्रश्नकर्ता : जब शरीर को दुःख होता है, तब क्या जीव को दुःख होता है?

दादाश्री : हाँ, जब शरीर को दुःख होता है तब जीव को दुःख होता है। क्योंकि इस शरीर को वह जीव 'मेरा है' ऐसा मानता है और फिर 'मैं ही हूँ यह' ऐसा कहता है, इसलिए उसे असर हुए बगैर रहता ही नहीं।

अब जिसे 'यह' ज्ञान है, उस पर मन का और वाणी का, ये दोनों असर नहीं होते। देह का असर तो उस पर भी होता है। अभी दाढ़ दुःख रही हो न, तो ज्ञानी को भी असर होता है! अतः इस बॉडी में इफेक्टिव चेतन है। लेकिन 'ज्ञान' है इसलिए कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं करते वे। उसका हिसाब समभाव से, शांति से चुका देते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा निकल जाने के बाद शरीर को दुःख क्यों नहीं होता?

दादाश्री : फिर शरीर को दु:ख किस तरह से होगा? इस समय अभी तो इसमें अहंकार है। इस शरीर को 'मैं हूँ और मेरा है' ऐसे कहता है। और वही यह सब दु:ख भोग रहा है, यानी कि अहंकार का ही है यह सब।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अहंकार तो जड़ है।

दादाश्री : अहंकार जड़ नहीं है, वह मिश्रचेतन है।

प्रश्नकर्ता : मिश्रचेतन का मतलब क्या है, वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : मिश्रचेतन अर्थात् चेतन के भाव इसके अंदर पड़े हुए हैं। वे चेतन के भाव और यह जड़ दोनों मिलकर, मिक्सचर बन गया है, इसलिए मिश्रचेतन कहलाता है। और मन, वह जड़ है। मन में विचार आते हैं, वे सभी जड़ हैं। लेकिन अहंकार मिश्रचेतन है। यह शरीर, वह तो जड़ है, लेकिन मिश्रचेतन का थोड़ा-सा स्पर्श होता है, इसलिए उस पर असर होता है।

मूल आत्मा के अलावा दूसरा भी एक भाग है। मूल आत्मा को तो जगत् जानता ही नहीं। यह जो दिखाई देता है, उसे ही चेतन मानते हैं। जगत् जिसे चेतन मानता है उसमें ज़रा-सा भी चेतन नहीं है, एक अंश भी चेतन नहीं है, 'गिलट' करने जितना चेतन भी उसमें नहीं है, इसीको माया कहते हैं न! जो चेतन नहीं है, फिर भी चेतन है ऐसा मनवाती है, वही भगवान की माया! और 'ज्ञानीपुरुष' ने इस माया को 'सोल्व' कर दिया होता है।

प्रश्नकर्ता : 'मेरी माया बदली जा सके ऐसी नहीं है, बहुत मुश्किल है' ऐसा भगवान ने कहा है न!

दादाश्री : इतनी अधिक मुश्किल है कि वह माया हिलती ही नहीं। तब फिर छूटेगी ही कैसे? सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' ही इस माया से मुक्त करवा सकते हैं। क्योंकि वे खुद इस माया से मुक्त हो चुके हैं इसलिए

माया से मुक्त कर देते हैं, नहीं तो यह माया जाए ही नहीं न!

शुद्धता की शंका का शमन किस तरह?

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* और आत्मा जब अलग होते हैं, तब मुक्त होते हैं न?

दादाश्री : *पुद्गल* को कुछ लेना-देना नहीं है। जब आत्मा खुद का स्वरूप समझ ले, उसका भान हो जाए, तब प्रकट होता है, और उसे चख लिया तो काम हो जाता है। यानी कि आत्मा का और *पुद्गल* का लेना-देना नहीं है। ये 'चंदूभाई' तो आत्मा से बाहर हैं। आत्मा से तो कितने ही दूर गए, तब 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा बोलते हैं।

पूरे संसारकाल में आत्मा, आत्मा ही रहा है और किंचित् मात्र भी चला नहीं है। ठेठ अंत में जब मोक्ष में जाने का समय आता है न, तब भी गतिसहायक तत्व उसे ले जाता है। उसमें आत्मा, आत्मा ही रहता है। मेरा कहना यह है कि आत्मा को कुछ अड़चन नहीं पड़ सकती, ऐसा यह संसारकाल है। लेकिन वह तो अंदर अहंकार खड़ा हो जाता है, वही सबकुछ वेदता है, *शाता* (सुख परिणाम) का वेदन करता है और *अशाता* (दुःख परिणाम) का भी वेदन करता है। इस वेदन से ही उत्पन्न हो गया है यह सब। रोंग बिलीफ़ उत्पन्न हो गई है। 'आत्मा बदला नहीं है, आत्मा बिगड़ा नहीं है। यहाँ पर हम उसकी भ्रांति को खत्म कर देते हैं और आत्मा तो संपूर्ण ही दे देते हैं।'

कोई पूछे कि, 'अज्ञानी का आत्मा महावीर भगवान जैसा ही है?' हाँ! द्रव्य, गुण, पर्याय से सर्वथा वैसा ही है। लेकिन जब तक उसका अहंकार जाता नहीं, तब तक निःशंकता उत्पन्न नहीं होती न! क्योंकि शंका करनेवाला अहंकार ही है। अतः जब तक यह अहंकार है, तब तक कोई जीव निःशंक हो ही नहीं सकता और उसकी शंका जाती नहीं। 'ज्ञानीपुरुष' के बिना किसीकी शंका नहीं जा सकती। जब 'ज्ञानीपुरुष' शंका को निर्मूल कर देते हैं, तब वह निःशंक हो जाता है।

दर्शन बदला, आत्मा नहीं

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा पर दूसरे तत्व असर कर सकते हैं?

दादाश्री : करते ही हैं न! ये सब दूसरे तत्वों ने ही असर किया है न! जब यहाँ से खुद सिद्धक्षेत्र में जाता है कि जहाँ अन्य तत्व नहीं हैं, तब वहाँ उस पर कोई असर नहीं होता। जब तक दूसरे सभी तत्व हैं, तब तक असर होता रहता है। लेकिन 'ज्ञानीपुरुष' द्वारा उसे असर मुक्त कर दें, उसके बाद 'वह' मोक्ष में चला जाता है। फिर भी पूरे व्यवहारकाल में 'आत्मा' ज़रा-सा भी नहीं बिगड़ा है। सिर्फ, जो भ्रांति पड़ गई है, जो दर्शन उल्टा हो गया है, वह दर्शन 'ज्ञानीपुरुष' सीधा कर देते हैं, इसलिए 'वह' असरमुक्त हो जाता है और फिर मोक्ष में चला जाता है।

अब यह दर्शन उल्टा किस तरह से हो गया है? उत्तर प्रदेश में जाएँ, तो वहाँ पर बंदर बहुत होते हैं। उन्हें पकड़ने के लिए ये लोग क्या करते हैं? एक सकड़े मुँह के घड़े में चने डालकर उसे पेड़ के नीचे रख आते हैं। उसके बाद चने लेने के लिए बंदर पेड़ पर से नीचे उतरते हैं और चने लेने के लिए घड़े में हाथ डालते हैं। वह चने लेते समय हाथ धीरे से दबाकर डालता है, लेकिन चने लिए और मुट्ठी बनाई, इसलिए फिर हाथ बाहर नहीं निकलता। फिर चीख-चिल्लाहट मचा देता है। फिर भी वह बंद मुट्ठी नहीं छोड़ता। वह क्या समझता है? कि मुझे अंदर से किसीने पकड़ लिया है, ऐसा उसे लगता है। जब अंदर हाथ डाला था, तब मैंने डाला था, लेकिन अब यह निकलता क्यों नहीं? तब उसे भ्रांति हो जाती है, *आँटी* (गाँठ पड़ जाए उस तरह से उलझा हुआ) पड़ जाती है कि 'किसीने मुझे पकड़ लिया', इसलिए चीख-चिल्लाहट मचा देता है, लेकिन मुट्ठी नहीं छोड़ता। उसी तरह ये लोग, पूरी दुनिया हो-हल्ला मचा देती है लेकिन मुट्ठी नहीं छोड़ती।

निबेड़ा लाने का तरीक़ा अनोखा

ऐसा है, यह दृष्टि तो कैसी है? ऐसे बैठे हों तो हमें एक ही लाइट के बदले दो लाइट दिखती हैं। आँख ज़रा ऐसी हो जाए तो दो दिखती

हैं या नहीं दिखतीं? अब वास्तव में तो एक ही है। फिर भी दो दिखती हैं। हम प्लेट में चाय पी रहे हों, तो कई बार प्लेट के अंदर जो सर्कल होता है न, वह दो-दो दिखते हैं। इसका क्या कारण है? कि दो आँखें हैं, इसलिए सबकुछ डबल दिखता है। ये आँखें भी देखती हैं और वे अंदरवाली आँखें भी देखती हैं। लेकिन वह मिथ्यादृष्टि है। इसलिए ऐसा सबकुछ उल्टा दिखाती है। अगर सीधा दिखाए तो सभी *उपाधियों* से रहित हो जाए, सर्व *उपाधि* रहित हो जाए। वीतराग विज्ञान ऐसा है कि सर्व दु:खों का क्षय करनेवाला है, यह विज्ञान ही ऐसा है कि सर्व दु:खों से मुक्त कर देता है। और 'विज्ञान' होता ही ऐसा है, विज्ञान हमेशा क्रियाकारी होता है। अत: इस विज्ञान को जानने के बाद विज्ञान ही काम करता रहता है, आपको कुछ भी करना नहीं पड़ता। जब तक आपको करना पड़ता है, तब तक बुद्धि है और जब तक बुद्धि है तब तक अहंकार है और अहंकार है, तब तक इसका निबेड़ा लाना हो तो भी नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : इस दृष्टि को बदलने की शुरूआत किस तरह से हो सकती है?

दादाश्री : दृष्टि बदलने की शुरूआत तो, जब 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ और उनके पास सत्संग सुनने आओ तो आपकी दृष्टि धीरे-धीरे बदल जाएगी। अभी आप सुन रहे हो तो थोड़ी-थोड़ी आपकी दृष्टि बदल रही है। ऐसे करते-करते थोड़ा परिचय हो जाए, एकाध महीने, दो महीनों का, तो दृष्टि बदलेगी। और नहीं तो 'ज्ञानीपुरुष' से कहो, 'साहब, मेरी दृष्टि बदल दीजिए।' तो एक दिन में, एक घंटे में ही बदल देंगे।

'ज्ञान' तो करे ओपन 'हक़ीक़त'

यह तो भ्रांति की *आँटी* पड़ गई है। बाकी, आत्मा को कुछ भी हुआ नहीं है। आत्मा जैसा है वैसा ही है। उस पर सिर्फ आवरण की *आँटी* पड़ गई है और उससे 'इगोइज़म' पैदा हो गया है। फिर सभी का,पूरा 'इगोइज़म' सभी चीज़ों का कर्ता-भोक्ता बनता है, वह दु:ख भी भोगता है और सुख भी वही भोगता है।

यह तो बुद्धिशालियों को बुद्धि से ऐसा भासित होता है कि आत्मा कुछ करता है, इसलिए वह भोगता है। अब, पूरा ही जगत् बुद्धि के अधीन है। क्योंकि जब तक 'मैं' है, अहंकार है, तब तक बुद्धि के अधीन है, तब तक बुद्धि के 'थ्रू' देखता रहता है। अत: सत्य वस्तु का निरीक्षण नहीं हो पाता। बाकी, 'एक्ज़ेक्ट' ज्ञान को जगत् में ज्ञानी खुला नहीं करते, फिर भी हम खुला बता देते हैं इस दुनिया को कि 'एक्ज़ेक्ट' ज्ञान से जानना हो तो 'आत्मा ने ऐसा कुछ किया ही नहीं है'। यह जो दिखता है न, वैसा कुछ भी हुआ ही नहीं है। यह तो सिर्फ बिलीफ़ ही रोंग है। अत: 'रोंग बिलीफ़' यदि कभी कोई बदल दे, तो वापस जैसा था, वैसे का वैसा ही हो जाएगा। आत्मा का कोई भी भाग बिगड़ा ही नहीं है, उसे कोई भी परेशानी आई ही नहीं। जो 'बिलीफ़ रोंग' हुई है, उस बिलीफ़ को कोई पूरा पलट दे तो वापस जैसा था, वैसे का वैसा ही हो जाएगा, खुद के स्वरूप में आ जाएगा और खुद की शक्तियाँ विकसित हो जाएँगी।

मात्र बिलीफ़ बदल गई है। बाकी, आत्मा ऐसा-वैसा कुछ करता ही नहीं। आत्मा तो परमात्मा ही है। आत्मा में ऐसा एक भी 'करने का' गुण होता न, तो वह सांसारिकता से कभी भी मुक्त ही नहीं हो पाता। आत्मा खुद निर्लेप ही है, असंग ही है, लेकिन यदि समझ में आ जाए तो, नहीं तो भगवान की बात आपको समझ में नहीं आएगी। ऐसा है, सुननेवाले बुद्धिशाली और बोलनेवाले ज्ञानी, अब इन दोनों का मेल किस तरह बैठेगा? सुननेवाला बुद्धिशाली है, वह बुद्धि के नाप से नापता है, जब कि ज्ञानी तो ज्ञानी के नाप से बोलते हैं। वह इन तक पहुँचेगा किस तरह? फिर सब अपनी-अपनी भाषा में समझ जाते हैं।

यह तो सिर्फ 'रोंग बिलीफ़' ही बैठ गई है। वास्तव में 'एक्ज़ेक्टली फिगर' देखने जाएँ तो आत्मा को पूरी संसारदशा में 'रोंग बिलीफ़' ही थी, और कुछ भी नहीं। यह 'रोंग बिलीफ़' निकल गई तो बाकी कुछ हुआ ही नहीं है। कर्म आत्मा को नहीं चिपकते। 'रोंग बिलीफ़' से प्रकृति उत्पन्न हो गई है।

अभी शीशे के सामने आप जाओ तो शीशे से क्या आपको कहना

पड़ता है कि मेरा चेहरा बता? कुछ कहना नहीं पड़ता न? ऐसा क्यों? और फिर भी वह 'एक्ज़ेक्ट' चेहरा दिखाता है न? बिना किसी कमी या ख़राबीवाला दिखाता है न? अब शीशे का यह प्रयोग हर रोज़ का हो गया है, इसलिए इसकी क़ीमत महसूस नहीं होती। बाकी, इसकी क़ीमत बहुत ही समझने जैसी है।

अभी घर में आपकी परछाई दिखती है? नहीं। और बाहर रास्ते पर निकलोगे तो परछाई पड़ेगी। उसके बाद फिर आप अगर ऐसे घूमोगे तो भी परछाई पड़ेगी और आप वैसे घूमोगे तो भी परछाई पड़ेगी। उस परछाई को बनाने में कितना समय लगता हैं? अत: 'ऑन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है यह जगत्। कुछ भी हुआ नहीं है, कुछ भी बना नहीं है। जगत् तो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' ही है। इसमें भगवान को कुछ भी नहीं करना पड़ा। यह प्रकृति उत्पन्न होती है, वह भी 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' से है और प्रकृति इफेक्टिव है। ये मन-वचन-काया इफेक्टिव हैं, और उस इफेक्टिव का 'आत्मा' पर असर होता है। क्योंकि 'खुद' की 'रोंग बिलीफ़' बैठी हुई है। 'ज्ञानीपुरुष' उस 'रोंग बिलीफ़' को बदल देते हैं, फिर 'उस' पर यह सब असर नहीं होता।

संसारकाल में, अमल अज्ञानता का ही

प्रश्नकर्ता : तो चैतन्य अगर शुद्ध हो जाए, तो वापस उसे आना पड़ेगा?

दादाश्री : आना ही नहीं पड़ेगा न! एक बार शुद्धता में आ गया कि अहंकार गया, बाद में फिर आना ही नहीं पड़ेगा। जब तक अहंकार है, तब तक बीज डालता है कि 'मैंने किया' और उसमें से वापस अहंकार उत्पन्न होता है। जब तक 'मैंने किया' ऐसा मानता है, तब तक वापस अहंकार उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा पहले से ही अशुद्ध ही होना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, आत्मा शुद्ध ही है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा अशुद्ध हुआ ही कैसे?

दादाश्री : वह तो लोगों ने 'शांति, शांति' कहा न! ये लोग अज्ञानता का प्रदान करते हैं न, उससे दर्शन बदल जाता है। पूरा दर्शन पलट जाता है, उसका अमल (प्रभाव) है।

जैसे कि अभी एक सेठ हैं, वे पूरे दिन अच्छी तरह बाते करते हैं,। न्याय-नीति की कैसी सब बातें करते हैं। यों तो विनयवाले, लेकिन अगर आधा सेर दारू पी जाएँ तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : फिर पागलपन छा जाएगा।

दादाश्री : तो क्या सेठ बिगड़ गए? नहीं, यह तो दारू का अमल है। वैसे ही यह अज्ञान का अमल हो गया है।

प्रश्नकर्ता : हम यदि शुद्ध थे किसी समय, तो मलिन हुए ही किस तरह?

दादाश्री : वे सेठ अभी अच्छी तरह से बैठे थे, उसके बाद आधा सेर पी ली तो मलिन किस तरह से हो गए? वही के वही सेठ फिर कुछ भी बोलने लगें। 'मैं सयाजीराव महाराज हूँ' ऐसा-वैसा बोलने लगें, तभी से हम नहीं समझ जाएँगे कि सेठ को चढ़ गई है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन पहले तो शुद्ध था न? तो उसमें इतनी भी शक्ति नहीं थी, तो फिर से वह अशुद्ध कैसे हो गया?

दादाश्री : शुद्ध ही है, अभी भी शुद्ध ही है, कुछ भी हुआ ही नहीं है। यह तो अमल है। अमल खत्म हो जाए तो कुछ हुआ ही नहीं है। तो कल चंदूभाई थे और दूसरे दिन अमल उतर गया यानी शुद्ध ही हो गए। दूसरे दिन एक ही घंटे में शुद्ध हो गए, आत्मा अगर अशुद्ध हो जाता तो एक घंटे में शुद्ध किस तरह से हो पाएगा? यह तो जिस तरह सेठ दारू पीकर बोलता है न, वैसे ही यह नशा चढ़ा है, अमल है। इसलिए 'इसे' 'मैं चंदूभाई, मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा नशा चढ़ गया है, 'रोंग बिलीफ़' बैठ गई है!

प्रश्नकर्ता : आपने कहा, आत्मा शुद्ध ही था। तो उसके बजाय किसी अन्य अशुद्ध शक्ति का ज़ोर अधिक है, तभी आत्मा अशुद्ध हो सकेगा न?

दादाश्री : आत्मा अनंत शक्तिवाला है, उसी तरह *पुद्‌गल* भी अनंत शक्तिवाला है! यह *पुद्‌गल* शक्ति जो है इसने तो पूरे आत्मा को बाँध ही दिया है, छूटने ही नहीं देता अब। यानी कि जड़ की भी अनंत शक्ति है। ये अणुबम डाले थे, वह नहीं देखा था? अर्थात् जड़ की भी अनंत शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : जड़ की शक्ति, आत्मा की शक्ति से अगर अधिक मानी जाए तो वह फिर से आत्मा को ले जाएगी?

दादाश्री : फिर से मतलब?

प्रश्नकर्ता : क्यों? शुद्ध होने के बाद फिर से अशुद्धि में ले जाए तो?

दादाश्री : नहीं। शुद्ध होने के बाद उसे कुछ भी स्पर्श ही नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पहले शुद्ध तो था ही न? वही फिर अशुद्ध हो गया था न?

दादाश्री : मूल स्वरूप से शुद्ध ही है। लेकिन यह जो दर्शन बिगड़ गया है न, वह दर्शन फिर से शुद्ध हो जाता है, इसलिए फिर अहंकार खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मेरा यही कहना है कि आत्मा शुद्ध था, निर्विकारी था...

दादाश्री : और अभी भी निर्विकारी है।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है। लेकिन आपने कहा न कि जड़शक्ति ने बाँध दिया है?

दादाश्री : इसका मतलब क्या है कि आत्मा की शक्ति आवृत हो गई है और आवृत हुई इसलिए फिर उस शक्ति का इस जड़शक्ति में

मिक्सचर हो गया। वह जड़शक्ति ही अब ऊपर चढ़ बैठी हैं, उससे छूटना हो तो भी छूटा नहीं जा सकता। वह तो ज्ञानी के पास जाए तब छूटता है, नहीं तो लाख जन्मों तक भी वह छूटता नहीं है। इसके बजाय लोहे की सांकल होती तो काटकर छूट जाते, लेकिन यह सांकल तो टूटती नहीं है न! और जैसे शराब पीने पर उसका अमल चढ़ता है, उसी तरह यहाँ पर अहंकार का अमल है। उससे गाड़ी चलती रहती है।

प्रश्नकर्ता : अमल भले ही है, फिर भी आत्मा तो शुद्ध ही रहा है न?

दादाश्री : ऐसा है, आत्मा बिल्कुल उदासीन है। जब तक 'आप' 'अहंकार' में हो, तब तक 'आत्मा' उदासीन है। आत्मा का इसमें राग भी नहीं और द्वेष भी नहीं है। वह तो क्या कहता है कि 'जब तुझे अनुकूल आए तब मेरे पास आना। जब तेरा सारा हिसाब साफ हो जाए, तुझे जो-जो अच्छा लगता है वह सब पूरा हो जाए तब आना।' आपको समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : मेरा कहने का मतलब यह है कि जब आत्मा शुद्ध था, तो फिर शुद्ध को कोई अशुद्ध कर ही नहीं सकता, तो यह अशुद्ध क्यों हो गया?

दादाश्री : वह अशुद्ध हुआ ही नहीं। सिर्फ उसकी एक शक्ति, दर्शनशक्ति आवृत हो गई है। जैसे कि ये सेठ अभी शुद्ध ही हैं और अगर दारू पी लें तो उनकी कोई एक शक्ति आवृत हो जाती है, जिससे वे उल्टा-सुल्टा बोलने लगते हैं। उसी तरह ये 'मैं चंदूभाई हूँ' बोलते हैं। लोगों ने 'आपको' 'चंदूभाई' कहा और 'आपने' मान लिया, इसलिए एक शक्ति आवृत हो गई। वह आवृत हुई इसलिए यह उल्टा हुआ है। उसका नशा अगर कोई उतार दे तो ठीक हो जाएगा। इसमें और क्या हुआ है भला? और कुछ हुआ ही नहीं है न। जैसा सेठ का हुआ है, वैसा ही हो गया है। सेठ पर आवरण आता है या नहीं आता? सारी समझ आवृत हो जाती है न! ऐसा ही यह हुआ है।

प्रश्नकर्ता : इस बात को तो हम मान लेते हैं, लेकिन मूल शुद्धात्मा जो है, उसकी शक्ति यदि अधिक हो तो फिर अमल कैसे चढ़ेगा?

दादाश्री : लेकिन उसकी शक्ति अभी है ही नहीं न! अभी मूल आत्मा तो संपूर्ण उदासीन है।

प्रश्नकर्ता : पहले से ही उदासीन है?

दादाश्री : वह हमेशा के लिए उदासीन ही है, वीतराग ही है। वह तो क्या कहता है कि जब तक 'आपको' यह सब अच्छा लगता है, तब तक यह करो और जब अच्छा नहीं लगे तब मेरा नाम याद करो और 'ज्ञानीपुरुष' का या कोई भी अवलंबन लेकर मेरे पास वापस आ जाना। जब तक बाहर अच्छा लगता है तब तक भटको, अनुकूल हो तब तक घूमो, वर्ना वापस 'खुद के पास आ जाओ', कहते हैं।

इतना ही यदि समझ जाए कि 'सेठ शराब पीते हैं और उनमें बदलाव हो जाता है' तो सभी प्रश्नों का सोल्युशन आ जाएगा। इसमें भी सिर्फ इतनी ही शराब पिलाई है कि 'तू चंदू है, चंदू है।' और बस इतनी ही शराब पी, उससे 'आपमें' 'अहंकार' खड़ा हो जाता है कि 'मैं चंदू हूँ', ऐसा अहंकार फिर उत्पन्न होता ही रहता है। यानी यह तो सारा अमल हो गया है और बात भी सारी अमलवाली ही करता है। नशे में ही सारी बातें चलती हैं और उस बात का एन्ड ही नहीं आता।

बाकी, आत्मा तो संपूर्ण संसारकाल में उदासीन ही है। अब यह बात लोगों को किस तरह समझ में आए? एक आधा सेर शराब पी और उस सेठ में परिवर्तन हो जाता है, तो यह तो रोज़ की शराब है! सुबह उठा तब से लोग शराब पिलाते रहते हैं। लोग नहीं कहते कि, 'आओ चंदूभाई, आओ चंदूभाई। आप तो हमारे समधी हैं, आप इनके पति है, आप इनके मामा है, इनके चाचा है' और फिर 'आप' भी ऐसा मान लेते हो। यानी कि यही शराब पी है और इससे निरा नशा ही चढ़ता रहता है। यह शराब पीकर ही आप बोल रहे हो और फिर कहते हो, 'मैंने शराब कहाँ पी?' पूरी दुनिया यही शराब पीकर घूम रही है। यह तो, जब वह शराब

(अल्कोहल) भी पीता है न, तब लोग उसकी शराब को भला-बुरा कहते हैं। अरे, उस शराब को क्यों भला-बुरा कहते हो?

'कर्म का कर्ता' कौन?

वास्तविकता जानने के बाद कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। फिर 'खुद' ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी और सानतन सुख का स्वामी बन जाता है, फिर कोई मालिकीपन नहीं रहता। और फिर इस संसार में जो सुख दिखते हैं, वे सभी आरोपित सुख हैं। 'आत्मा' की ओर तो निरा सुख ही है, लेकिन 'आपने' बाहर सब जगह आरोपण किया है कि इन चीज़ों में सुख है, इसमें सुख है, इसलिए उसमें 'आपको' सुख मिलता है, लेकिन सुख उनमें नहीं होता। सुख खुद के स्वभाव में है।

प्रश्नकर्ता : तो इस भ्रांति को रोके कौन?

दादाश्री : इस भ्रांति को 'ज्ञानीपुरुष' रोक सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं अभी आपसे ज्ञान लेकर जाऊँ, फिर कल जाकर अंदर जो भ्रांति है, वह वापस वही का वही करवाएगी न कि, 'नहीं भाई, तुझे यह करना ही चाहिए, नहीं तो तेरा काम नहीं चलेगा।'

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। फिर तो प्रकाश हो जाएगा न! ऐसा है न, वे सेठ शाम को इतनी सी ही पीकर बैठ जाएँ तो फिर क्या कहते हैं कि, 'मैं तो फ़लाना राजा हूँ।' ऐसा किसलिए बोलता है? वह सेठ पागल हो गया है? नहीं! शराब के नशे (अमल) से उसे भ्रांति उत्पन्न हो गई है।

प्रश्नकर्ता : वह जिस परिस्थिति में आ गया है, उसमें उसे आत्मा ने रखा या भ्रांति ने रखा? और आत्मा क्या उसे कंट्रोल नहीं कर सकता?

दादाश्री : आत्मा को इसमें लेना-देना है ही नहीं। यह सब तो अहंकार का ही है। जो भोगता है, वह अहंकार ही भोगता है। यह दुःख भोगता है, वह भी अहंकार है और जो सुख भोगता है, वह भी अहंकार

है। और 'अहंकार' खत्म हो जाए तो 'आप' 'आत्मा' हो गए और मुक्ति के लायक हो गए। अहंकार से तो यह पूरा संसार खड़ा है और अहंकार से ही राग-द्वेष हैं और 'अहंकार' से ही 'आप' कर्म के कर्ता हो। जब 'अहंकार' नहीं रहेगा, तब 'आपको' कर्म का कर्तापन नहीं रहेगा। अभी 'आप' कर्म के कर्ता हो, इसलिए भोक्ता हो। 'आपको' यह कर्तापन भ्रांति से उत्पन्न होता है।

जब तक सेठ ने शराब नहीं पी थी, तब तक कुछ भी उल्टा नहीं बोल रहे थे, लेकिन जब से शराब पी, तब से उल्टा-सीधा बोलने लगे। और इसमें किसीको गाली दे दें, तो वह कर्म दारू के नशे में किया कहा जाएगा, भ्रांति में किया है, ऐसा कहा जाएगा। लेकिन फिर भुगतना तो पड़ेगा न? वह फिर छोड़ेगा नहीं न? कि आप तो मुझे शराब पीकर गालियाँ दे रहे थे, ऐसे झगड़ा करेगा न? इस तरह से ये कर्म भुगतने पड़ते हैं। और जब तक 'खुद' कर्म का कर्ता बनता है, तब वह 'खुद' कर्म को आधार देता है, 'मैं कर रहा हूँ'। अहोहोहो! संडास जाने की शक्ति नहीं है और क्या कहता है कि 'मैं कर रहा हूँ यह सब।' इसीसे ये सारे कर्म बंधते हैं और फिर चारों गतियों में भटकता रहता है। जब 'ज्ञानी' के पास से बात को समझ ले, तो भटकना बंद हो जाएगा।

अशुद्धता की उत्पत्ति किसमें?

प्रश्नकर्ता : कितनी ही सावधानी रखने के बावजूद आत्मा में से अशुद्ध पर्याय क्यों उठते हैं?

दादाश्री : लेकिन इससे 'आपको' क्या फ़ायदा?

प्रश्नकर्ता : हमें कर्म बंधन होता है न?

दादाश्री : तो 'आपमें' से अशुद्ध पर्याय उठेंगे तो 'आपको' ही बंधन होगा न! 'आत्मा' में से उठते ही नहीं। आत्मा में अशुद्ध पर्याय होते ही नहीं। यानी अगर वस्तुस्थिति में बात को समझना हो तो ये अशुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्याय वगैरह 'आपमें' ही उठते हैं।

आपको मूल हक़ीक़त बता देता हूँ। दो प्रकार के आत्मा हैं, एक मूल आत्मा है और उस मूल आत्मा के कारण उत्पन्न होनेवाला दूसरा यह व्यवहार आत्मा है। मूल आत्मा निश्चय आत्मा है, उसमें कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं है। वह जैसा है वैसा ही है और उसकी वजह से व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है। जिस तरह हम शीशे के सामने जाएँ, तब दो 'चंदूभाई' दिखते हैं या नहीं दिखते?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दो दिखते हैं।

दादाश्री : उसी तरह यह व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है। उसे मैंने 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहा है। उसमें खुद की प्रतिष्ठा की हुई है, इसलिए अगर अभी भी 'आप' प्रतिष्ठा करोगे, 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई हूँ' करोगे तो फिर से अगले जन्म के लिए प्रतिष्ठित आत्मा खड़ा हो जाएगा। इस व्यवहार को सत्य मानोगे तो फिर से व्यवहार आत्मा उत्पन्न होगा। निश्चय आत्मा तो वैसे का वैसा ही है। यदि उसका स्पर्श हो जाए न, तो कल्याण हो जाए! अभी तो व्यवहार आत्मा का ही स्पर्श है।

यह तो अहंकार उत्पन्न हो गया है। लोग कहते हैं, 'आत्मा को दुःख पड़ रहा है। मेरा आत्मा बिगड़ गया है।' तो भाई, अगर आत्मा बिगड़ा हुआ है, तो कभी भी सुधरेगा ही नहीं। जिसमें बिगड़ने की शक्ति है तो वह वस्तु सुधरेगी ही नहीं और यहाँ पर बिगड़ता है तो फिर वहाँ सिद्धक्षेत्र में भी बिगड़ेगा। आत्मा वैसा नहीं है। आत्मा जैसा सिद्धक्षेत्र में है, वैसा ही यहाँ पर है। लेकिन वह निश्चय आत्मा है और व्यवहार आत्मा बिगड़ा हुआ है। अब, बिगड़ा हुआ व्यवहार है, उस व्यवहार को शुद्ध करना है। यदि 'ज्ञानी' नहीं मिलें तो व्यवहार को शुभ करना है और यदि 'ज्ञानी' मिल जाएँ तो शुद्ध व्यवहार करना है। बस, इतना ही करना है।

यानी कि आत्मा में से अशुद्ध पर्याय उठते ही नहीं। सभी अशुद्ध पर्याय व्यवहार आत्मा में से हैं। अब वे पर्याय तो, बहुत ही सूक्ष्म, सूक्ष्मत्तर अवस्था को पर्याय कहते हैं। ये तो सब स्थूल अवस्थाएँ है, अशुद्ध अवस्थाएँ है, स्थूल अवस्थाएँ है। 'मैं चंदूभाई हूँ' यह अवस्था क्या ऐसी-वैसी है?

'व्यवहार आत्मा', को माना गया 'निश्चय आत्मा'

प्रश्नकर्ता : व्यवहारिक आत्मा और निश्चय आत्मा, इन दोनों के अलग-अलग गुण हैं?

दादाश्री : वे अलग ही होते हैं न! निश्चय आत्मा अर्थात् मूल आत्मा।

प्रश्नकर्ता : इसमें आत्मा एक ही और गुण अलग हैं, ऐसा है?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। एक आदमी छिंवारों का बड़ा ऐजेन्ट है, सभी लोग उसे कहते हैं 'ये छिंवारेवाले सेठ हैं।' लेकिन कोर्ट में वे वकील माने जाते हैं। वे वकालत करेंगे तो वकील माने जाएँगे न? उसी तरह 'आप' अगर व्यवहारिक कार्य में मस्त हो तो 'आप' 'व्यवहारिक आत्मा' हो और निश्चय में मस्त हो, तो 'आप' 'निश्चय आत्मा' हो। मूल तो आप वही के वही हो लेकिन किस कार्य में हो, उस पर आधारित है।

इस तरह व्यवहारिक आत्मा को इन लोगों ने निश्चय आत्मा मान लिया। बोलते ज़रूर हैं कि व्यवहारिक आत्मा, लेकिन उनके ज्ञान में तो उसे निश्चय आत्मा ही समझते हैं। वे समझते हैं कि, 'जो आत्मा है वह यही आत्मा है और आत्मा नहीं होगा तो बोलेंगे किस तरह? चलेंगे किस तरह?' ये चलना-फिरना, बातचीत करना, स्वाध्याय करना, मैं पढ़ता हूँ और मुझे याद रहता है, इन सब के लिए कहेगा की 'यही आत्मा है। दूसरा कोई आत्मा है ही नहीं।' ऐसा वह समझता है। जब कि यह सब तो आत्मा की परछाई ही है। इस परछाई को पकड़ेगा तो करोड़ों जन्मों तक भी तू मूल आत्मा को नहीं ढूँढ पाएगा। अक्रम विज्ञान ने तो यह बताया है कि परछाई को किसलिए पकड़ते हो? इसके बावजूद भी क्रमिक मार्गवाली वह लाइन गलत नहीं है। लेकिन परछाई को ही आत्मा मानते हैं। आत्मा को आत्मा मानो और परछाई को परछाई मानो, मैं ऐसा कहना चाहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : मान्यता में ही बड़ी भूल हुई है।

दादाश्री : मान्यता में भूल हो जाए तो सारी भूल ही है। फिर बचा ही क्या?

'रूपक' की निर्जरा, लेकिन 'बिलीफ़' से 'बंध'

प्रश्नकर्ता : यानी कि एक प्रतिष्ठित आत्मा और दूसरा शुद्धात्मा?

दादाश्री : निश्चय आत्मा, वह शुद्धात्मा है और जो व्यवहार में चलता है, वह व्यवहार आत्मा है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। क्योंकि 'हम' लोग ही उसकी प्रतिष्ठा करते हैं। अभी यदि कोई ऐसा मनुष्य हो जिसने 'ज्ञान' प्राप्त नहीं किया हो और उसका नाम चंदूलाल हो, तो 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं इसका मामा हूँ, मैं इसका चाचा हूँ' वह जो कुछ बोल रहे हैं, वह पहले का कर्म है, उसी कर्म को रूपक में बोलते हैं। पहले जो योजना के रूप में था न, वह अब रूपक में आया। अब रूपक में आया उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन फिर से वैसे का वैसा ही उसकी श्रद्धा में है, इसलिए वापस उसका बीज डलता है। तो इस प्रकार से वह प्रतिष्ठा करता है, देह में ही प्रतिष्ठा करता है कि, 'यह मैं हूँ।' इसलिए फिर वापस देह उत्पन्न होता है, मूर्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार से प्रतिष्ठा कर-करके नई मूर्ति उत्पन्न करता है और पुरानी मूर्ति खत्म होती जाती है। और वह प्रतिष्ठा की है, इसलिए वह फल देती ही रहती है।

प्रतिष्ठित आत्मा की मान्यता ही है, वह 'रोंग बिलीफ़' उत्पन्न हो गई है इसलिए प्रतिष्ठा ही करता ही रहता है। 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ।' उससे पिछली प्रतिष्ठा खत्म होती है और नई प्रतिष्ठा उत्पन्न होती है। एक तो कहता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ', फिर 'इसका मामा हूँ, यह विचार मुझे आया।' अब पिछली प्रतिष्ठा का *आश्रव* है। उस *आश्रव* की फिर *निर्जरा* होती है। *निर्जरा* होते समय फिर से वैसी ही डिज़ाइन गढ़ने के बाद में *निर्जरा* होती है। अब जिसे यह ज्ञान दिया हुआ हो, वह क्या कहता है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ और इसका मामा हूँ' ऐसा बोलता है, वह पिछली प्रतिष्ठा का ही है। लेकिन आज ज्ञान है, इसीलिए 'वास्तव में मैं चंदूभाई हूँ' ऐसी श्रद्धा खत्म हो चुकी है, इसलिए नई प्रतिष्ठा नहीं करता। इसलिए वह *संवर* कहलाता है, बंध पड़ता नहीं और उसे *निर्जरा* होती रहती है। बंध किसे कहते हैं? जहाँ पर ज्ञान नहीं होता, वहाँ पर बंध पड़ता है। यानी जैसी हम प्रतिष्ठा करते हैं, वैसी ही वापस फिर से प्रतिष्ठा उत्पन्न हो जाती है।

अब यदि कोई व्यक्ति कहे कि, 'चोरी करनी ही चाहिए' और वह चोरी करता हो, रिश्वत लेता हो, लोगों के साथ अच्छी–अच्छी बातचीत करे और कहे कि, 'मैं ऐसा कर दूँगा, मैं वैसा कर दूँगा, तेरा सभी काम पूरा कर दूँगा।' और उससे हज़ार रुपये रिश्वत लेता है, ये सारे कार्य जो करता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। यह योजना थी जो रूपक में आई है। वह जो बातें करता है वह भी रूपक है, उसे जो रिश्वत देनेवाला मिला वह भी रूपक है, और हज़ार रुपये लेता है वह भी रूपक है। रिश्वत लेता है, रिश्वत लेने के भाव, उसका वह 'डिसाइडेड' है और वह भी राज़ी–खुशी से लेता है। लेकिन बाद में अगर मन में भाव हो, अब इसने 'ज्ञान' नहीं लिया है, और यदि इसे ऐसा भाव हो कि, 'ये सब रिश्वत लेकर भुगतना तो मुझे ही पड़ेगा न? यह रिश्वत नहीं लेनी चाहिए।' यह अगले जन्म के प्रतिष्ठित आत्मा में 'रिश्वत नहीं लेनी चाहिए', ऐसी योजना बन गई। तो अगले जन्म में फिर वह रिश्वत नहीं लेगा। आपको समझ में आती है यह रूपरेखा?

अब कुछ लोग ऐसे हैं जो रिश्वत नहीं लेते। उस व्यक्ति को उसके घर पर उसकी पत्नी कहती है, 'ये आपके साथ में जो लोग पढ़ते थे, उन सबने बंगले बनवा दिए, आप अकेले ही किराए के मकान में रहते हो।' तब फिर उसे लगता है कि 'यह तो मेरी भूल है या क्या है यह?' वह खुद के सिद्धांत को सही मानता है, उसे खुद को श्रद्धा है कि मेरा सिद्धांत गलत नहीं है, यह सिद्धांत सुखदायी है, यह सब वह जानता है। जब उसकी पत्नी उसे ऐसा कहती है, तब उसके मन में ऐसा होता है कि, 'रिश्वत नहीं लेता हूँ, यह मेरी भूल हो रही है।' तब कुबुद्धि घेर लेती है कि, 'भाई, अपने को उसका काम करना ही है, तो फिर रिश्वत लेने में क्या हर्ज है?' उसके बाद वह यह भाव करता है कि रिश्वत लेनी ही चाहिए। इसलिए फिर वह उस व्यक्ति से कहता है कि, 'मैं तेरा काम कर दूँगा।' तब वह आदमी कहता है, 'साहब, मैं पाँच सौ रुपये दूँगा।' लेकिन जब वह पैसे देने आता है, तब उससे लिया नहीं जाता, अंदर घबराहट हो जाती है, परेशानी हो जाती है। क्योंकि पूर्व जन्म में प्रतिष्ठा की है कि, 'रिश्वत लेना गलत है, रिश्वत लेनी ही नहीं चाहिए', वह रिश्वत नहीं लेने देती। वह

उससे कहता ज़रूर है कि तू लेकर आना, लेकिन जब वह पैसे हाथ में लेता है, उस घड़ी काँप जाता है, स्पर्श नहीं होना देता। यानी उससे एक भी पैसा नहीं लिया जाता। लेकिन अगले जन्म के लिए 'रिश्वत लेनी है', उसमें वापस ऐसा नया बीज पड़ जाता है। इस जन्म में कुछ भी लिया नहीं और अगले जन्म के लिए बीज डाल दिए। इतनी बड़ी दुनिया में मनुष्य कैसे-कैसे बीज नहीं डालता होगा? और किस-किस तरह से फँसता होगा, उसका क्या पता चले? आपको समझ में आया न? सिद्धांत है न? पूरी तरह से सैद्धांतिक है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अपने यहाँ पर पाँच वर्ष की योजना बनाते हैं, उसमें 'पहले वर्ष में इस तरह से किस-किस जगह पर बाँध बनवाने हैं, इस जगह पर ऐसा करना है, इस जगह पर ऐसा करना है', ऐसा सब तय करते हैं। फिर वह सब कागज़ पर लिखते हैं और ड्रॉइंग वगैरह सब कागज़ पर तैयार हो जाता है। वह जब सेंक्शन हो जाता है, तब वह योजना रूपक में लाना शुरू करते हैं, तब उसका जन्म हो गया ऐसा कहलाता है, तब से ही उस योजना को आकार मिलने लगता है। उसी तरह से पहले यह योजना बनती हैं। एक जन्म में वह योजना बनती है, दूसरे जन्म में आकार लेती है और आकार लेते समय फिर से अंदर नई योजना बनती जाती है कि इस अनुसार डालना चाहिए, ऐसा होना चाहिए, ऐसा चक्कर चलता रहता है। अत: यह बहुत सैद्धांतिक चीज़ है।

'प्रत्यक्ष' ज्ञानी ही, 'हक़ीक़त' प्रकाशित करें

अब ऐसी बात पुस्तकों में तो लिखी हुई होती नहीं, तब फिर किस तरह से मनुष्य वापस लौटे? पुस्तक में तो कैसा लिखा हुआ होता है, कि कढ़ी में मिर्ची, नमक, हल्दी, गुड़ वगैरह सब डालना। लेकिन कौन-कौन-सी चीज़ और किस तरह से कितने अनुपात में लेना, ऐसा तो नहीं होता न? इसलिए यह वस्तु उसे भीतर समझ में नहीं आती न! इस प्रतिष्ठित आत्मा को ही पूरी दुनिया आत्मा मानकर बैठी है और उसे

स्थिर करना चाहती है। और वह भी गलत चीज़ नहीं है, स्थिर तो करना ही चाहिए और स्थिर करने से, उसे आनंद मिलता है। जितने समय तक यह प्रतिष्ठित आत्मा स्थिर रहता है उतने समय, रात को नींद में तो स्थिर हो जाता है, लेकिन दिन में भी जितने समय तक स्थिर रहे, उतने समय तक उसे आनंद रहता है। लेकिन वह आनंद कैसा होता है, कि बस, स्थिरता टूटी कि जैसा था वापस वैसे का वैसा ही हो जाता है। अब यदि साथ ही वह ऐसा जान ले कि मूल आत्मा तो स्थिर ही है, तो 'खुद' 'एडजस्टमेन्ट' ले सकेगा। लेकिन मूल आत्मा की बात लोगों को पता ही नहीं है। इस प्रतिष्ठित आत्मा को ही आत्मा के रूप में स्वीकारा गया है, जब कि वास्तव में यह आत्मा नहीं है। प्रतिष्ठित आत्मा, वह *पुद्गल* है, उसमें चेतन है ही नहीं।

जिसमें जगत् चेतन मान बैठा है, उसमें चेतन नहीं है। यह मेरी खोज है। हम खुद देखकर कह रहे हैं। ऐसा शास्त्रों में नहीं लिखा है। शास्त्रों में तो इसे 'प्रतिष्ठित आत्मा' को सुधारने को कहा गया है। 'सुधारते रहो' ऐसा कहा गया है। इसका कोई तरीक़ा तो होना चाहिए न? सुधारने की पद्धति होती है न? जो पद्धति शास्त्रों में बताई जाती है, वह लोगों को लक्ष्य में नहीं है। बहुत सूक्ष्मरूप से बताई गई है। लेकिन वह तो शब्दों से बताई गई है न? यानी क्या है कि शब्दों से बताया गया कि मुंबई जाओ तो मुंबई में ऐसा है, यों है, वहाँ पर जूहू का किनारा ऐसा है, वैसा है, लेकिन शब्द से ही। उससे आपको क्या लाभ हुआ? अतः शास्त्र क्या बताते हैं? शब्दों द्वारा बताते हैं। वह अनुभव पूर्वक नहीं है न? शास्त्रों में अनुभव नहीं समा सकता न? अतः 'ज्ञानीपुरुष' की उपस्थिति के बिना वह स्पष्ट समझ में नहीं आ सकता।

अवक्तव्य अनुभव, मौलिक तत्व के

प्रश्नकर्ता : आपको सूरत स्टेशन की बेन्च पर, १९५८ में जो ज्ञान हुआ था, उस समय का अनुभव बताइए न।

दादाश्री : अनुभव तो ऐसा है न, वह आपको बता कितना सकता

हूँ? कि मुझे आनंद हुआ था, मुझे जगत् विस्मृत हो गया था और सबकुछ देखा मैंने कि, 'जगत् क्या है, कौन करता है, किस तरह से चलता है, आप कौन हो, मैं कौन हूँ?' वह सारा विवरण मैंने जाना। लेकिन यह सब मैं आपको शब्दों द्वारा समझा रहा हूँ। लेकिन मूल वस्तु तो आप जान ही नहीं सकोगे। क्योंकि वहाँ पर शब्द नहीं हैं। विस्तारपूर्वक वाणी में आ नहीं सकता। यह तो शब्द जितने बोले जा सकते हैं, उतने बाहर के भाग की मैं आपसे बात कर रहा हूँ, यह मूल वस्तु तो नहीं है न! वह तो आप चखोगे तब, उस जगह पर आप पहुँचोगे, तब आपको पता चलेगा कि क्या था?

आत्मा सूक्ष्मतम वस्तु है, उस आत्मा के जो बाहरवाले प्रदेश हैं, वे सूक्ष्मतर हैं, उस सूक्ष्मतर तक का हमने वहाँ पर सबकुछ देखा है। अब, वाणी सूक्ष्मतर नहीं है, इसलिए वहाँ पर तो वाणी बंद हो जाती है, वाणी रुक जाती है सारी। इसीलिए ऐसा कहना पड़ता है कि तू चख अनुभव में। इसीलिए अनुभव का कहा है न कि जानने से जाना जा सके ऐसा नहीं है, अनुभव से जाना जा सकता है। निबेड़ा भी अनुभव से ही है!

आत्मा से आत्मा का दर्शन?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ऐसा कहा गया है कि आत्मा को, आत्मनिष्ठ आत्मा से आत्मा को देखो, आत्मा से आत्मा का दर्शन कर, इसका क्या मतलब है?

दादाश्री : 'आत्मा से' यानी कि यह जिसे 'व्यावहारिक आत्मा' माना है न, उसीसे 'तू' 'आत्मा' को देख, ऐसा कहा है। लेकिन बीच में निमित्त को ला। जिसने देखा है उस निमित्त को ला। वे तेरा 'एडजस्टमेन्ट' ऐसा कर देंगे, कि जिससे तुझे फल मिलेगा। बाकी यों खुद अपने आप देखने जाएगा तो कुछ भी नहीं हो पाएगा। क्योंकि तेरे पास इन्द्रियगम्य दृष्टि ही है न! और वहाँ पर अतीन्द्रिय की आवश्यकता है। जब तक 'ज्ञानीपुरुष' इन्द्रियगम्य दृष्टि नहीं छुड़वा देते और अतीन्द्रिय भाग दे नहीं देते, दृष्टि नहीं बदल देते, तब तक दिखेगा नहीं। अतः 'हम' दृष्टि बदल देते हैं!

सुनार की दृष्टि तो शुद्धता पर ही

यह जो सोने की अँगूठी होती है न, वह कई बार सुनारों के पास जाए तो फिर वह सोना मिलावटी हो जाता है। लोग कहेंगे, 'क्या देखकर अगूँठी पहनते हो? यह सोना तो मिलावटी हो गया है।' तब हम मन में सोचते हैं कि यह सोना मिलावटी हो गया है, अब क्या करें इसका? तो सुनार के पास मिलावटी सोना लेकर जाएँ तो क्या वह हमें डाँटेगा? कि ऐसा मिलावटी क्यों कर दिया है? सुनार क्या ऐसे झगड़ा करता है? 'बिगाड़ दिया', ऐसा कहता है न? नहीं, सुनार डाँटने के लिए नहीं बैठा है! मिलावटी को शुद्ध करने के लिए बैठा है!! पूरा जगत् मिलावटी करके ही लाता है, उसके पास!

तो फिर वह उसे शुद्ध करने बैठता है। उसमें दो-चार रुपये उसे भी मिलते हैं। वह फिर ऐसे घिसता है। मिलावट कितनी है ऐसा नहीं देखता, दूसरी धातुएँ कितनी हैं ऐसा नहीं दिखता, लेकिन सोना कितना है इतना ही देखता है। यानी 'तीन रत्ती सोना है इसमें' कहेगा। और वह अँगूठी है ९ रत्ती की। यानी ६ रत्ती दूसरा अशुद्ध माल अंदर पड़ा है। इसलिए फिर ऐसे कसौटी करता है। फिर वह कहता है कि, 'लेकिन मुझे सिर्फ कसौटी नहीं करवानी है, इसमें से जितना सोना निकले न, उसमें से मेरे छोटे बच्चे के लिए अँगूठी बना दो।' वह फिर उसे एसिड में डालता है। उसके जानकार करके देते हैं या नहीं कर देते?

प्रश्नकर्ता : जानकार कर देते हैं।

दादाश्री : और अगर जानकार नहीं हो, और लुहार को दें तो? लुहार कहेगा, 'जा, ले जा वापस, मेरे पास तो लोहा लाना। यह सोना मेरे पास किसलिए लाया है?' फिर अगर सुथार को दें तो वह भी मना करेगा! अब सेठ लोग को दें कि, 'भाई, इतना कर दो न!' तब कहेगा कि, 'अरे, सुनार के पास जा, किसी पारखी के पास जा न, यहाँ पर क्या है?' अर्थात् यह जो, आत्मा जो अशुद्ध हो चुका है, उसे शुद्ध करना हो, तो 'ज्ञानी' के पास जाना चाहिए। जहाँ पर पूरा कारखाना है और जो जानते हैं कि आत्मा के

इतने गुण हैं और अनात्मा के इतने गुण हैं। इसके इतने गुणधर्म हैं, इस प्रकार जो गुणधर्मसहित जानते हैं, वे ही अलग कर सकते हैं। बाकी अन्य कोई अलग नहीं कर सकता।

रियल-रिलेटिव, स्पष्टीकरण विज्ञान के

प्रश्नकर्ता : जो कुछ भी समस्याएँ और प्रश्न होते हैं, वे प्रतिष्ठित आत्मा के ही होंगे न?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा का ही है सबकुछ। हम प्रकृति को ही प्रतिष्ठित आत्मा कहते हैं। लेकिन अगर सिर्फ प्रकृति को ही कहेंगे न तो लोगों को ठीक से समझ में नहीं आएगा। इसलिए फिर हमने उसे प्रतिष्ठित आत्मा कहा है।

प्रतिष्ठित आत्मा, वह 'रिलेटिव आत्मा' है और दूसरा शुद्धात्मा है। शुद्धात्मा, वह 'रियल आत्मा' है। और 'रिलेटिव आत्मा', वह 'मिकेनिकल आत्मा' है, वह *पूरण* (चार्ज होना)-*गलन* (डिस्चार्ज होना) स्वरूप है। आपने यहाँ से भोजन डाला तो सुबह संडास में जाना पड़ता है। यहाँ पर पानी डाला तो बाथरूम में जाना पड़ता है, श्वास लिया तो उच्छ्वास होता रहता है, इस तरह *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा, दो ही चीज़ें हैं!

प्रश्नकर्ता : 'रिलेटिव आत्मा' और 'रियल आत्मा', इन दोनों में क्या फ़र्क़ है?

दादाश्री : 'रिलेटिव आत्मा' वह खुद की 'रोंग बिलीफ़' से उत्पन्न हुआ है। वह रोंग बिलीफ़ फ्रेक्चर हो जाएगी तो खुद 'रियल आत्मा' में आ जाएगा। 'ज्ञानीपुरुष' सभी 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर कर देते हैं और 'राइट बिलीफ़' स्थापित कर देते हैं। इसे सम्यक्दर्शन कहते हैं। इससे फिर खुद के शुद्धात्मा की प्रतीति बैठती है।

प्रश्नकर्ता : अहम् और प्रतिष्ठित आत्मा में कोई भेद है क्या?

दादाश्री : नहीं। प्रतिष्ठित आत्मा, वही अहंकार है। 'हमने' प्रतिष्ठा

की इसीलिए तो उत्पन्न हुआ है। और फिर से वापस प्रतिष्ठा करता ही रहता है कि 'देह मैं हूँ, चंदूभाई मैं हूँ, इस स्त्री का पति मैं हूँ, इन बच्चों का बाप भी मैं ही हूँ, इनका भाई भी मैं ही हूँ।' ऐसे कितने ही प्रकार के मैं, मैं, मैं, मैं.....

ज्ञानी तो सहज ही सिद्धांत प्रकाशमान करें

प्रश्नकर्ता : ये सब लोग जिसे आत्मा कहते हैं, वह प्रतिष्ठित आत्मा को ही न?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा को ही आत्मा मानते हैं। लेकिन वह 'रोंग बिलीफ़' है। अब यह उसे पता ही नहीं होता न! और वह तो प्रतिष्ठित आत्मा को 'यही मेरा आत्मा है' ऐसा मानकर आगे बढ़ता है। मोह के एक-एक परमाणु को कम करते-करते आगे बढ़ना, वह पूरा ही क्रमिक मार्ग है। क्रमिक मार्ग में 'प्रतिष्ठित आत्मा' को आत्मा कहते हैं, यहाँ अक्रम मार्ग में मूल आत्मा को आत्मा कहते हैं। यानी कि क्रमिक मार्ग में और अक्रम मार्ग में, दोनों में कहने की दृष्टि में फ़र्क़ है। क्रमिक मार्ग में वे लोग सच ही कहते हैं, उस आत्मा में वेदकता होती ही है। 'यह वेदकता वगैरह आत्मा के इतने गुण हैं' क्रमिक मार्ग में ऐसा कहते हैं, जब कि अपने अक्रम मार्ग में वह वेदकता और बाकी का सब प्रतिष्ठित आत्मा में हैं, ऐसा कहा है। इस क्रमिक मार्ग में, हम जिसे प्रतिष्ठित आत्मा कहते हैं, उसे वे लोग व्यवहार आत्मा कहते हैं और उस व्यवहार आत्मा को ही मूल आत्मा मान बैठे हैं। अत: 'उसे ही स्थिर करना है, उसे ही कर्मरहित करना है', ऐसा मानते हैं। अर्थात् यह आत्मा कर्म से बँधा हुआ है और उसे ही कर्मरहित करना है, ऐसा मानते हैं। बाकी, मूल आत्मा ऐसा नहीं है। मूल आत्मा तो कर्म से मुक्त ही है। सिर्फ 'तुझे' इसका भान नहीं हुआ है, 'तुझे' वह भान हो जाए, उसीकी ज़रूरत है।

हम क्या कहना चाहते हैं कि 'तुझे' इसका भान नहीं हुआ है। तुझे यह भ्रांति है। जो 'आत्मा' नहीं है, वहाँ पर 'तू' आरोप करता है कि यह 'आत्मा' है और जहाँ पर 'आत्मा' है, वहाँ उसका 'तुझे' भान

नहीं है। इसलिए 'तू' 'आत्मा' को जान, तो इन सबसे 'तू' मुक्त ही है। यही 'अज्ञान' निकालना है, नहीं तो करोड़ जन्मों तक भी 'तेरा' अज्ञान जाएगा नहीं।

पच्चीस प्रकार के मोह हैं, वे पच्चीस प्रकार के मोह चार्ज होते हैं और डिस्चार्ज होते हैं। डिस्चार्ज तो नियम से होगा ही और 'रोंग बिलीफ़' है, इसलिए वापस चार्ज होता रहता है। अपने यहाँ पर, हम ज्ञान देते हैं, फिर चार्ज होना बंद हो जाता है और सिर्फ डिस्चार्ज ही बचता है।

इसलिए 'हमने' यह नया शब्द 'प्रतिष्ठित आत्मा', दिया है। भगवान ने लोगों को बताया था, लेकिन लोगों को वह समझ में नहीं आया, इसलिए हमें यह प्रतिष्ठित आत्मा शब्द देना पड़ा, लोगों को उनकी खुद की भाषा में समझ में आए, उस तरह से। और भगवान ने जो कहा है उस पर आँच नहीं आए, उस तरह से यह शब्द, 'प्रतिष्ठित आत्मा' दिया है। क्योंकि आपको आपकी भाषा में समझ में आना चाहिए न? समझ में नहीं आए, तो आप क्या करोगे फिर?

जग-अधिष्ठान, ज्ञानी के ज्ञान में

जगत् जिसमें से उत्पन्न हुआ है और जिसमें लय होता है, वह अधिष्ठान कहलाता है। तो पूछते हैं कि, 'शास्त्रों में ऐसा अधिष्ठान क्यों नहीं बताया?' नहीं, तीर्थंकरों ने कोई भी वस्तु बिन बताए नहीं रखी है। फिर यदि आपको नहीं मिल पाए तो वह बात अलग है।

अत: हमने क्या कहा है? यह जगत् किसमें से उत्पन्न हुआ है? तब कहे, यह सब 'प्रतिष्ठित आत्मा में से उत्पन्न हुआ है और उसीमें फिर लय हो जाता है। इसमें मूल आत्मा को कुछ लेना-देना है ही नहीं। यानी कि यह तो सिर्फ विभाविक दृष्टि ही उत्पन्न हुई है।'

दर्शन शुद्ध होने पर शुद्ध में समावेश

एक प्रतिष्ठित आत्मा और एक दरअसल आत्मा। प्रतिष्ठित आत्मा 'मिकेनिकल' है। वह खाए-पीए तभी जीवित रह सकता है, वर्ना ऐसे श्वास

बंद कर दें तो खत्म हो जाएगा। वह प्रतिष्ठित आत्मा जो कुछ करता है उसमें 'आप' 'मैं करता हूँ' ऐसा अहंकार करते हो, उससे फिर दूसरा नये जन्म का प्रतिष्ठित आत्मा तैयार होता है।

ऐसा है न, मूल असल आत्मा को कुछ भी नहीं हुआ है। यह तो लोगों ने अज्ञान का प्रदान किया न, इसलिए सभी संस्कार उत्पन्न हो गए हैं। जन्म लेते ही लोग 'उसे' 'चंदू, चंदू' करते हैं। अब उस बच्चे को तो पता भी नहीं होता कि ये लोग क्या कर रहे हैं? लेकिन ये लोग उसे संस्कार देते रहते हैं। फिर 'वह' मान बैठता है कि 'मैं चंदू हूँ।' फिर जब बड़ा होता है, तब कहता है, 'ये मेरे मामा हैं और ये मेरे चाचा हैं।' इस तरह से यह सारा अज्ञान प्रदान किया जाता है। उससे भ्रांति उत्पन्न हो जाती है। इसमें होता क्या है कि आत्मा की एक शक्ति आवृत हो जाती है, दर्शन नाम की शक्ति आवृत हो जाती है। उस दर्शन नाम की शक्ति के आवृत होने से यह सब उत्पन्न हो गया है। वह दर्शन जब फिर से ठीक हो जाता है, सम्यक् हो जाता है, तब वापस 'खुद' खुद के 'मूल स्वरूप' में बैठ जाता है। यह दर्शन मिथ्या हो गया है और इसलिए ऐसा मान बैठा है कि इस भौतिक में ही सुख है, वह दर्शन ठीक हो जाएगा तो भौतिक सुख की मान्यता भी खत्म हो जाएगी। और कुछ ज़्यादा बिगड़ा ही नहीं है, दर्शन ही बिगड़ा है, दृष्टि ही बिगड़ी है। उस दृष्टि को हम पलट देते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आत्मा को सिर्फ भ्रांति ही हुई है?

दादाश्री : आत्मा को भ्रांति नहीं, यह तो सिर्फ उसका दर्शन ही आवृत हो गया है। मूल आत्मा का जो दर्शन है, वह पूरा दर्शन ही आवृत हो गया है। बाहर के इस अज्ञान प्रदान से! जन्म लेते ही ये बाहरी लोग 'उसे' अज्ञान देते हैं। वे खुद तो अज्ञानी हैं और बच्चे को भी अज्ञान के रास्ते पर ले जाते हैं। इसलिए वह ऐसा मान बैठता है और मान बैठता है इसलिए दर्शन आवृत हो जाता है। दर्शन आवृत हो जाता है इसलिए कहता है कि 'ये मेरे ससुर है और ये मेरे मामा हैं।' और मैं कहता हूँ कि ये सारी रोंग बिलीफ़ें हैं।

मूलस्वरूप के भान से खुद का उद्धार

प्रश्नकर्ता : अर्थात् आत्मा का उद्धार आत्मा को खुद को ही करना है, ऐसा ही हुआ न?

दादाश्री : आत्मा का उद्धार आत्मा को खुद को ही करना है, इसका मतलब क्या है कि, आत्मा तो, जिसका उद्धार हो चुका है ऐसी मूल वस्तु है, लेकिन उसमें अपना जो माना हुआ आत्मा है, प्रतिष्ठित आत्मा है, उसकी मान्यता में वह हक़ीक़त नहीं आती। मूल आत्मा का तो उद्धार हो ही चुका है, लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् जो खुद अपने आप को आत्मा मानता है, वही 'खुद' जब ऐसा जान लेगा कि, 'मेरा स्वरूप ही ऐसा है, और मैं तो ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय हूँ', तब फिर 'उसका' भी उद्धार हो जाएगा। यानी खुद खुद का उद्धार, 'वह' इस तरह से ऐसे पुरुषार्थ करे, तभी तो होगा न! लेकिन जब 'ज्ञानीपुरुष' उसे मिल जाएँ, उसे खुद के स्वरूप का भान करवा दें, उसके बाद पुरुषार्थ कर सकेगा और तब 'उसका' उद्धार हो जाएगा।

जय सच्चिदानंद

नौ कलमें

१. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे (दु:खे), न दुभाया (दु:खाया) जाये या दुभाने (दु:खाने) के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो।

मुझे किसी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे, ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दो।

२. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभे, न दुभाया जाये या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो। मुझे किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभाया जाये ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दो।

३. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी उपदेशक साधु, साध्वी या आचार्य का अवर्णवाद, अपराध, अविनय न करने की परम शक्ति दो।

४. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति किंचित्मात्र भी अभाव, तिरस्कार कभी भी न किया जाये, न करवाया जाये या कर्ता के प्रति न अनुमोदित किया जाये, ऐसी परम शक्ति दो।

५. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के साथ कभी भी कठोर भाषा, तंतीली भाषा न बोली जाये, न बुलवाई जाये या बोलने के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो।

कोई कठोर भाषा, तंतीली भाषा बोलें तो मुझे मृदु-ऋजु भाषा बोलने की शक्ति दो ।

६. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति स्त्री, पुरुष या नपुंसक, कोई भी लिंगधारी हो, तो उसके संबंध में किचिंत्मात्र भी विषय-विकार संबंधी दोष, इच्छाएँ, चेष्टाएँ या विचार संबंधी दोष न किये जायें, न करवाये जायें या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो। मुझे निरंतर निर्विकार रहने की परम शक्ति दो।

७. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी रस में लुब्धता न हो ऐसी शक्ति दो। समरसी आहार लेने की परम शक्ति दो।

८. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, जीवित अथवा मृत, किसी का किंचित्मात्र भी अवर्णवाद, अपराध, अविनय न किया जाये, न करवाया जाये या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जायें, ऐसी परम शक्ति दो।

९. हे दादा भगवान ! मुझे जगत कल्याण करने में निमित्त बनने की परम शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

(इतना आप दादा भगवान से माँगा करें। यह प्रतिदिन यंत्रवत् पढ़ने की चीज़ नहीं है, हृदय में रखने की चीज़ है। यह प्रतिदिन उपयोगपूर्वक भावना करने की चीज़ है। इतने पाठ में समस्त शास्त्रों का सार आ जाता है।)

शुद्धात्मा के प्रति प्रार्थना

(प्रतिदिन एक बार बोलें)

हे अंतर्यामी परमात्मा! आप प्रत्येक जीवमात्र में बिराजमान हो, वैसे ही मुझ में भी बिराजमान हो। आपका स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। मेरा स्वरूप शुद्धात्मा है।

हे शुद्धात्मा भगवान! मैं आपको अभेद भाव से अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अज्ञानतावश मैंने जो जो ★★ दोष किये हैं, उन सभी दोषों को आपके समक्ष ज़ाहिर करता हूँ। उनका हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ और आपसे क्षमा याचना करता हूँ। हे प्रभु ! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँ, ऐसी आप मुझे शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

हे शुद्धात्मा भगवान! आप ऐसी कृपा करो कि हमें भेदभाव छूट जाये और अभेद स्वरूप प्राप्त हो। हम आप में अभेद स्वरूप से तन्मयाकार रहें।

★★ जो जो दोष हुए हों, वे मन में ज़ाहिर करें।

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

अणहक्क : बिना हक़ का

शाता : *सुख-परिणाम*

अशाता : *दुःख-परिणाम*

आरा : कालचक्र का एक भाग

आश्रव : कर्म के उदय की शुरूआत

उपाधि : बाहर से आनेवाले दुःख

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

गलन : डिस्चार्ज होना, खाली होना,

गेड़ : अच्छी तरह समझ में आना

निकाल : निपटारा

निर्जरा : कर्म का अस्त होना

पुद्गल : जो पूरण और गलन होता है

पूरण : चार्ज होना, भरना

पोतापणुं : मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन

भोगवटो : सुख-दुःख का असर

लागणी : भावुकतावाला प्रेम, लगाव

वळगणा : बला, भूतावेश, पाश, जो ज़ोर से चिपट गया हो

संवर : कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना

संवरपूर्वक निर्जरा : दोबारा कर्म बीज नहीं डलें और कर्म फल पूरा हो जाए

सिलक : जमापूँजी

आँटी : गाँठ पड़ जाए उस तरह से उलझा हुआ

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद- कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9274111393

भुज : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123

गोधरा : त्रिमंदिर, भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300

वडोदरा : दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : (0265) 2414142

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ली**	: 9310022350
कोलकता	: 033-32933885	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दौर	: 9893545351	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9425245616	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 9431015601	**अमरावती**	: 9823127601
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786
पूना	: 9860797920	**जलंधर**	: 9463542571

U.S.A. : Dada Bhagwan Parivar (USA) +1 877-505 (DADA) 3232
Dada Bhagwan Vignan Institute : Dr. Bachu Amin, 100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606
Tel : +1 785 271 0869, Email : bamin@cox.net

U.K.	: +44 7956 476 253	**UAE**	: +971 557316937
Kenya	: +254 722 722 063	**Singapore**	: +65 81129229
Australia	: +61 421127947	**NZ**	: +64 21 0376434

Website : www.dadabhagwan.org

इसमें है विज्ञान!!!

ज्ञानीपुरुष से आत्मा-अनात्मा की लक्ष्मण रेखा समझ लेनी चाहिए। उनके स्पष्टीकरण त्रिकाल सत्य होते हैं। लाखों वर्षों के बाद भी वही का वही 'प्रकाश' रहता है।

यानी कि यह सारा साइन्स है, विज्ञान है पूरा। मैं आज अट्ठाईस सालों से विज्ञान बता रहा हूँ, तो भी यह विज्ञान पूरा नहीं हुआ। यह सारा इस टेपरिकॉर्ड में रिकॉर्ड है। इसकी सब पुस्तकें छपेंगी। यानी यह तो बहुत बड़ा साइन्स है। हर रोज़ दो-तीन टेप निकलती ही रहती हैं। कितने ही वर्षों से बोल रहा हूँ। पूरे जगत् के कल्याण के लिए है यह सब।

– दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

ISBN 978-93-82128-07-6

9 789382 128076

Printed in India

₹ 70